

हम सभ्य औरतें

मनीषा नारी विमर्श के उन युवा विचारकों में से है जो भाषा के जरिए आख में अंगुली डाल कर अपनी बात समझाने की सामर्थ्य रखती है। यह पुस्तक अपनी तरफ से प्रश्न ही उठाकर नहीं रह जाती, पाठकों की सक्रिय भागीदारी की मांग भी करती है।

‘दुनिया में पहले आई पर दोयम हो गई’ ही नहीं कहती मनीषा, पति के इर्द-गिर्द सिमटती स्त्री की दुनिया की कमजोरियों का खुलासा भी करती हैं। दैनिक पारिवारिक जीवन से ही नहीं, सामाजिक जीवन में भी औरत की हेसियत को आइना दिखाती वह औरतों के दर्द पर खामोश संस्थाओं को बाकायदा झकझोरती है। एक ओर वह ‘औरत की दुश्मन औरत हो नहीं सकती’ कहते हुए पुरातन विचार का खोखलापन उजागर करती है तो दूसरी ओर मर्दों से अपने भीतर झांकने की गुजारिश भी करती हैं।

उनकी भाषा में जहां उत्सवमग्न मर्दों को होश में आने के लिए चेतावनी मौजूद है, वहीं यह प्रश्न भी हाजिर है कि ‘अशुद्ध’ मानसिकता है या औरत? उनके चितन में देश की परिधि के बाहर की स्त्री-दुनिया भी है और विश्व भर में पसरे मर्दवादी सोच की मुखालफत भी।

यह पुस्तक औरत को उसके हक से न सिर्फ परिचित कराती है बल्कि लड़ने की हिम्मत भी देती है। वर्तमान धुधलके में विचार की सामाजिक सार्थकता का प्रस्थान बिंदु है मनीषा की सामयिक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित यह पहली किताब।

मनीषा नारी वि
जो भाषा के ज
बात समझाने की
तरफ से प्रश्न है
सक्रिय भागीदारी

‘दुनिया में पहले
मनीषा, पति के
कमजोरियों का र
जीवन से ही नह
हैसियत को आ
खामोश सस्थाओं
वह ‘औरत की
हुए पुरातन वि
तो दूसरी ओर म
भी करती हैं।

उनकी भाषा में
के लिए चेतावनी
है कि ‘अशुद्ध’
में देश की परि
विश्व भर में प

यह पुस्तक और
कराती है बल्कि
घुघलके में

हम सभ्य औरतें
(नारी-विमर्श)

GIFTED BY
RAJA RAMMOHUN ROY
LITERARY FOUNDATION
Block-DD-34 Sector I Salt Lake City,
CALCUTTA-700064.

मनीषा :
जो भाषा
वात सम
तरफ से
सक्रिय

‘दुनिया’
मनीषा,
कमजोर
जीवन से
हैसियत
खामोश
वह ‘औ’
हुए पुरा
तो दूसरे
भी कर

उनकी
के लिए
है कि ‘
में देश
विश्व

यह पुस
कराती
धुंधलके
बिंदु है
यह प



सामयिक प्रकाशन

3320-21 जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,

दरियावांज, नई दिल्ली-110002 (भारत)

फोन : (011) 3282733 ● 3270715 ● 3270716

GIFTED BY
R. C. RAMMOHUN ROY
LITERARY FOUNDATION
Block 1, Sector 1 Salt Lake City,
CALCUTTA-700064.

हम सभ्य औरते

मनीषा

ISBN : 81-7138-023-9

मूल्य : दो सौ पचास रुपये
प्रकाशक : जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
3320-21 जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002 (भारत)
संस्करण : प्रथम, 2002
सर्वाधिकार : मनीषा, नई दिल्ली
कला-पक्ष : संगम कुशवाहा
शब्द-संयोजक : कल्याणी कम्प्यूटर सर्विसेज
जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-2
मुद्रक : अजीत प्रिंटर्स
मौजपुर, दिल्ली-110053

HUM SABHYA AURATEIN by MANISHA
Price Rs 250 00

Published By : **SAMAYIK PRAKASHAN**
3320-21 Jatwara, Netaji Subhash Marg, Daryaganj,
New Delhi - 110002 (INDIA)
Tel (011) 328 2733, 327 0715, 327 0716

मेरी बात

लिखना मेरे लिए कभी मनोरंजन या टाइम पास का काम नहीं रहा, औरतों के प्रति जारी उपेक्षाओं, व्यवहार और रवैये से मैं खुद को कभी सतुष्ट नहीं कर पाई। दादी-नानी की उस बूढ़ी बीमार पीढ़ी से लेकर अपने उभारो को भरसक उचकाने में जुटी आज की पीढ़ी तक की स्थिति मुझे जब-न-तब झकझोरती है, बल्कि कई दफा सदमे की स्थिति में ला पटकती है। बिना किन्हीं आंदोलनों या वैचारिक बहस के आधुनिकीकरण की दौड़ में भागती-फिरती हम औरतों की भीड़ अभी तक अपना मुकाम नहीं तय कर पाई है। मेरी लेखनी का मतलब यह न लगाया जाए कि मैं औरतों को 'मर्द' बनाने की पक्षधर हूँ। मर्द होना या मर्दों के बराबर खड़ा होना तो पहला चरण है, जिसकी हमारी कौम को खास जरूरत नहीं। मर्दों को उतनी ही तवज्जो दी जानी चाहिए, जितनी किसी विपरीत लिंगी के लिए प्राकृतिक रूप से जरूरी है। 'काया' की इस पारंपरिक-प्रचलित गाथा को तोड़ना और 'काया-कंट-कोख' के चक्र को पछाड़ना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। अपनी सुविधानुसार मर्दजात ने औरत को केवल लिंग के आधार पर इतना धकियाया और उपेक्षित किया है कि वह खुद को मानसिक रूप से बधिया मान बैठी। शीर्षक पर आपत्ति करने वाले विद्वानों से मैं बता देना चाहती हूँ, चूंकि मैं कोई विद्वान या भाषाई खिलंदड नहीं, इसलिए जो मैंने या मेरी इस पूरी कौम की एक भी औरत ने महसूस उसे 'जो है, जैसा है' रखने की कोशिश की। औरतों को धर्म, वर्ग, क्षेत्र या देश में बांटने वाले नहीं जानते कि हम तीन अरब औरतों की पीड़ा, दुःख, क्षोभ, उपेक्षाएं, त्रासदियां सब एक हैं, बस औसत कम या ज्यादा हो सकता है।

औरतो को 'काया' की कैद में कसने की बाहियात मर्दाना कोशिशों का नतीजा है कि पढ़ी-लिखी समझदार औरतें भी इसके मकड़जाल से खुद को छुड़ा नहीं पाती, बल्कि उदारीकरण और वैश्वीकरण की चकाचौंध ने उसे इस दल-दल में और धसाया ही है। यह तय है कि सिर्फ कागज और कलम क्रांति नहीं कर सकते, न ही आक्रामक विचारों से स्थितियां बदल जाएंगी मगर लिंगाभिमानी

पुरुषों को आईना दिखाने के लिए पश्चिमी तर्ज में 'ब्राबर्निंग' से भी उन पर कोई असर नहीं पड़ने वाला, यह तय है। संवेदनशील, भावुक, बुद्धिमान और तर्कक्षमता में अतिकुशल मानी जाने वाली औरतों की क्षमता वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों द्वारा देख-परख लिए जाने के बाद अब 'ठस मर्दाना विचारों' की कही कोई जगह नहीं रह जाती है। लेकिन सत्ता सरकने से भयभीत मर्दों की फौज आखिर कब तक जिस्मानी ताकत के बल पर टिकी रह पाएगी। गहनों की लकदक और सुहाग व बच्चों की दुहाइयां देकर औरतों को बरगलाने वालों को एहसास कराया जाना बेहद जरूरी है कि वे अपनी निकम्मी-ओछी, दकियानूसी विचारधारा से पिड़ छुड़ाने और औरतों को बराबरी का ओहदा दे सकने की मानसिकता अख्तियार कर लें वरना सारी वंश बेलें सूखकर मुरझा जाएंगी, जब शुक्राणु रोपने के लिए एक सुराख भी न मिलेगा। यह विचार निहायत फिजूल और बचकाना है कि चूंकि हम मादाएं हैं इसलिए हमें सदियों से तयशुदा साचों में अटे रहने के सिवा कुछ भी सोचने-समझने या बोलने का अधिकार नहीं है। जनाना अंगों को गाली के तौर पर इस्तेमाल करने वाले तमाम प्रबुद्ध मर्दों से मेरा एक सवाल यह भी है—कभी सोचकर देखिए जिस 'कोख' से आप उपजे हैं उसे जलील करने का अधिकार किसने दिया आपको!!

औरतों के पास क्योंकि लिंग नाम का हथियार नहीं, सिर्फ इसलिए वह दायम नहीं हो सकतीं। संस्कृति-परंपराओं और मर्यादा के नाम पर औरतों के भावनात्मक शोषण की जड़ें इस कदर गहरी हैं कि वे इन्हीं संकीर्णताओं और कायदे-कानूनों के बीच अपनी 'स्वतंत्रता' के छोटे-मोटे जश्न मना लेती हैं। औरत के अभाव में परिवार नहीं बसता पर इस परिवार नाम की संस्था का मुखिया मर्द ही होता है, चाहे वह उम्र में सबसे छोटा ही क्यों न हो। परंतु इस पारंपरिक लद्दधड विचार को कंडम कर सकने वाली औरतों को परिवार तोड़, घर उजाड़, यौन स्वच्छंदता की हिमायती टाइप की परिभाषाएं दी जाती हैं। क्योंकि मर्दों में इतना नैतिक साहस ही नहीं है कि औरतों को भी ससम्मान वही अधिकार दें, जो अपनी जांघ के नीचे वे दबाए चले आ रहे हैं। औरत की कोख में पलने वाला यह भ्रूण मर्दानगी का एहसास होते ही 84 हजार योनियों में से सिर्फ इस एक योनि को ऐसे आंखें तरेरता है मानो उसके जीवन में कोई जनाना योगदान ही न रहा हो। मादाओं को हँसने, चलने, बोलने, खाने और पहनने-ओढ़ने का शऊर वह कौम सिखाती है, जिसे खुद ढंग से यह नहीं पता होता कि वह किस 'पराक्रमी' के

शुक्राणु का नतीजा है। तमाम मर्दाना जलालत वरदाश्त करने के बावजूद भी औरते यदि उनके नाम के व्रत, त्यौहार, पूजन किया करती हैं तो यह उनका 'कमिटमेंट' है, सादा भाषा में इसे वे ममत्व-अपनत्व और न जाने क्या-क्या कहती हैं। लानत तो उन पुरुष शरीरों को है जिनके मगज में साधारण-सी बातें नहीं घुसतीं। बच्चियों का तिरस्कार, मादा भ्रूण को गिरवाना, बिटिया जन्मते ही उसका टेदुआ दबा देना, दहेज के नाम पर उसे जिदा भून देना या विधवा का ठप्पा लगाकर मथुरा-वृंदावन ढकेल आना, कौन-सी मर्दानगी है? पुरुष चाहे शारीरिक रूप से कमजोर हो, मदबुद्धि हो या नपुंसक हो औरतो पर धाक जमाना उसे आता ही है। 'मर्दों वाली बात', 'पुरुषार्थी होना', 'मर्दानगी को चुनौती देना' जैसे मुहावरे ताकत, शक्ति और सत्ता का प्रभाव देते हैं, जबकि 'जनानियो-सी हरकतें', 'औरतों की तरह रोना', 'चूड़ियां पहनना', उपहास के लिए इस्तेमाल होने वाले प्रचलित मुहावरें हैं। औरत होना क्यों कमजोरी की निशानी है? क्यों औरत से 'योनि' की पवित्रता के प्रमाण मागे जाते हैं? क्यों औरत को वेश्यावृत्ति में ढकेल पाने का साहस मर्दजात को मिल जाता है? औरत-औरत छुछुआता घूमता मर्द किसी लाल-पीली-नीली बत्ती वाले इलाके में नहीं समाता तो देह सुख के लिए औरतों का बाजार क्यों? ऐसे हजारों सवाल हैं जिनके तार्किक जवाब देना मुश्किल ही नहीं असंभव भी है। यूँ भी हम औरतों को वो बचकाने जवाब कतई नहीं चाहिए जिन्हें सुनकर उबकाई आती हो। सिंदूर-चूड़ी-बिंदी और पति-भाई-बेटा की चमकीली ओढ़े हमें लुभाकर-फुसलाकर अब तक जो खेल खेला जाता रहा उससे तग आकर, उसकी असलियत भांपकर, उसके उथलेपन से ऊबकर, दो-चार-दस ही सही, अपने भीतर की ऊर्जा पहचानने का कमाल दिखा चुकी औरतों को गरियाने और उन्हें हाशिये पर ढकेलने की मर्दाना साजिश और नहीं चलने वाली। बजरिए योनि औरत की कोख तक पहुंचने वाले हर शख्स को याद रखना होगा कि वह उसका जननाग चीरते-फाड़ते ही इस दुनिया में आया है, फिर इसी के खिलाफ यह मोर्चाबंदी क्यों? साफ और खुले शब्दों में बिना कहे इसे कोई भाई का लाल समझता नहीं, इसलिए शालीनता का ढोंग न कर सकी। जब हम मादाएं लिंग शुचिता की उम्मीद नहीं करतीं तो आप भी भूल जाइए योनि शुचिता की वाहियात बातें। यदि 'मर्दाना समझ' की ऊपरी धूल झड़ जाए, उनमें बराबरी में खड़े हो सकने लायक साहस आ जाए, वे औरत और जूते में फर्क करने लायक बन सकें तो तमाम दिक्कतें खुद ही दूर हो जाएंगी। औरत एकमर्दी रहे इसके लिए मर्दों

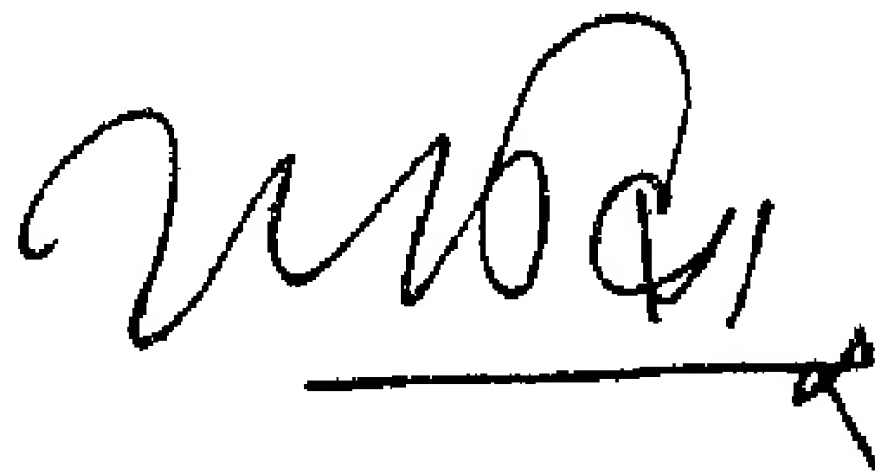
को अपना पायजामा कसना होगा। सड़ी हुई मान्यताएं और वे परंपराएं जो लिंग भेद जन्मती हैं, सबल उखाड़ फेंकी जानी चाहिए। औरत-मर्द को एक-दूसरे की बराबर जरूरत है, जिसे बिना दमन-शोषण या खौफ के, आपसी सहमति से स्वीकार कर लेना चाहिए। 'लिंग' कोई हथियार नहीं, जिसे औरतों के खिलाफ इस्तेमाल किए जाने का बेहूदा पारंपरिक रवैया ढोते चला जाए, जाद्यो से ऊपर उठकर देखने पर ही 'दिमाग' दिखेगा, जिसकी मर्दजात को बेहद जरूरत है। जनानियों को क्या शोभा देता है, क्या नहीं, उन्हें किस भाषा-शैली का इस्तेमाल करना चाहिए, कहां चुप्पी साधे रखनी चाहिए और कहां मर्दाना ढर्रे को, बिना हील-हुज्जत किए 'कॉपी' करते चलना चाहिए, सब कुछ बताने वाला मर्दाना विचार इतनी आसानी से पछाड़ खाने वाला नहीं।

चलताऊ भाषा पढ़कर, उबासियां लेने की आदत छोड़िए। शालीनता का ढोंग कर बहुत रिरिया चुकीं हम औरतें। आपको तो सिर्फ शब्द चुभेगा, हमारी कौम को तो पूरा का पूरा उधेला गया है मगर तरस खाकर हमें दुलराइए मत, न तो महानता का चोला ओढ़ाकर हमें हाशिए पर डालिए। हिंसा को हिंसक तरीके से नहीं खत्म किया जा सकता पर 'रीढ़दार' होने के बावजूद हम रेंगे क्यों? जबरन ही सही, अपने हिस्से की हर चीज चाहिए हमें। अपनी ताकत, हिम्मत और वजूद को भुला बैठी औरतों को सिर्फ झकझोर कर याद दिलाने की जरूरत को निभा रही हूँ मैं, ताकि वैचारिक रूप से हमारी कौम को बधिया किए जाने की प्रवृत्ति रुक सके। यह स्वीकारने में किसी तरह की कश्मकश नहीं होनी चाहिए कि मर्दों की तुलना में औरतें कहीं ज्यादा सभ्य हैं। देह के अलावा कुछ नहीं बचा है उसके पास, जिसे भी पुरुषों द्वारा बरगलाकर बेचा जा रहा है, नचाया जा रहा है और हर वह इस्तेमाल किया जा रहा है जहां तक पुरुष का दिमाग पहुंच रहा है। फिर भी तमाम भयानक स्थितियों के बावजूद औरत जी रही हैं—अपने लिए जगह बना रही हैं। झुठलाया तो यह भी नहीं जा सकता कि कुछ संवेदनशील विद्वान-खुले दिमाग वाले मर्द प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से औरतों की प्रगति को हाथों-हाथ लेते हैं, जबकि मर्दवादी विचारधारा से तुंसे दिमागों वाली कुछ औरतें विचार से, जबान से और आचार से टंगड़ी लगाने में महारथी हैं। उनमें साहस नहीं बचा कि रूढ़ियों, दकियानूसियों और खोखली परंपराओं का खंडन करें। संकीर्ण, कुंठित और मानसिक रूप से पुरातन पड़ चुकी विचारधारा ढोने वालों से ऐसे खुलेपन की ख्वाहिश रखना यूँ तो फिजूल है, पर हम अपनी बात रखते हैं तो आपकी सुनने

के लिए अपने कान भी खुले रखते हैं।

अलग-अलग समय पर लिखे गए ये लेख पुराने इसलिए नहीं पड़े क्योंकि घटनाएँ बदल जाती हैं पर स्थितियाँ वही हैं। मुझमें ऊर्जा भरने वाले वे सब मेरे 'अपने' तो हैं ही, जिन्होंने मुझे सब्र के साथ पढ़ा पर वे भद्र (पुरुष) पाठक भी हैं जिन्होंने मुझे गरियाया, मेरे संस्कार-परिवार और औकात को लेकर जली-कटी सुनाई। हो सकता है गोविंद के सहयोग के बिना मेरी लेखनी इतनी धारदार न हो पाती, उन्होंने एक सच्चे दोस्त की तरह हर बार प्रोत्साहित करने के साथ आलोचक की दृष्टि से भी परखा। कहने को तो बहुत कुछ है, पर आगे फिर।

पाठकों की प्रतिक्रिया और गुस्से का हमेशा की तरह स्वागत करूंगी और इंतजार भी।



अनुक्रम

दुनिया में पहले आई पर दोयम हो गई
अगर यह आधा भी सच है तो...
'जेबकतरनी नहीं उठाईगीर हैं हम'
धन्य हैं पत्नी की कुटाई करने वाले
पति के इर्द-गिर्द सिमटी दुनिया
औरत का निजी कुछ नहीं होता !
पत्नी के साथ बलात्कार
पाकीजगी परेशान है पाकिस्तान में
'जख्मी औरत' से जख्मी नर्सों तक
महिला आयोग के ठोस कागजी सुझाव
महिला आयोग की दिखावटी चिंताएं
ऐसे समाजसेवियों से सावधान !
देवदासी प्रथा के वकील
विश्व महिला सम्मेलन में असमानता
दोहरी और बचकाना दलीले
पहले जीने का हक दो
'5 हजार लगाओ, 50 हजार बचाओ'
यह विज्ञापित शोषण ही है
सत्ता में औरतों की हैसियत
करँजिया और विकी भार्गव में क्या फर्क है ?
महिला मस्तिष्क पुरुष मस्तिष्क से श्रेष्ठ है
शेखों की मर्दानगी
औरत धर्माचार्य क्यों न हो ?
तबलीन सिंह के (कु)तर्क
रास्ता न्याय और अन्याय का

जरूरत कुछ शुरू करने की	85
सरकारी दहेज है यह	89
कॉलमबाजों का जायका	92
‘अशुद्ध’ मानसिकता या औरत?	95
आत्मविश्वास बढ़ाना या तोड़ना?	98
नंगेपन से दूर सौंदर्य प्रतियोगिता	100
नहीं चाहिए लवलेटर	102
इज्जत लौटाने का शार्टकट	104
‘औरत के बारे में’ धारावाहिक कुंठा	106
रेप सीन को रायल्टी	109
हम सब इसके कायर गवाह हैं	111
औरतो के दर्द पर खामोश संस्थाएं	114
औरतो को बंदूके थमाएंगे क्या?	117
बलात्कारी को बचाते सांसद	120
सैवी और मधु सप्रे	123
क्यों ‘जायज’ है यह सजा?	126
कानून की आड़ में धुलती जमात	129
अवर्णों से कुछ सीखें सवर्ण	133
चर्चित होने का फूहड़ तरीका	137
गाली नहीं है खांटी घरेलू औरत	140
हिम्मती मर्द को दाद दो	143
ताकि मर्दानगी का गुमान न रह पाए	146
हिंदूवादियों का तालिबान बनने का शौक	149
प्रेम में भी भर्दवादी रवैया	152
अपने भीतर झाँकें मर्द	155
कट्टरवादी पाकिस्तानी मर्दों की घटिया करतूतें	159
विश्व-मंच पर स्यापा	163
उत्सवमग्न मर्दों होश में आओ	167
बीना रमानियों से ‘लड़कियां’ बचाइए	170
संवेदनशील लड़कियां कहां जाएं?	174
औरत की दुश्मन औरत हो ही नहीं सकती	178

हिंदू धर्म की बेचारी देविया	181
मुसलमान क्यों हुई कमलादास?	184
नारी देह पर पुलिसिया नजर	188
बिनब्याही औरतों की बढ़ती भीड़	191
संपत्ति के बटवारे में भी भेदभाव जारी है	194
पाप कैसे है विधवा होना?	197
खुशनसीब मर्दों से पटा समाज	201
उनकी मौत की खबर	204
महामारी बनती घरेलू हिंसा	207
भेड़ें नहीं हैं औरतें	210
मर्द बनने का म्वांग	213
मर्दों के पक्ष में जाता फैसला	216
ऊबे हुए पतियों की मस्ती	219
सहजीवन में भी दुःखी औरतें	222
क्यों कुमारी देवी अछूत हो जाती है?	228
तालों में बंद डिग्रियां	231
यात्रा के खतरो से जूझती औरतें	234
औरतों को बधिया बनाने के लिए	237

दुनिया में पहले आई पर दोयम हो गई

स्त्रियों से अधिक पाप की अन्य कोई वस्तु नहीं है, स्त्री सभी बुराइयों की जड़ है, स्त्री प्रज्वलित ज्वाला है, वह माया-रचित भ्रम है, वह उस्तरे की तेज धार है, वह अग्नि है।

— महाभारत

स्त्रियों के मुख पुष्पो की भांति हैं, उनके शब्द मधु की बूदों की भांति हैं, किंतु उनके मन तेज उस्तरे की भांति हैं। उनके मन की थाह किसी को नहीं हो सकती।

— रामायण

पुरुष उत्तराधिकार में स्त्री से दुगुना पाएगा...

यदि भय हो बेसहारा कन्याओं से उचित व्यवहार में रहने का, जो भली लगे ब्याह लो, इनमें से दो, तीन या चार..

पुरुष को अधिकार है स्त्रियों पर, एक को बनाया दूसरे से श्रेष्ठ
जिनसे अवज्ञा का भय हो उन्हें अलग पलंग पर भेजो और पीटो...

— कुरान

ये हैं हमारे महान् भारत के धर्मग्रंथ, जो 'औरत' को मात्र इस्तेमाल की चीज बताते हैं। यही कारण है कि हमारे समाज में तमाम विकास और पश्चिमी अंधानुकरण के बावजूद औरत की स्थिति बदतर बनी हुई है। आधुनिक समाज में औरत को हर दिन मौत से जूझने के लिए तैयार रहना पड़ता है। कोख में लिग-निर्धारण के बाद से जो जंग शुरू होती है, उसे समाप्त करना अभी भी आसान नहीं लगता। 'औरत' से ऊबे लोग, मादा भ्रूण नष्ट करने पर किस कदर तुले हैं, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि प्रतिवर्ष हमारे देश में तकरीबन 20 लाख मादा भ्रूण मारे जाते हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 315 और 316 के अनुसार, भ्रूण हत्या करना कानूनन अपराध होने के बावजूद गांव-कस्बों तक में जगह-जगह 'गर्भपात केन्द्र' के बोर्ड लटके मिल जाएंगे। जिनमें साफ लिखा होता है—अनचाहे गर्भ से छुटकारा पाने के लिए मिलें फलों डॉक्टर से। यह

अनचाहा गर्भ नहीं, अनचाही सतान यानी लड़की से छुटकारा पाने की सांकेतिक भाषा है। जिसे अशिक्षित, पिछड़े सब बखूबी समझते हैं। मादा भ्रूण मारने का एकमात्र कारण है—समाज में औरत को बराबरी का दर्जा न मिल पाना।

आज की शिक्षित, कामकाजी औरत भी मर्द की बराबरी पर नहीं खड़ी है। इसका सीधा-सा सामाजिक कारण है, उसे उसके हिस्से के अधिकारों से वंचित रखना। औरत को अधिकार देने के नाम पर कानून तो तमाम बनाए गए हैं, परंतु उन पर अमल यदि 50 प्रतिशत भी हो पाता तो आज स्थिति इतनी विषम न होती। लाखों मादा भ्रूण प्रतिमाह गिराए जाने के बावजूद तकरीबन एक करोड़ बीस लाख लड़कियां प्रतिवर्ष जन्मती हैं। परंतु उचित चिकित्सा-सुविधाओं, पौष्टिक आहार आदि के अभाव तथा उपेक्षा के चलते इनमें से 43 प्रतिशत बच्चियां चार वर्ष की उम्र पूरी करने से पहले ही मर जाती हैं। बाकी बची बच्चियों में भी सब पूरा जीवन जीने को तरसती हैं, क्योंकि इनमें से 25 प्रतिशत लड़कियां किशोरावस्था में ही मौत के मुंह में चली जाती हैं। बाकी बची लड़कियों में से कुछ दहेज के नाम पर आग में झोक दी जाती हैं या प्रसूति के दौरान मरने को अभिशप्त रहती हैं। हमारे देश की 80 प्रतिशत औरतें, जो इन तमाम व्यवधानों के बावजूद 'जीवन' जीने लायक रह पाती हैं, रक्त-अल्पता अथवा कुपोषण का शिकार हो जाती हैं। यही सब कारण है कि 1991 में जहां प्रति 1000 पुरुषों की अपेक्षा 972 महिलाएं थी, वहीं अब केवल 927 महिलाएं बची हैं। कुछ राज्यों में तो यह अनुपात और भी कम होता जा रहा है। हरियाणा और पंजाब—जहां की औरतें, कर्मठ, हिम्मती और मेहनती होती हैं—वहां प्रति 1000 पुरुषों की तुलना में कुल 865 और 882 ही औरतें बची हैं। इससे भी खराब स्थिति चंडीगढ़ की है, जिसे खूबसूरत आकर्षक और नियोजित शहर का दर्जा प्राप्त है। वहां प्रति हजार पर केवल 790 औरतें हैं।

औरत को मारने के, उसे जड़ से मिटाने के विज्ञान नित नए तरीके ईजाद करता जा रहा है। चिकित्सकीय सुविधाओं की प्रशंसा में पुल बांधते समय यह तो उदाहरण दिए जाते हैं कि 1994 में शिशु मृत्यु दर 130 थी, जो अब केवल 39 रह गई है, शिशु-मृत्यु दर में जबरदस्त कमी क्यों और कैसे आई, यह किसी से छिपा नहीं है। यदि 'भ्रूण' को ही मार दिया जाएगा तो 'शिशु' के मरने की नौबत ही कहां आ पाएगी। एक भयानक सच यह भी है कि हमारे संभ्रात समाज में आज भी बेटियों को टेंदुआ दबाकर मार दिया जाता है। बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में बेटी का जन्म होते ही, उसे पैदा करवाने वाली दाई कुछ

अतिरिक्त पैसा लेकर, नवजात का गला दबाकर, उसे आक का दूध पिलाकर, धान की भूसी मुंह में डालकर या सुतली गले में लपेटकर, उसे मरोड़कर अथवा सर्दी के दिनों में गीला कपड़ा लपेटकर बच्ची की जान ले लेती है। इन राज्यों के साथ-साथ तमिलनाडु के कुछ गांवों से भी ऐसी घटनाएं सुनने को मिलती हैं, वह भी तब जबकि भारतीय दंड संहिता की धारा 135 के तहत, किसी भी शिशु की हत्या करना गैरकानूनी है। मगर आज तक एक भी दाई पकड़े जाने की खबर कहीं से नहीं आई, जबकि बच्चियों को इन तरीकों से मारने की बात वे स्वयं स्वीकारती हैं।

सरकारी दावों को माने तो प्रतिवर्ष शिक्षा विभाग साक्षरता-दर बढ़ने का दावा करता है। 1991 में 53 प्रतिशत साक्षर बढ़कर 1999 में 64 प्रतिशत पहुंच गए, फिर भी 62 प्रतिशत महिलाएं आज भी अंगूठा-टेक हैं। आजादी के वक्त हमारे स्कूली बच्चों की संख्या 1.92 करोड़ बताई जाती थी, जो अब 14.45 करोड़ हो चुकी है। मगर इसमें कितनी लड़कियां अपनी प्राइमरी शिक्षा भी पूरी कर पाती हैं—यह किसी से छिपा नहीं है। जब प्राइमरी शिक्षा ही नहीं होगी तो विकास व स्वास्थ्य की बातें आप किससे करेंगे! आरक्षण का गुब्बारा किसे दिखाएंगे, जनसंख्या सीमित रखने का उपदेश किस पर झाड़ेंगे? शिक्षा के अभाव के कारण ही अभी तक सरकारी नौकरियों तथा राजनीति व तकनीकी क्षेत्र में केवल 12 प्रतिशत महिलाएं ही पहुंच सकी हैं, जबकि 88 प्रतिशत जगह पुरुषों ने साधिकार हथिया रखी है।

औरत की शक्ति से डरकर आदमी उसे कितना ही दबाए, कितने ही तरीके ईजाद कर ले उसे बंदिशों में रखने के, मगर अतंतः उसे हार माननी ही होगी। अब तो विज्ञान ने भी यह साबित कर दिया है कि कुदरत ने पहले औरत बनाई थी बाद में मर्द। आदम और ईव की कल्पना करने वालों ने अब तक यह मंत्र फूका था कि पहले आदम आया फिर ईव, इसीलिए औरत को दोयम दर्जा दिया गया। मगर जाती हुई शताब्दी में औरत के लिए आई एक खुशखबरी—जो लगभग दबा दी गई—कि शुरुआती दौर में 'प्रजनन' जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी और औरत दुनिया में अकेली थी। औरत की दुनिया में मौजूदगी के लगभग 30 करोड़ वर्ष बाद आदमी को बना पाई थी कुदरत। अमेरिका की मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलाजी के अध्ययनों ने साबित कर दिया है कि आदमी औरत के बाद जन्मा है। अब तो अपने झूठे अहम को समेटकर उसे औरत के वजूद को स्वीकार लेना चाहिए!

अगर यह आधा सच भी है तो...

कुछ समय पहले अमेरिका में भारतीय डॉक्टरों के एक सम्मेलन में तब के अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिंटन ने अपने लिखित भाषण से हटकर कहा था कि अगर मुझे दुनिया में किसी चीज से ईर्ष्या है तो अंबाती बंधुओं, सिर्फ आपसे। अमेरिका का सबसे कम उम्र का राष्ट्रपति बनने के बाद भी मुझे इस तरह नोटिस नहीं लिया गया था, जिस तरह आप लोगो का लिया जा रहा है? क्लिंटन की इस बात पर शुरू हुई तालियों का सिलसिला कई मिनट तक थमा नहीं था। निश्चय ही अंबाती परिवार ने उस क्षण में वह उपलब्धि हासिल कर ली थी, जो बड़े-बड़े नोबल पुरस्कार विजेताओं को नहीं मिली। इसी के साथ एक बड़ा सम्मान भारत के खाते में भी आया था, पर वही अंबाती परिवार सलाखों के पीछे चला गया। देश-विदेश का पूरा मीडिया उस दिन कंगरेट की छोटी-सी अदालत में इकट्ठा था, जब मजिस्ट्रेट ने अंबाती परिवार की बड़ी बहू अर्चना द्वारा लगाए गए गंभीर आरोपों पर गौर करते हुए अंबाती परिवार को जमानत देने से इनकार कर दिया। उनका पासपोर्ट जब्त कर लेने का आदेश भी अदालत ने दिया।

दक्षिण भारत की सारी पत्रिकाओं ने इस मुकदमे की हर सुनवाई पर पूरी नजर रखी। उन्हीं के हवाले से जो आरोप-प्रत्यारोप निकलकर सामने आए हैं वे स्तब्ध कर देने वाले हैं। न्यूयार्क में पिछले 10 वर्ष से रह रहे अंबाती परिवार के घरोहित का कहना है कि मैं उस परिवार को बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ, यह सारे आरोप सरासर झूठ हैं। लेकिन आरोप हैं क्या? मोहनराव अंबाती के बड़े पुत्र जयकृष्ण की शादी 23 वर्षीय अर्चना से हुई। एक कपड़ा व्यापारी की पुत्री अर्चना ने इलेक्ट्रॉनिक्स में डिप्लोमा किया। शादी के बाद एक कच्चे बीसा पर वह अपनी ससुराल न्यूयार्क पहुंची, जहां उसका कहना है, उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि अंबाती परिवार के अनुसार, उसके पिता ने उन्हे दहेज में हुए करार के मुताबिक ढाई लाख डॉलर, एक वातानुकूलित कार और पैतृक संपत्ति का एक-तिहाई हिस्सा नहीं दिया।

अर्चना के पिता नदा, जो होमगार्ड कमांडेंट भी है का कहना है कि उन्होंने

बगरापेट में अपने मोहल्लेवालों के सामने तीन लाख रुपये का सोना, 50 हजार रुपये की चांदी और 50 हजार रुपये नकद दिए। इतना ही नहीं, अर्चना ने न्यूयार्क में प्रताड़ना के जो आरोप लगाए हैं उनका अगर आधा भी सही है तो अंबाती परिवार ने भारत को जितनी इज्जत दिलाई थी, उससे कहीं ज्यादा मिट्टी में मिला दी है। अर्चना बताती है कि उसे किस तरह कमरे में बंद रखा गया और अपनी 'उलटी' खाने पर मजबूर किया गया। उसका सूटकेस सास ने लात मारकर सीढ़ियों से नीचे फेंक दिया। फोन पर उसकी बातचीत को दूसरे रिसीवर से सुना जाता रहा। इतना ही नहीं, ससुर मोहन राव ने उसके सामान में सास का एक गहना डाल दिया और (दुनिया के सबसे कम उम्र के जीनियस डॉक्टर बाला मुरली) बाला ने पोलराइड कैमरे से सबूत के तौर पर मेरे इस सामान के फोटो खींचे। पूरे परिवार ने कड़े अमेरिकी कानूनों के बारे में बताते हुए धमकाया, 'अगर चुपचाप इंडिया जाने को तैयार नहीं हुईं तो तुम्हें यही जेल में मड़ा देंगे।' और अर्चना अकेले भारत लौट आई। अंबाती परिवार अर्चना और उसके पिता के इन आरोपों को झूठ का पुलिदा बताता है, लेकिन अर्चना के पति डा. जयकृष्ण ने एक इंटरव्यू में कहा है कि उसे शादी की पहली रात लग गया कि अर्चना उसकी पत्नी बनने लायक नहीं है। 'अर्चना ने शारीरिक संबंधों के प्रति मेरे साथ कोई रुचि नहीं जताई।'— डॉ. जयकृष्ण ने कहा है।

अर्चना के पिता नंदा ने भी एक पत्र में इसकी पुष्टि करते हुए लिखा है। इसको भी छोड़ दें तो एक बड़ा प्रमाण उसके पिता को लिखा गया वह लंबा पत्र है, जिसमें उन्होंने शादी में हुए लेन-देन के प्रति नाराजगी जताई है। पत्र का पहला पैराग्राफ अर्चना के घमंडी होने की शिकायतों से भरा है। जिसका सारांश यह है कि अर्चना नई बहू की तरह पेश नहीं आ रही और अपने को इस परिवार से 'सुपीरियर' समझती है। पत्र के प्वाइंट बनाकर बाकी कुछ शिकायतें इस तरह से हैं :

- 1 आपने हमें साढ़े बारह बजे की कड़ी दोपहरी में स्टेशन से समारोह-स्थल तक पैदल चलाया।
- 2 आपने हमें टूटी वैन उपलब्ध कराई, जबकि हम ए.सी. कार से चलने वाले हैं।
- 3 आपने हमें भाजी और बड़ा केले के पत्ते पर खिलाया मानो हम कोई भिखारी हों।
- 4 ढंग की कॉफी भी नहीं थी, जिसके लिए मैंने आपसे कहा भी, आखिरकार

- हमें कॉफी के लिए कस्बे में जाना पड़ा।
5. दूल्हे के साथियों के साथ बरताव सही नहीं था।
 6. जनेऊ के समय हमें कोई वाहन नहीं उपलब्ध करवाया गया।
 7. आपने मुझे और दूल्हे को सूती धोती दी, जबकि इसके लिए सिल्क के कपड़े दिए जाते हैं, मैंने इसे नहीं हाने दिया।
 8. काशी-यात्रा के लिए स्लीपर नहीं दिए गए।
 9. फूलों से बिछे कार्पेट पर सिर्फ लड़की को चलाया गया, लड़के को नहीं पूछा गया।
 10. मेरे भाई बिना खाना खाए रहे।
 11. शादी की पहली रात की रम्म में पहनी जाने वाली धोती और शर्ट लड़के को नहीं दी।
 12. कृष्ण (मेरा लड़का) की पहली रात, तो हुई ही नहीं, तुम्हारी लड़की ने कोई सहयोग नहीं किया। ऐसे में लड़की की वफादारी संदेह के घेरे में आ जाती है। मैं ऐसी कई शादियों को जानता हूँ जो पहली रात में इस तरह की घटनाओं के कारण टूट गईं।
 13. दो जून की रात मेरे और तुम्हारे बीच लड़का-लड़की की जरूरतों के लिए, मॉनिटरी-ट्रांजिक्शन (आर्थिक लेन-देन) पर बात हो रही थी तो तुम बेहूदगी से पेश आए थे।
 14. तुम और तुम्हारी पत्नी ऐसी कॉफी लाए कि उससे अच्छा तो नाले का गढ़ा पानी था, हममें से किसी ने नहीं पी।
 15. हमारे ठहरने का इंतजाम तुमने जहाँ किया था, वह जगह काक्रोच और गंदगी भरी थी, तुम्हें इस पर शर्म आनी चाहिए।
 16. शौचालयों का कोई इंतजाम नहीं था, मुझे नीचे जाकर यह व्यवस्था खुद देखनी पड़ी।
 17. जब हम बंगलौर जाने लगे तो तुमने खर्चे के लिए पैसा देना चाहा, यह भद्दी बात थी।
 18. जिस टूटी वैन में तुमने हमें बैठाया था, हम जैसे-तैसे उसमें बैठ गए तो पता चला कि तुम्हारी अकखड और लापरवाह लड़की ज्वेलरी बॉक्स की चाभी भूल आई है, इसमें हमारा आधा घंटा खराब हुआ।
 19. वैन रास्ते में टूट गई, हमें दूसरी गाड़ी करनी पड़ी, हमारी जो दुर्गति हुई हम ही जानते हैं।

20. मैंने तुमसे लड़की का बर्थ सर्टिफिकेट मांगा, तुमने नहीं दिया।
21. तुमने जो बर्थ सर्टिफिकेट दिया, तुम्हारी लड़की के अनुसार, इसमें तारीख सही नहीं थी।
22. हमने बाला का (सबसे कम उम्र का डॉक्टर) के सम्मान समारोह अटेंड किए, तुम्हारी लड़की गब्बर जैसी आगे की कुर्सी पर बैठी रही। हाल तालियां बजा रहा था पर उसने एक भी बार ताली नहीं बजाई। यहां आते ही तुम्हारी लड़की अजीब तरह से व्यवहार करने लगी और उसने इंडिया जाने की रट पकड़ ली। मैं पहले ही कह चुका हूं कि वह कितनी अक्खड़ और गब्बर है कि तुम्हें सब बता दिया। हम भुक्तभोगी नहीं होना चाहते। तुम्हीं सोचो, तुम्हें क्या करना चाहिए। हमारे पास समय नहीं है, इस चिट्ठी को और लंबा कर सकता हू।

तुम्हारा

डॉक्टर मोहनराव अंबाती

और सोचो कि तुमने हवाई अड्डे पर किस तरह फेअरवेल दिया। कोई लड्डू नहीं, कोई फल नहीं।

अंबाती परिवार का कहना है कि उनके घर में चार लाख रुपये महीने तनख्वाह आती है, पैसे की उनके पास कोई कमी नहीं है। वे पारंपरिक विवाह चाहते थे, इसलिए उन्होंने अखबारों में '94 में विज्ञापन दिया। था। सवाल फिर वही बुनियादी है कि तमाम ऊंचाइयां अर्जित कर लेने के बाद भी अंबाती परिवार लड़की पक्ष को अपना संबंधी क्यों नहीं स्वीकार कर पाया? डॉक्टर मोहनराव अंबाती का शिकायती पत्र अकेले उनका पत्र नहीं है। यह दरअसल भारतीय समाज के हर लड़केवाले के पक्ष को आइना दिखाता है। बारात का स्वागत उनके नियम-कानूनों की तरह नहीं हो सकता। यह उत्साह और सामर्थ्य की बात है, जिसमें दोनों पक्षों की प्रतिष्ठा एक साथ लगती है। लेकिन समाज में लड़की का पक्ष हेय माना गया है और उसकी इयूटी है कि वह होटल के बेयरो की तरह पेश आए। निश्चय ही दोनों पक्षों ने आरोपों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया है, जो देखना अदालत का काम है।

यह बरताव केवल अमेरिका में बसे चर्चित डॉक्टर ही नहीं करते, पढ़े-लिखे, ऊंचे ओहदों पर बिराजे तमाम परिवारों की स्थिति यही है। ऐसे लोग दहेज के नाम पर उगाही करने पर उतारू हो जाते हैं। लड़कियों के जीवन से खिलवाड़ करने वाले इस अस्त्र को मिटाना ही होगा।

‘जेबकतरनी नहीं उठाईगीर हैं हम’

किसी के माथे पर उसकी जाति नहीं लिखी होती। एक बहुत पुरानी कहावत है। जिसे हम दादा-नाना के मुंह से सुनते आ रहे हैं। मगर सरकारी राज में कुछ भी असंभव नहीं है। यहां जातिया भी चोर-उचक्कों की श्रेणी में रखी जाती हैं। कुछ समय पहले तक ‘क्रिमिनल’ का पहचान-पत्र देकर सरकार एक खास समूह को शंका की नजर से देखती रही है। आज इस जाति को पहचान-पत्र दिया जाना तो बंद हो गया है, मगर सरकारी मुलाजिमों ने अपनी शक की आदत अभी तक नहीं छोड़ी है। एक पूरी जाति को ही यदि बार-बार शंका के घेरे में लिया जाए तो उनकी मानसिक स्थिति का अंदाजा लगाना शायद आम आदमी के बस से बाहर की बात है। कुछ समय पहले जब हरियाणा दूरिज्म की तरफ से ‘सूरजकुंड’ मेला लगा। आज भी तथाकथित सुसभ्य और पढ़े-लिखे लोग मेलों-ठेलों का आनंद लेने में कहां चूकते हैं। पूर्वी दिल्ली के शाहदरा में करीब 8-10 महिलाएं भी इस मेले में मजा लेने पहुंचीं। एक व्यक्ति ने कुछ देर तक उन पर निगाह रखी और पीछा किया। कुछ खाने-पीने के विचार से वे सब घेरा बनाकर जमीन में बैठ गईं। अभी पहला कौर भी मुंह में नहीं गया था कि पुलिस फोर्स ने आ घेरा। महिलाओं को थाने ला पटका गया। पुलिस का मानना था कि महिलाएं ‘जेबकतरनी’ हैं। महिलाओं की तलाशी ली गई। उनके पास से कुछ सौ रुपये बरामद हुए, बस।

एन.आई.टी. थाना (फरीदाबाद) की पुलिस का कहना है कि यदि इन महिलाओं को पकड़ा न गया होता तो मेला घूमने आने वालों का बहुत नुकसान होता, साथ ही हरियाणा सरकार की बदनामी भी होती। जबकि अपराधी ठहराई गई महिलाएं कहती हैं कि वे जेब काटने के लिए मेले में नहीं गई थीं। वे खुद को आम दर्शक बताती हैं। मजे की बात यह है कि थाना अधिकारियों ने कहा है कि सभी महिलाओं के पास से धारदार ब्लेड पाए गए। महिलाएं कहती हैं कि वे ब्लेड का प्रयोग कभी करती ही नहीं। महिलाओं ने इसे सिर्फ झूठा आरोप माना। उनका कहना है कि उन्हें जबरदस्ती फंसाया गया। वे जेब काटने का धंधा न कभी पहले करती थीं और न अब करती हैं।

मगर पुलिसवालों ने उनकी एक न सुनी और उन्हें थाने में पूरे दिन बिठाए रखा। शाम को यह कहकर सबको छोड़ दिया गया कि आगामी 21 मार्च को अदालत में जज के सामने मुकद्दमे की सुनवाई की जाएगी।

दर्ज रिपोर्ट के मुताबिक, पुलिस ने कुल 12 महिलाओं को पकड़ा। ये महिलाएं 30 से 40 के बीच की उम्र की दिखती हैं और दिखने में निम्न मध्यम वर्गीय परिवार से लगती हैं। सुनीता, गंगा, कृष्णा, सुरजीत कौर, मंतोष, प्रीतो, हरदयाल कौर, जागीरो, प्रेमवती, अमरजीत कौर, शारदा और सुरजीत कौर क्रमशः इनके नाम हैं। इनमें से अधिकांश महिलाएं तो कस्तूरबानगर में आस-पड़ोस में रहने वाली हैं। बाकी पुरानी सीमापुरी, नंदनगरी और विश्वासनगर की हैं। दो महिलाएं गंगा और सुनीता मराठी झुग्गी, पटेलनगर, की थीं। इन दोनों महिलाओं का शेष दसों महिलाओं का संबंध नहीं है—ऐसा उन्होंने माना। पुलिस का कहना था कि उसने सबको एक साथ पकड़ा। जबकि पूर्वी दिल्ली से पकड़ी गई महिलाओं का मानना था कि पटेलनगर वाली महिलाओं को वे नहीं जानतीं और वे दोनों तो पहले से थाने में मौजूद थीं। सुनीता और गंगा पिछले साल भी इसी इलजाम में पकड़ी जा चुकी हैं।

पूर्वी दिल्ली की पकड़ी गई महिलाओं ने बताया कि उन दोनों के पास धारदार ब्लेड मौजूद थे। तलाशी के दौरान कोई डेढ़ हजार रुपये और कई छोटे-छोटे लैंडींग पर्स भी उनके पास से बरामद किए गए हैं। वे दोनों महिलाएं दिखने में साउथ इंडियन थीं और किसी अपरिचित भाषा में आपस में बातिया रही थीं। पूर्वी दिल्ली की महिलाओं के अनुसार, वही दोनों असली जेबकतरनी थीं, जबकि उन सबको पुलिस ने मात्र शक की बिना पर पकड़ लिया। गंगा और सुनीता के साथ दो पुरुष भी थे, ऐसा बताया जाता है। जो बाद में उनकी जमानत करवाने अपना वकील लेकर आए। इससे लगता है कि उनका कोई पूरा संगठन जेब काटने के जुर्म में लिप्त है, जिसने पहले से पूरी तैयारी कर रखी है।

पुलिस का कहना है कि प्रायः महिलाओं की गोद में छोटे बच्चे थे, जबकि महिलाओं ने बताया कि उनमें से किसी के भी पास बच्चा नहीं था! हां, सुनीता और गंगा के पास एक बच्चा जरूर था। एन आई टी. थानाध्यक्ष राजसिंह ने बताया—‘ये महिलाएं सीधा निशाना नहीं बनातीं। अपने शिकार पर सबसे पहले ये बच्चे की मार्फत टक्कर मारती हैं, जब तक सामने वाला संभले-संभले, तब तक ये अपना काम बना लेती हैं।’ जैसा कि महिलाओं ने माना कि उनकी गोद में बच्चे ही नहीं थे, उस हिसाब से तो ऐसा करना जरा मुश्किल काम है।

पुलिस के अनुसार, महिलाओं के पास से 4,600 रुपये जब्त किए गए। जबकि महिलाओं का मानना था कि उनमें से कुछ के पास 100-150 कुछ के पास 200 रुपये ही थे, जो वे सामान खरीदने के लिए ले गई थीं। महिला पुलिस ने उन्हें थाने ले जाकर पूछताछ की और दो-चार चाटे भी जमा दिए। इंडियन पेनल कोड की धारा 109 के अंतर्गत इन्हें रखा गया।

जेबकतरनी कही जाने वाली कुछ महिलाओं ने तो कोई भी सफाई देने या बात करने से मना कर दिया। कुछ महिलाएं मिली, उन्होंने जो कुछ बताया वह हमारे पूरे समाज के लिए चिंतनीय विषय है। एक महिला ने माना कि वह उठाईगीर है। मेले-ठेलों या साप्ताहिक बाजारों में जाकर वह छिट-पुट सामान उठा लेती है। वही नहीं, बल्कि कस्तूरबानगर की उस बदनाम बस्ती की अधिकांश महिलाएं इन्हीं कामों में लगी हैं। वे छोटी-छोटी चोरियां जरूर करती हैं, परंतु जेब काटने के नाम पर कान पकड़ लेती हैं। एक प्रौढ़ महिला ने कहा कि वह अपनी जरूरत की चीजे जैसे नेलपालिश, बिंदी, कुमकुम या चप्पले उठाने का काम करती हैं। चूंकि उसका घरवाला साधारण-सा ड्राइवर है, उसकी कमाई से पूरा नहीं पड़ता, इसलिए लालचवश पिछले एक साल से वह यह काम करने लगी है। दिखने में किसी भले घर की यह गोरी-चिट्ठी महिला पहली नजर में किसी मध्यमवर्गीय परिवार की खाती-पीती, गोल-मटोल औरत है। अपनी इस दशा पर उसे खुद दुःख होता है। कहती है, मजबूरी है। मैं बरतन तो मांज नहीं सकती क्योंकि लड़कियों की शादियां करनी हैं। 'क्या चोरनी मा की बेटी की शादी आसानी से हो सकेगी?' यह पूछने पर वह चुप हो जाती है। सिर झुका लेती है।

एक अन्य महिला लोगों के घरों में बरतन मांजती है। उसने पिछले 2-4 महीनों से उठाईगीरी शुरू की है। एक बार पुलिस के पल्ले पड़ने से वह इतनी घबरा गई है कि उसने तौबा कर ली। 'अब मैं कभी न करूंगी, यह काम।' क्योंकि उसे डर है कि कहीं कोठियों वाली मालकिनों को पता चल गया तो वे काम से निकाल देगी। उसका पति अच्छी सरकारी नौकरी करता है। महीने में 12-14 सौ रुपये घर में देता है। ऐसे में जब उसने इस रास्ते पर चलना शुरू किया जो शायद मात्र 'संगत' का फल कहलाएगा। शायद बिना मेहनत के कुछ पैसे लेने की उसकी इच्छा जाग उठी होगी या शायद वह बाकियों के बहकावे में आ गई हो।

इनमें से कुछ महिलाएं तो अपने घर में मौजूद ही नहीं थीं। परंतु उनके मर्द दारू या स्मैक चढ़ाए किसी कोने-अंतरे में जरूर लुढ़के दिखे। स्थानीय लोगो ने

माना कि बस्ती के अमूमन पुरुष दारू, चरस, गांजा या स्मैक के आदी हैं। वे या तो कोई काम करते ही नहीं या फिर रिकशा या ऑटो चलाकर कुछ पैसा कमाते भी हैं तो नशे में फूक आते हैं। इनमें से ज्यादातर महिलाओं के 4 या 6 बच्चे हैं। वे अच्छे स्कूलों में पढ़ते भी हैं। मलिन-सी दिखने वाली इस बस्ती की हालत दयनीय लगती है— इधर-उधर कचरा फैला हुआ, बीच-बीच में गंदे नाले, गलियों के इर्द-गिर्द घूमते बच्चे। पुलिस की नजर का शिकार यह बस्ती पूरे इलाके में बदनाम है।

पुलिस के अनुसार, इन महिलाओं का झुंड बंबई, इंदौर से लेकर हरिद्वार के कुंभ तक में हाथ साफ करने जाता है। खासतौर पर ये ट्रेनों, भीड़वाली बसों व स्टेशनों पर अपने शिकार तलाशती हैं। जबकि महिलाओं से हमने यह पूछा तो उन्होंने बेहद मासूमियत से स्वीकारा कि उनके पास कभी इतने पैसे ही नहीं रहे कि वे दिल्ली से बाहर भी निकलें। अपने इलाके यानी शाहदरा में ही वे छोटी-मोटी चोरियां या हाथ की सफाई करके अपना काम चला लेती हैं। एक महिला ने दुःखी होकर कहा, 'यदि हमें जेब काटनी या बड़ी चोरी करनी आती तो क्या हम इस गंदी बस्ती में रह रही होती।'।

इन महिलाओं ने बातचीत में बताया— 'अभी कुछ साल पहले तक उसके घर में व्यापार होता था। अपने चार ट्रक थे। गाड़ी थी। सब कुछ बरबाद हो गया। इसलिए मुझे यह बेशर्मी का धंधा अपनाना पड़ा।'।

पति से पिटती और अपने ही बच्चों के ताने मुनती ये महिलाएं निश्चित रूप से पछतावा कर रही हैं। इन पर मुकदमा भी ठुक गया है। ये इस धंधे से उबरना चाहती हैं। अपना सामाजिक स्तर सुधारना चाहती हैं।

परंतु न तो ये स्वयं काम तलाश रही हैं और न किन्हीं समाजसेवी संस्थाओं या महिला संगठनों की इनके लिए कुछ काम करने की इच्छा ही है। अपने नसीब को रोती, मुफ्त में बैठे-बैठे सब कुछ पा लेने की लालसा लिए ये छोटी-मोटी चोरी-चकारी यूं आसानी से तो छोड़ने से रहीं। इनके मुंह में खून लग चुका है। जिस वातावरण में ये रह रही हैं, वहां सब कुछ खुल्लमखुल्ला है। सामाजिक भय, मर्यादा, प्रतिष्ठा जैसे शब्द इन्होंने किसी कोने-अंतरे में उठाकर रख दिए हैं। जब तक इनके अंदर चेतना या अपराध-बोध की भावना नहीं जाग उठती, तब तक बहुत मुश्किल है इनका इस अंधे कुएं से निकल पाने का रास्ता ढूँढ़ना।

धन्य हैं पत्नी की कुटाई करने वाले

उत्तर प्रदेश रणजी क्रिकेट टीम के कप्तान और अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट खेल चुके ज्ञानेंद्र पांडेय की पूरे लखनऊ शहर में अपनी पत्नी के पीटने और तरह-तरह से प्रताड़ित करने की खूब चर्चा हुई। अंग्रेजी के कई पत्र-पत्रिकाओं ने इसे जमकर छापा। ऊंची सामाजिक हैसियत रखने वाले इस तरह के हजारों मर्दों से दुनिया पटी पड़ी है जो बंद कमरे में अपनी पत्नियों की जमकर धुनाई करते हैं। पत्नी की पिटाई करना पुरुष का स्वप्रदत्त अधिकार है। हालांकि यह भी सौ प्रतिशत सच है कि मर्दों द्वारा हथियाए गए लगभग सभी अधिकार स्वप्रदत्त ही हैं। यूं तो पति-पत्नी का संबंध पुराणों व कथाओं में बराबरी का माना जाता है। परंतु पति स्त्री-देह को शक्ति प्रदर्शन का 'सुलभ क्षेत्र' मानता है। दुनिया के हर देश, संप्रदाय, भाषा एवं जाति के मर्द अपनी पत्नियों को पीटने में अक्ल हैं, इसीलिए पढ़ी-लिखी संपन्न औरत हो या गरीब श्रमिक—सबके पति जूते-लात चलाने के मौके तलाशते रहते हैं।

दुनिया की 75 प्रतिशत औरतें अपने पति के हाथों कभी न कभी पिटी अवश्य है। इनमें से 40 प्रतिशत वे हैं जो सप्ताह में कई बार लात-घूसे खाती हैं—शेष कभी-कभार। अमेरिकी समाज से बेहद प्रभावित लोगों को आश्चर्य होगा कि वहां भी 30 प्रतिशत औरतें मार-पीट की शिकायतें करती हैं। 11 प्रतिशत अमेरिकी औरतें तो गर्भावस्था के दौरान पति द्वारा तब सताई जाती हैं, जब उन्हें पूरे आराम की जरूरत होती है। हमारे यहां भी तकरीबन 16 प्रतिशत औरतें गर्भावस्था के दौरान पिटाई होने के कारण मर जाती हैं, क्योंकि उनके पेट पर लातों-घूसों से प्रहार किए जाते हैं या धक्का-मुक्की की जाती है।

'इंटरनेशनल सेंटर फॉर रिसर्च ऑन वूमैन' नाम की संस्था का मानना है कि घरेलू हिंसा से जितनी औरतें दुनिया-भर में मरती हैं, उतनी तो कैंसर के कारण भी नहीं मरतीं। यह सच है कि इन हिंसक पतियों की मारपीट करने की 'स्टाइल' और कारण अलग-अलग होते हैं। कुछ पति लातों-घूसों के अलावा डंडे, बेल्ट या हॉकी, बैट आदि का प्रयोग करते हैं तो कुछ केवल थप्पड़ मारते, धक्का-

मुक्की करते हैं, कुछ पति गाली-गलौज और घटिया दर्जे की बातें सुनाकर अपनी कुंठा दूर करते हैं। तो कुछ जानलेवा हमला तक कर डालते हैं। कुछ पति दफ्तर या अधिकारियों का गुस्सा निकालने के लिए तो कुछ कुंठित या चिड़चिड़े होने के कारण, कुछ आदतन और कुछ नशे के कारण अपनी पत्नियों को मारपीट-हाथापाई का शिकार बनाते हैं। अभी तक हमारे देश में इस घरेलू हिंसा से निपटने के लिए कोई खास तैयारी नहीं की गई है, क्योंकि हमारे यहां पति-पत्नी की पिटाई का मामला आपसी कहकर हाथ झाड़ लिए जाते हैं।

अपने देश के अलावा अमेरिका, हैती, मिस्र, फिलीपींस, जापान, रवांडा, युगांडा, पाकिस्तान व दक्षिण अफ्रीका तक की औरते पति द्वारा पिटने को मजबूर हैं। हमारी सामाजिक स्थितियां, परंपराएं आदि भी ऐसी हैं, जिनके चलते औरतों का पिटने से बचना मुमकिन नहीं है। अपने देश की लगभग 40 प्रतिशत औरतें पतियों के हाथों लगातार और बुरी तरह मारी-पीटी जाती हैं। ये वे औरते हैं जो समाज के सामने अपने पति को लंबी उम्र के लिए व्रत-उपवास करने को मजबूर हैं, और सिंदूर आदि विवाह-प्रतीक पहनने के प्रति प्रतिबद्ध हैं, परंतु इनकी गुहार सुनने वाला कोई नहीं है। यदि कोई लड़की अपने मा-बाप से बताती भी है कि उसका पति उसे पीटता है तो मां-बाप उसे सब कुछ चुपचाप बरदाश्त करने की सलाह देते हैं। पति को परमेश्वर बताने वाली हमारी संस्कृति लगातार औरत पर दबाव बनाती है कि वह परिवार की इज्जत ढांपने के लिए मुंह सिए, सब सहती रहे।

कुछ लोगो द्वारा तर्क दिया जा सकता है कि चूंकि औरतो में बरदाश्त करने की क्षमताएं घटती जा हैं, वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रही हैं या औरतो में पति की अनुयायी बने रहने की—समर्पण की—कमी आई है, इसलिए पति उद्दड़ हो रहे हैं। मगर यह मात्र कुतर्क होगा, क्योंकि पत्नियां केवल आज नहीं पिट रही हैं, दादी-नानी के जमाने से पिटती आई हैं। फर्क इतना है कि तब भीड़-भरे परिवारों में पीटने के मौके कम थे, औरत तर्क करना नहीं जानती थी, उसके मुंह में जबान कैद थी, उसके अपने सपने नहीं थे। जबकि आज की औरत थोड़ी चेती है, उसमें गरदन घुमाकर देखने का साहस जागा है, अब वह मूक नहीं है, अब वह केवल अनुयायी बनकर जीवन-भर बच्चे नहीं जनना चाहती, वह पति के कदम से कदम मिलाकर सहगामी बनना चाहती है।

अभी ज्यादा पुरानी बात नहीं हुई है जब अपने समय की जानी-मानी अभिनेत्री जीनत अमान ने अपने पति मजहर खान (जो अब इस दुनिया में नहीं है) पर मार-कूट करने और घर से निकाल देने का आरोप लगाया था। उसके

कुछ दिन बाद कपूर खानदान की बहू नीतू सिंह ने अपने पति ऋषि कपूर के खिलाफ मार-पीट करने की शिकायत पुलिस में दर्ज कराई थी। नतीजतन, जीनत अमान को मजहर का घर छोड़ना पड़ा और नीतू सिंह को पारिवारिक दबाव में बयान देना पड़ा कि वह मामूली झगडा था। बहरहाल, मोचने वाली बात यह है कि सामाजिक हैसियत रखने वाली, ये तेज-तर्रार औरतें अगर अपने पति के हाथों इतनी बेरहमी से पीटी जा सकती हैं तो आम औरत का क्या हाल होगा।

कुछ समय पहले तक घरेलू हिंसा को औरतों की आर्थिक निर्भरता से जोड़ा जाता था, मगर अध्ययनों ने स्पष्ट कर दिया है कि आर्थिक रूप से मजबूत तमाम औरतें पति की पिटाई का शिकार सिर्फ इसलिए बनती हैं क्योंकि वे औरत हैं और एक छत के नीचे रहती हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण अमेरिका और जापान हैं, जहां 75 और 61 प्रतिशत औरतें आत्मनिर्भर हैं, फिर भी वहां इस तरह की शिकायतें आम हैं। हममें और उनमें फर्क इतना है कि हमारी औरतें मरते दम तक मुंह सिए पिटती रहती हैं, जबकि पश्चिमी देशों में पति के खिलाफ वे मोर्चाबंदी कर सकती हैं, सरकारी तंत्र, संस्थाएं, मनोचिकित्सक, सामाजिक विश्लेषक आदि उनकी मदद के लिए तत्पर रहते हैं। वहां पति 'सहयोगी', 'सहयात्री' है, पर हमारे यहां 'देवता' है। देवताओं से लड़ा नहीं जा सकता, वे अजेय होते हैं, उन्हें सौ खून माफ होते हैं, वे परम स्वतंत्र होते हैं। जब तक पति इस 'देवतापन' के खोल को तोड़ेगा नहीं, तब तक औरत त्रस्त रहेगी ऐसे बरतावों से।

पति के इर्द-गिर्द सिमटी दुनिया

विश्व शतरज चैंपियनशिप जीतने के बाद से विश्वनाथ आनंद और उनकी पत्नी अरुणा मीडिया में छाये रहे। इसी दौरान अरुणा से की गई कुछ बातों में औरत के 'अंदर' की कुछ भावनाएं भी पकड़ में आई। यह जानकर अच्छा लगा कि 'बुद्धिमानों का बादशाह' अपनी पत्नी के साथ खाना बनाने से लेकर कपड़े धोने तक में मदद करता है। आनंद को मिली कामयाबी को वह पारंपरिक भारतीय पत्नी की तरह बड़ा झिझकते हुए मेहनत का फल बताती हैं और स्वीकारती हैं कि शतरज की बारीकियां उनकी समझ से परे हैं पर वह उन्हें समझने की कोशिश करती हैं।

बातचीत के दौरान उन्होंने स्वीकारा कि कभी-कभी आनंद उनके साथ अपना दबाव बांटना पसंद करते हैं, जबकि कई दफा वह अकेला रहना चाहते हैं और वह एक प्यारी बीवी की तरह उन्हें अकेला छोड़ देती हैं। उदासी और तनाव के पलों में अरुणा आनंद की बातें ध्यान से सुनती हैं और उनके मन की उलझन बांटती हैं। तमाम तसवीरों में आनंद के बगल में खड़ी, दिल खोल मुसकुराती, संतुष्टि से सराबोर अरुणा की इन बातों से 'औरत' की पीड़ा समझी जा सकती है। एक आम भारतीय औरत हो या सचिन तेंदुलकर से लेकर विश्वनाथ आनंद की पत्नी सबकी स्थिति लगभग एक-सी है। पति के सुखों से ज्यादा उसके दुःखों को भोगने वाली यह 'महान भारतीय पत्नी' किन स्थितियों, मनःस्थितियों, समस्याओं और तनावों से गुजरती है, प्रायः इसे दुनिया का कोई मीडिया नहीं समझ पाता। पति की भरजी पर हंसने-रोने वाली इन औरतों की पूरी दुनिया सिर्फ और सिर्फ अपने पति के इर्द-गिर्द सिमटी होती है। पति रूपी संसार से संतुष्ट ये पत्नियां पति के सुखों से सराबोर अपने दुःखों पर सवार हो जाती हैं और अंततः वह समय आता है जब अपने दुःखों को गलीचे के नीचे दबाए संतुष्टि की मुसकराहट लपेटे कैमरों के सामने होती है।

पत्नी चाहे दिहाड़ी मजदूर की हो या किसी खरबपति की या दुनिया-भर को रिझानेवाले नामी-गिरामी पुरुष की, उसकी भावनाएं, इच्छाएं, सपने, अपनत्व

से सराबोर ये तमाम औरतें जानती ही नहीं कि जीवन 'अपने लिए-अपने सुखों के लिए' भी होता है। पति के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी ये तमाम पत्नियाँ पीढ़ियों से अपना 'धर्म' निभाते-निभाते इन सब चीजों की इतनी आदी हो चुकी हैं कि इस 'सीमा' को तोड़ने या उससे बाहर जाने के बारे में सोच भी नहीं सकती। बैंक का बाबू हो या कोई बड़ा अभिनेता, सभी की पत्नियों को अपने पति की 'मानसिक अवस्था' का खयाल रखना होता है। पति खुश तभी परिवार खुश वाली पद्धति आज की कामकाजी औरत को भी निभानी होती है। औरत यदि दफ्तर की समस्याओं के चलते अपसेट हो तो उसके 'कैरिअर' की किसी को चिंता नहीं होती, पर यदि पति महोदय के मिजाज को एक सेकंड में न परखा तो पत्नी की खैर नहीं।

किसी भी अस्पताल के आईसीयू से लेकर जनरल वार्ड तक में देखिए तो पति की शुश्रूषा में जुटी पत्नियों की 'असली स्थिति' सामने आ जाएगी। कुछ दिनों पहले जब अजय देवगन अपनी होम प्रोडक्शन 'राजू चाचा' बनाने में व्यस्त थे तो उसी बीच काजोल का एक इंटरव्यू छपा था जिसमें फिल्म-निर्माण के दौरान अजय द्वारा काजोल को तेज आवाज में धमकाए जाने पर एक सवाल पूछा गया था। सीधी-सादी, पलकें झुकाए, अपने स्वामी की हां में हां मिलाने वाली तमाम पत्नियों की तरह ही फिल्म सिटी की शीर्ष हीरोइन काजोल का जवाब था—'जब मैं कुछ गलत करूंगी तो अजय डांटेंगे ही।' अजय देवगन से कही ज्यादा होनहार, ज्यादा मेहनताना लेने वाली और ज्यादा प्रतिभावान काजोल की यह सफाई बराबरी के पद वाली बात तो कतई नहीं कही जा सकती। क्या अजय की गलती पर काजोल उसे पूरी टीम के सामने तेज आवाज में डांट लगाने को स्वतंत्र है? पत्नी भले ही पति से ज्यादा पैसा कमाती हो, विद्वान् हो या करोड़ों की जमीन-जायदाद की मालिक हो, पर उसका पति हमेशा खुद को उसका मालिक समझता है। औरत पर शारीरिक, मानसिक और नैतिक अधिकार जताने वाले पतियों को अपने अंदर झांककर यह स्वीकारना होगा कि आज स्थितियाँ बिल्कुल बदल चुकी हैं, औरत यदि उससे दो कदम आगे नहीं हुई है तो पीछे भी नहीं है। सिर्फ कुरसी या सोफे पर बराबरी में बिठाकर औरत को सम्मानित करने वालों को अब मानसिक रूप से बराबरी के लिए तैयार हो जाना चाहिए। लैंगिक विभेदों के चलते यह व्यावहारिक विभेद इतने गहरे पैठ चुके हैं कि रोजमर्रा के व्यवहार में औरतों के इस अपमान को आसानी से पचा लिया जाता है। पति चूँकि घर का मुखिया होता है, इसलिए उसे तमाम अनकही सामाजिक व नैतिक छूटे दिए जाने की यह

परंपरा अब अझेल हो चुकी है। इसे कोई स्त्रीवादी तर्क नहीं कहा जाना चाहिए, क्योंकि यह वही समाज है जहां औरत पूजनीय भी है। औरतो के प्रति श्रद्धा में जब देश का प्रधानमंत्री सार्वजनिक रूप से एक औरत के पांव छूने में भी झिझकता न हो, वहां औरत को सम्मान देना कहीं से भी अस्वाभाविक नहीं है। मगर ताज्जुब है कि इसी महान देश में जब जिंदा औरतें दहेज या डायन बताकर जलाई जाती हैं तब हलकी सुगबुगाहटों के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता।

पति चाहे शराबी, झगड़ालू, शक्की, अकडू कुछ भी हो, पत्नी उसकी खामियां छिपाने में ही जुटी रहती है, यहां तक कि मरकहे पतियों के लिए भी पत्नियां व्रत और तीज-त्योहारों में आस्था के साथ भाग लेती हैं। कुछ समय पहले टीवी पर हेमा मालिनी ने अपना इंटरव्यू देते समय कहा था कि धर्मजी के विषय में मैं न कुछ बोलूंगी और न आप कुछ पूछेंगे। यह सवाल पूछा तो नहीं गया था। लेकिन यह जवाब देते वक़्त हेमा की मनःस्थिति उनके चेहरे से एकदम स्पष्ट थी। हेमा धर्मेन्द्र से छोटी हीरोइन कभी नहीं रहीं पर पत्नी बनकर वह वहीं आ गई जहां पत्नी हाती है। पति के सम्मान के लिए मर मिटने वाली पत्नियों के प्रति यह उपेक्षा व उदासीनता उन्हें मानसिक रूप से सताती है। जब वे अपना विरोध दर्ज नहीं कर पातीं तो चिड़चिड़ी और झगड़ालू हो जाती हैं, ऐसे में महान् पतियों को बहाना मिल जाता है कि वे इस लायक नहीं हैं वरना तो उन्हें सिर पर बिठा लेते। पति का चेहरा देखकर यदि पत्नी उसकी मानसिक स्थिति-स्वास्थ्य भांप सकती है तो पति क्यों इसमें फेल है? अति व्यस्त, चर्चित व अपने क्षेत्र में अव्वल पति के लिए पत्नी मुंह सिए जो कुछ बरदाश्त करती है, यदि पति उसका 50 प्रतिशत भी बरदाश्त करने की आदत डाल लें तो तमाम प्रतिभावान औरतों को घरघुस्सू बनकर चौका-बरतन में दिन-रात जुटे रहने की बजाए कुछ कर दिखाने का अवसर खुद-ब-खुद मिल जाए।

औरत का निजी कुछ नहीं होता !

अजित जोगी कांग्रेस पार्टी के प्रवक्ता, प्रखर राजनेता, पूर्व प्रशासनिक अधिकारी और सोनिया गांधी के करीबी होने के साथ ही एक अडियल हिंदुस्तानी बाप भी हैं। इसमें नया कुछ नहीं है, परंतु दहला देने वाला वाक्या कुछ दिन पहले बीता, जब जोगी की युवा बेटी ने अपने गले में फदा डालकर आत्महत्या कर ली। ठेठ हिंदुस्तानी शैली के बाप— जिनके लिए बच्चियां निजी संपत्ति होती हैं, जो रोज उन पर बंदिशें लादते हैं, नियम तय करते हैं और लगाम अपनी मुट्ठी में बांधे रहते हैं— की तरह जोगी ने अपनी युवा बच्ची के सपनों को रौंदा और उसे मौत की तरफ जाने दिया। खबरों के अनुसार, अनुशा जोगी किसी अन्य संप्रदाय के युवक से प्रेम करती थी, जो जोगी को पसंद नहीं था, क्योंकि अपने समाज में 'प्रेम' भी 'परमिशन' के बाद करने का रिवाज है। जोगी के लगातार दबाव के कारण बच्ची को यह कठोर निर्णय लेना पड़ा और अपने असफल होते प्रेम के एवज में उसने जान दे दी।

दूसरी घटना है एसजीपीसी की मुखिया बीबी जागीर कौर की बेटी की सदिग्ध मौत की। घर-परिवार के लगातार दबाव के बावजूद हरप्रीत ने छिपकर शादी की थी। उसका पति आरोप लगाते हुए कहता है कि जागीर कौर शुरू से हमारी शादी के खिलाफ थीं सो उन्होंने अपनी गर्भवती बेटी को मरवाने जैसी गंभीर साजिश रची। यहा भी मुद्दा सिर्फ प्रेम का है। प्रेम करना, प्रेम विवाह करना अपने इस तथाकथित सभ्य समाज में अस्वीकार्य है। खासकर बेटी का प्रेम, क्योंकि वह सीधे परिवार की इज्जत से जुड़ता है।

दिल्ली के राजौरी गार्डन क्षेत्र में इसी बीच राजू नामक एक कथित प्रेमी ने अपनी प्रेमिका पर तेजाब फेंककर उसे 25 प्रतिशत घायल कर दिया। प्रेमी का आरोप है कि वह उसके साथ शादी नहीं कर रही थी। अभी ज्यादा दिन नहीं हुए हैं, जब स्टार प्लस ने कानपुर के एक लड़के को दिखाया था, जिसने प्रेमानुभूति में अपनी प्रेमिका पर तेजाब डालकर उसे 80 प्रतिशत जला दिया था। कोई दस साल पहले की घटना है गोरखपुर के एक मध्यवर्गीय परिवार की खूबसूरत

लडकी क पीछे एक लफगा टाइप का युवक लग गया था। वह लडका से शादी करना चाहता था। बचते-बचाते लडकी की शादी किसी दूसरी जगह कर दी गई, मगर उस युवक ने उसकी ससुराल और पति को अपने प्रेम का वास्ता देकर लडकी को छोड़ने की जिद की। शक की बिना पर लडकी का तलाक हो गया और उसके परिवार को भयाक्रांत होकर गोरखपुर छोड़ना पड़ा।

ये पुरुष-प्रेम के बीहड नमूने हैं, जहां लुटती अंततः लडकी ही है। तमाम ऐसी घटनाएं हैं, जब औरत को प्रेम के लिए तबाह होना पड़ता है। एकतरफा प्रेम करने वाले लडके बड़ी आसानी से लडकी को बदनाम कर देते हैं। उसके बारे में आस-पास के लोगो में वाहियात बातें फैलाते हैं, उसे बदचलन, आवारा जैसे धिनौने लफजों से प्रचारित करवाते हैं। वर पक्ष अथवा लडकी के होने वाले पति को पत्रादि लिखकर अनर्गल प्रचार करते हैं। चाहे जोगी जैसे समझदार बाप की बेटी हो या किसी अनपढ़ टाइप के सज्जन की बच्ची हो, प्रेम की कीमत अतंत. उसे ही चुकानी होती है।

जोगी या जागीर कौर ने अपनी बच्चियों के जिन सपनों को रौंदकर कफन लपेट दिया, उसके लिए उत्तरदायी कौन माना जाए? यह सच है कि अपने बच्चे को खोने की पीडा उन्हें जीवन-भर सालेगी, मगर उतना ही बड़ा सच यह भी है कि पीढ़ियों से चली आ रही सामाजिक संरचना को बदलने के प्रति ये 'समझदार' लोग भी आगे नहीं आना चाहते। प्रियंका गांधी ने जब राबर्ट से शादी की जिद ठानी थी तो सोनिया यू ही नहीं तैयार हुई होगी, खुद प्रेमविवाह करने वाली सोनिया ने कुछ महसूस होगा तभी अपनी इच्छा के विरुद्ध इतना कड़ा निर्णय लिया, वरना वे चाहतीं तो प्रियंका आज अजीम प्रेमजी या धीरूभाई अंबानी जैसे परिवार की बहू होती।

हमारे समाज में औरतों पर लगी पाबंदियां आज भी ज्यों की त्यों हैं। पुरुष चार जगह प्रेम करे या तीन शादियां करे, वह स्वतंत्र है। उसे समाज बहिष्कृत नहीं करता। उसे कुलटा और करमजली नहीं कहा जाता। औरत यदि अपना जीवन अपने अनुसार बिताना चाहे तो सारे नियम बदल जाते हैं। औरत और आदमी को अलग-अलग नजरियों से देखने की यह परंपरा हमें त्यागनी होगी, वरना यू ही हमारी लडकियां मरती रहेंगी, तड़पती रहेंगी। प्रेम स्वाभाविक भावना होने के बावजूद बंदिशों के दौर से हमेशा गुजरता रहा है। कोई शादीशुदा औरत किसी दूसरे मर्द से प्रेम करती है तो वह बदचलन, घटिया और बेहया औरत बन जाती है पर जब शादीशुदा चार बच्चों का बाप प्रेमजाल फेंकता है तो वह

घृणित नहीं कहलाता! यह दो तरह का रवैया अद्भुत है। एक युवती किशोर बच्चों के अधेड़ उम्र वाले बाप के प्रेम के चक्कर में आ गई। युवती के घरवालों ने उसे घर से निकाल दिया और उसके साथ संबंध खत्म कर लिए, जबकि अपनी बेटी की उम्र की लड़की को फुसलाने वाले सज्जन अपने परिवार के साथ समाज में उसी प्रतिष्ठा के साथ रह रहे हैं साथ ही लड़की के पास भी रातें गुजारते रहते हैं।

आज के तकनीकी युग में भी लड़कियों के मां-बाप यही उम्मीद रखते हैं कि वे परिवार की इज्जत को बट्टा न लगाए और उनके द्वारा चुने लड़के को ही वर माने। हमारे यहां प्रेम-विवाह इसीलिए असफल हैं, क्योंकि परिवार कभी इन्हे मन से स्वीकारता नहीं। खासकर यदि बहू किसी दूसरी जाति या धर्म की तो हो उसे ताउम्र ताने-उलाहने सुनने पड़ते हैं। समय के साथ हमें जिन चीजों के प्रति स्वयं को बदलना चाहिए, वह करने में सकुचाते क्यों हैं हम? फिल्मी सितारों की बातें तो किसी से छिपती नहीं, ऐश्वर्य राय दुनिया-भर का परिचित नाम है, मगर उसे भी तमाम आम लड़कियों की तरह अपने घरवालों से झगडना पड़ा और अंततः सलमान खान के लिए अपनी मां का घर छोड़ अलग रहने का निर्णय लेना पड़ा। लड़कियों पर जबरन थोपी जाने वाली ये बंदिशें क्या आज भी लड़कियों के दायम दर्जे के जीवन का संकेत नहीं करती? यह सच है कि मा-बाप बच्चियों का बुरा नहीं चाहते, मगर यह भी उतना ही बड़ा सत्य है कि अब लड़कियां 10-12 साल की नहीं ब्याही जातीं, कि जब जहां चाहा, बाध आए।

अजित जोगी और जागीर कौर की बच्चियों के साथ जो कुछ भी हुआ वह किसी गांव-कस्बे में पंचायती निर्णय के बाद मार-मार के जान लिए जाने या बियाबान खेत के किसी पेड़ पर लटकाकर मार दिए जाने वाले प्रेमी सरीखा ही सुलूक है। बच्चियों के भविष्य के प्रति सचेत रहना तो जरूरी है, मगर उनके जीने के अधिकार को कब तक अतिक्रमित करते रहेंगे?

भावना में बहकर औरत से हुई गलती नैतिकता के पैरोकारों को हमेशा कचोटती है, जबकि मर्द स्वतंत्र है। वह मनबहलाव के लिए अड्डेबाजी करे या रंडीखाने जाए, यह उसका अपना व्यक्तिगत मसला है! पर औरत का व्यक्तिगत कुछ नहीं होता?

पत्नी के साथ बलात्कार

शीर्षक पढ़ने में भले ही अटपटा लगा हो, परंतु यह शत-प्रतिशत सच ही है। बलात्कार यानी जबरदस्ती यौन संबंध बनाना। यह संबंध भले ही किसी भी महिला से हो। यदि यौनाचार करते समय दूसरे पक्ष की सहमति या इच्छा नहीं है तो वह जबरदस्ती ही है। जबरदस्ती किया जाने वाला यौनाचार ही हमारे यहां बलात्कार माना जाता है। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जहां शादी के बाद पत्नी की अनिच्छा के बावजूद पति द्वारा जबरदस्ती की जाती है।

चूंकि हमारे समाज में इस तरह की घटनाएं प्रकाश में आ ही नहीं पाती, यहां तो पति परमेश्वर की सारी इच्छाएं-अपेक्षाएं पत्नी के लिए शिरोधार्य होती हैं। शारीरिक संबंधों के प्रति भी प्रायः भारतीय पत्नियां संकोची होती हैं। वे अपनी इच्छा या उत्साह, कम से कम सेक्स के प्रति दर्शाना अपना अपमान समझती हैं। नैतिकता और मर्यादा की ओढ़नी ओढ़े ये महिलाएं सेक्स को पति की इच्छा पर छोड़ देती हैं। पति अपनी इच्छा जब चाहे, जैसे चाहे पूरी करने के लिए स्वतंत्र होता है। इस सबके बावजूद, पति द्वारा सेक्स को लेकर की जाने वाली ज्यादातया महिलाओं को तमाम मनोरोगों में जकड़ देती हैं।

संतोषी, सहनशील और लजीली पत्नियां आखिर कब तक पति द्वारा शारीरिक रूप से निचोड़ी जाती रहेंगी? पिछले कुछ समय से एकाध मामले सामने आने शुरू हुए हैं, जब पत्नी ने पति पर 'बलात्कार' करने का आरोप लगाया। हमारी सामाजिक व्यवस्था के अनुसार, पति का पत्नी और उसके शरीर पर पूरा अधिकार है। परंतु कानून इसकी इजाजत बिल्कुल नहीं देता। कानून पति-पत्नी को बराबरी का दर्जा देता है। सेक्स जैसी आधारभूत आवश्यकताओं में दोनों की बराबर सहमति निःसंदेह जरूरी होती है।

पति अपनी इच्छा से जब मरजी शारीरिक संबंध बनाने को स्वतंत्र है, पर औरत ने यदि इच्छा जाहिर कर दी तो उसे कामुक-कुलटा और न जाने किन-किन आरोपों को झेलन के लिए तैयार रहना पड़ता है।

ब्रिटेन, जर्मनी जैसे तमाम विकसित देशों में भी इस तरह के केस तेजी से

सामने आ रहे हैं। ब्रिटेन की एक महिला ने अपने पति पर उसकी इच्छा के बगैर किए गए शारीरिक संबंधों के कारण उसे न सिर्फ हर्जाना भरने के लिए मजबूर किया, बल्कि काफी समय तक जेल की सलाखों के पीछे जीवन गुजारने पर भी मजबूर कर दिया।

हमारे समाज में आज भी शादियां मां-बाप या घरवालों की इच्छा से की जाने का प्रचलन है। ऐसे में कई बार लड़के-लड़कियों के विरोध के बावजूद परिवारवाले अपनी इच्छा उन पर लादने से बाज नहीं आते। सामाजिक रीतियों की आड़ में इस तरह की शादियां एक प्रकार से एक-दूसरे पर थोपने का काम करती हैं। बगैर मरजी के की गई इन शादियों में लड़के-लड़कियां एक-दूसरे को को मानसिक रूप से स्वीकार नहीं कर पाते। उनके दिमाग में एक खास तरह की उदासीनता घर कर जाती है। ऐसे में सेक्स के प्रति अरुचि हो जाना असंभव नहीं है।

दूसरे, हमारे सामाजिक ताने-बाने में 'सेक्स' इतना गोपनीय और चर्चा से परे का विषय है कि इस पर जुबान खोलना भी अश्लीलता के दायरे में आता है। इसलिए सेक्स को लेकर तमाम भ्रांतियां फैली रहती हैं, जिनके चलते वे कभी सेक्स को सामान्य रूप में नहीं ले पाते।

बूढ़े आदमी से षोडशी की शादी जैसी घटनाएं आज भी आम हैं। दहेज आदि कुछ ऐसी समस्याएं मुंह बाए हमारे सिर पर इस तरह खड़ी हैं, जिनके कारण कुछ मा-बाप बच्चियों की शादी बूढ़ों से कर देते हैं। ऐसे संबंधों में लड़कियों की रुचि सेक्स से उचट जाती है। जब सुहागरात या प्रथम रात्रि में पति द्वारा यौन संपर्क बनाने की कोशिश की जाती है तो वे घबरा जाती हैं और खुद को उनके बंधन से छुड़ाकर भागने का प्रयास करती हैं। सेक्स के प्रति अरुचि और सामने वाले तथाकथित पति का खौफ उनके दिमाग से निकल नहीं पाता। शारीरिक संबंध बनाने से घबराने वाली इन लड़कियों से जबरदस्ती यौन संबंध बनाए जाते हैं। इस तरह का यौनाचार बिलकुल बलात्कार वाले माहौल में संपन्न होता है।

एक घटना में लड़की का प्रेम-संबंध किसी अन्य युवक से था। मां-बाप ने उसकी मरजी के बगैर शादी दूसरे व्यक्ति से कर दी। चूंकि इच्छित पुरुष से उसकी शादी न हो सकी, इसलिए पति के प्रति उसके मन में घृणा भर गई। लड़की के अपने शब्दों में 'शारीरिक संबंधों के दौरान वह मुझे भयानक लगा।' लेकिन लड़की से उसका पति संबंध कायम करने में अंततः सफल हो गया। इस

तरह के संबंधों को आखिर किम श्रेणी में रखा जा सकता है?

इतना ही नहीं, कुछ पुरुष सेक्स के दौरान हिसक रूप अपना लेते हैं, जिसे चुपचाप सहन करते जाना एक तरह की मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना है। चिकोटी नोच लेना, दात से इतनी जोर से काट लेना कि खून छलछला आए, खरोच लेना, हाथ-पैर मरोड़ देना या बुरी तरह दबा देना उनकी प्रेम अभिव्यक्ति की परिभाषा होती है। सहनशीलता की मूर्ति महिलाएं उम्र-भर इस तरह की क्रूरतम प्रेमाभिव्यक्ति का शिकार मूक रूप से बनी रहती हैं। अपना दुःख प्रायः वे किसी के सामने बता भी नहीं पातीं।

हजारों पुरुष बड़े फख के साथ स्वीकार भी करते हैं कि यह तो उनका हक है। वे जब, जहां, जैसे चाहें अपनी जरूरत के लिए औरत को इस्तेमाल कर सकते हैं। पत्नी के बीमार होने, किन्हीं कारणों से जी अच्छा न होने आदि समस्याओं के बावजूद पति द्वारा शारीरिक संबंध बनाये जाने को भी इसी जबरदस्ती के अंतर्गत रखा जाना चाहिए। इस तरह के संबंध अमूमन पतियों द्वारा बनाए जरूर जाते हैं परंतु इनका खुलासा नहीं हो पाने के कारण ये बेड-रूम के अधेरे तक ही रह जाते हैं। महिलाओं में बढ़ती जागरूकता और सेक्स के प्रति इच्छा जागृत होने के कारण कुछ मामले सामने आए हैं, जिससे पता चलता है कि पति भी लगातार कई-कई वर्षों तक पत्नियों के साथ बलात्कार करते आ रहे हैं। चूंकि कानून में इस तरह के बलात्कारों को गंभीरता से नहीं लिया गया है, इसलिए अभी भी इन केसों का उचित निर्णय नहीं हो पाता है। पति द्वारा पत्नी से किए गए बलात्कार को उचित निर्णय का इंतजार आज भी है। शायद कुछ समय बाद सुधार आ सके।

पाकीजगी परेशान है पाकिस्तान में

पाकिस्तानी जेलों में एक वर्ष (1992-93) के दौरान लगभग 20,000 महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया। वाशिंगटन स्थित मानवाधिकार संगठन 'एशिया वाच' ने इस विषय पर एक रिपोर्ट पेश की है। संगठन का दावा है कि वहां सुरक्षाकर्मियों द्वारा जेलों में महिलाओं के साथ बलात्कार, छेड़छाड़, भद्दी गाली-गलौज के तमाम वाक्ये होते रहते हैं। हालांकि पूरे राष्ट्र में महिलाओं के साथ होने वाले व्याभिचार का यह अंश मात्र है।

पाकिस्तान में महिलाएं जेल या पुलिस थाने के नाम से थरती हैं, क्योंकि वहां की पुलिस का उनके साथ व्यवहार बेहूदा, क्रूर व पाशविक है। बलात्कार की शिकार महिला यदि थाने में रपट लिखाने आती है तो उससे अट-शट सवाल के अतिरिक्त पुलिस वाले प्रत्यक्षदर्शी लाने पर मजबूर करते हैं। पाकिस्तानी कानून के मुताबिक बलात्कार की शिकार महिला को केस दर्ज करवाते समय कम से कम एक प्रत्यक्षदर्शी लाना जरूरी है। प्रत्यक्षदर्शी के अभाव में महिला की रपट दर्ज तक नहीं की जाती। अमूमन रिपोर्ट दर्ज करवाने आई महिला को ही पुलिसकर्मी दोष मानकर जेल में ठूस देते हैं।

इतना ही नहीं, बल्कि बलात्कार या अन्य छेड़छाड़ संबंधी मामलों में पुलिसकर्मियों के हाथ लगी महिलाएं प्रायः 'हुदूद कानून' के अंतर्गत बंद कर ली जाती हैं। 'हुदूद कानून' पाकिस्तान के राष्ट्रपति स्वर्गीय जनरल जिया उल हक ने लागू किया था। इस कानून के अंतर्गत हद जारी किया जाता है। हद के द्वारा बलात्कार या अनैतिक काम में शामिल औरतों या मर्दों को पत्थरों से मार-मार के अधमरा कर दिया जाता है। कुछ जगहों पर पत्थरों की बजाए, कोड़ों का प्रयोग किया जाता है। इस जानलेवा चौतरफे हमले से प्रायः अपराधी की जान तक चली जाती है, कई बार वह अपाहिज हो जाता है या चुटहिल शरीर लिये किसी अंधेरी कोठरी में तडपता रहता है।

इस कानून की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लगातार आलोचना होती रही है। इसके बावजूद यह कानून आज भी जारी है और निरीह आम आदमी पर कहर

बरपा रहा है। पुलिसिए एक तरफ तो इसका अमोघ अस्त्र के रूप में प्रयोग कर ही रहे हैं, दूसरे, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, वहा न्यायिक प्रक्रिया शुरू किये बिना ही, अपराध की पुष्टि होने से पहले पुलिस अधिकारियों द्वारा न्याय मागने आए व्यक्ति पर हुदूद लागू कर उसे मौत के घाट उतार दिया जाता है।

अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को भेजी गई एक अन्य रिपोर्ट में कहा गया है कि लाहौर की जेल में दो ईसाई महिलाओं को पुलिस अधिकारियों ने कोड़ो से मारा और धाने में जबरदस्ती नंगा करके नचवाया। शायद यह अकेली घटना है जिसकी जानकारी अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग तक पहुंच पाई, वरना वहां इस तरह की घटनाएं प्रायः थानों में घटती ही रहती हैं। कुछ अन्य वाक्ये जो खबर बन पाए, उनके अनुसार, गिरफ्तार करने के बाद पाकिस्तानी पुलिस अधिकारी महिलाओं व पुरुषों दोनों को बिना वजह तंग करते हैं, प्रताड़ित करते हैं तथा उनके परिवार या संबंधियों के सामने नंगा तक कर देते हैं। शर्म-हया तथा सामाजिक मर्यादा के चलते भुक्तभोगी किसी के सामने इसकी चर्चा करने से हिचकिचाते हैं। न्याय तो उन्हें मिलने से रहा, यह सोचकर चुपचाप खून का घूंट पीकर रह जाते हैं।

कुछ वर्ष पहले पाकिस्तान की मुख्य विपक्षी पार्टी मुस्लिम लीग ने इस दिशा में कुछ कर गुजरने की इच्छा से कदम भी बढ़ाए थे, मगर जल्दी ही वह भी इस मुद्दे पर मुंह-सी के दुबक गई। मुस्लिम लीग ने दावा किया था कि बेनजीर सरकार के सत्तासीन होने के कुल 2 महीनों के भीतर ही 277 से अधिक मामलों में पुलिस द्वारा गिरफ्तार की गई महिलाओं के साथ बदसलूकी की गई और बलात्कार किया गया। चूंकि इस मामले को पूर्णतः राजनीतिक बनाने की मनःस्थिति से तूल दी गई थी, जब उन्होंने यह देखा कि वे इसे पूरी तरह नहीं भुना पा रहे हैं तो उन्होंने इस मसले को बीच में ही छोड़ दिया। जबकि यह एक अहम् मुद्दा है, सामाजिक उत्थान के अतिरिक्त इसे महिलाओं की प्रगति में अवरोध मानते हुए सरकार कोई मजबूत कदम उठाना तो दूर इस विषय में चर्चा तक नहीं करती। सरकार इस मामले में चुप्पी साधे भले ही बैठी रहे, परंतु स्वयं 'ह्यूमन राइट्स कमीशन ऑफ पाकिस्तान' (एच.आर.सी.पी.) ने देश में महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों तथा शोषण के लिए बेनजीर सरकार को दोषी ठहराया है। अपनी ताजा रिपोर्ट में एच.आर.पी.सी. ने 'प्रभावशाली व्यक्तियों' द्वारा महिलाओं के मानवाधिकारों को छिन्न-भिन्न करने को प्रमुख कारण मानते हुए गंभीर चिंता व्यक्त की है। रिपोर्ट में यह भी आरोप लगाया गया है कि 'हुदूद कानून' का

महिलाओं पर जबरदस्ती प्रयोग किया जा रहा है। यही नहीं, रिपोर्ट में यह भी साफ लिखा है कि पाकिस्तानी जेलों में महिलाओं को समझे-बूझे तरीकों से प्रताड़ित किया जा रहा है, उनका यौन शोषण बाकायदा जारी है।

एमनेस्टी इंटरनेशनल ने अपनी हाल की रिपोर्ट में लिखा है कि पूरी दुनिया में अकेला पाकिस्तान ही ऐसा राष्ट्र है जहां बलात्कार के मामले में महिलाओं को गिरफ्तार किया जाता है। पंजाब की लगभग 12 महिलाएं एक साल में पाकिस्तानी जेलों में कैद की गईं और जेल में उनके साथ सामूहिक बलात्कार किया गया, बार-बार चीख-पुकार, शिकायत और अर्जियां जमा करवाने के बावजूद आज तक ऐसे अपराध करने वाले पुलिस अधिकारियों के खिलाफ कोई कदम नहीं उठाया गया।

तमाम वैज्ञानिक सुविधाओं, डॉक्टरी परीक्षणों तथा यौन विशेषज्ञों की उपस्थिति के बावजूद पाकिस्तानी सरकार इस तरफ कोई ठोस कदम उठाने की तैयारी करती नहीं दिखती। महिला शासक (बेनजीर भुट्टो) रहने के इतने सालों बाद भी इस विषय पर कभी कोई बहस चर्चा नहीं की गई। जबकि वहां के तमाम डॉक्टर, वकील, अध्यापक तथा अन्य बुद्धिजीवी लगातार इस विषय पर विचार-विमर्श करने की सलाह दे चुके हैं, धरने दे चुके हैं, जापन दे चुके हैं। तब भी पाकिस्तान में हर तीसरे घंटे एक औरत बलात्कार का, और हर चौथे घंटे एक औरत सामूहिक बलात्कार का शिकार बन रही है। यही नहीं, बल्कि हर दूसरे बलात्कार का शिकार एक बच्ची है।

‘जख्मी औरत’ से जख्मी नर्सों तक

अरसा पहले एक फिल्म आई थी ‘जख्मी औरत’। सार्थक सिनेमा के दम तोड़ते दिनों में यह फिल्म बहस के केंद्र में रही थी। तब इसके निर्माता-निर्देशक लदन रिटर्न अवतार भोगल तमाम राष्ट्रीय पत्रिकाओं की कवर स्टोरी बने थे। फिल्म का विषय आपको मालूम ही होगा, इसमें बलात्कारी कानूनी खामियों का फायदा उठाकर बच निकलते हैं और नायिका (डिंपल कपाडिया) अपनी महिला डॉक्टर दोस्त (रमा विज) के साथ मिलकर बलात्कारियों को बधिया कर एक खास तरह की सजा देती हैं। उन्हीं अवतार भोगल ने बाद में एक टेलीविजन चैनल के लिए ‘दिल का डॉक्टर’ नाम से एक फिल्म बनाई।

एक महीने में दिन में दस बार इस फिल्म का ट्रेलर टी.वी. पर दिखाया गया। इसमें अस्पताल की नर्सों के साथ डॉक्टर को मसखरेपन में लगभग अश्लील हरकतें करते दिखाया गया। फिल्म में यह घटिया रोल गोविंदा ने नहीं, बल्कि अनुपम खेर जैसे मजे हुए अभिनेता ने निभाया था। फिल्म में नर्सों को मिनी स्कर्ट टाइट की विशेष फिल्मी ड्रेस पहनाई गई थी। इसका विरोध करते हुए दिल्ली नर्सिंग आर्गनाइजेशन ने केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री से इस भोंडी फिल्म पर तत्काल रोक लगाने की मांग की। नर्सों के इस आर्गनाइजेशन का आरोप था कि फिल्म में नर्सों का पहनावा बेहद घटिया ढंग का दिखाया गया है। फिल्म में मिनी स्कर्ट के अलावा नर्सों को हाथों में चूड़ियां पहने और भडकीले मेकअप के साथ दिखाया गया है, जो नर्सों की सेवाओं का अपमान है। आर्गनाइजेशन की अध्यक्ष (श्रीमती टी.के. चौधरी) ने कहा कि कोई भी नर्स अपने मिशन को इस तरह बदनाम होते नहीं देखना चाहेगी।

यह फिल्म रिलीज नहीं हुई थी, सेंसर बोर्ड ने भी फिल्म के दृश्य और गाने के द्विअर्थी संवादों पर आपत्ति जताते हुए पहले तो इसे प्रमाणपत्र देने से इनकार भी कर दिया था, लेकिन बाद में कुछ दृश्यों को काट देने के बाद ‘ए’ सर्टीफिकेट दे दिया गया। ‘ए’ सर्टीफिकेट मिलने के कारण यह फिल्म देर रात से पहले नहीं दिखाई जा सकेगी। इसके लिए फिल्म बनाने वालों ने सेंसर बोर्ड

के पिछले दरवाजे से अपील की और सेंसर बोर्ड की रिव्यू कमेटी (७) ने बताते हैं इसे 'यू' सर्टीफिकेट दे दिया।

डॉक्टरों के पेशे को लेकर यह पहली फिल्म नहीं है। अस्पतालों में पेट में कैचियां छोड़ देने, दाई की जगह बाई टांग काट देने, अस्पतालों की दवाइयां बेच देने या फर्जी मेडिकल सर्टीफिकेट आदि विषयों को लेकर डॉक्टरों की खिंचाई करने वाली तमाम हास्य फिल्में बन चुकी हैं। हॉलीवुड की तो यह प्रिय थीम मानी जाती है। इस विषय पर वहां ऐसी फिल्मों की कई सीरीज बन चुकी है। इनमें से किसी फिल्म का संदेश या उद्देश्य सामाजिक सरोकारों से हटकर नहीं दिखाया गया है, लेकिन अवतार भोगल की फिल्म ऐसी नहीं है। यह एक शुद्ध मसाला फिल्म है और ताजा फिल्म मंडी का एक माल रही, जिसमें डॉक्टरी जैसे महत्वपूर्ण पेशे का मजाक सिर्फ चटखारे लेने के लिए था। सच बात यह है कि थोक के भाव पतन के बाद भी कुछ ही पेशों में अब ईमानदारी शेष बची है। डॉक्टरी भी इन्हीं में से एक है।

इस पेशे में नर्सों का काम डॉक्टरों की तुलना में कहीं ज्यादा धैर्य और सेवा का होता है। यह ठीक है कि उनकी भी एक निजी जिंदगी होती है, लेकिन नर्सों का वह रूप कहीं भी और शायद कभी भी देखने को नहीं मिला जो अवतार भोगल ने दिखाया है। ड्यूटी और जिम्मेदारी के अनुपात में नर्सों का वेतन भी बहुत कम है। आप करोड़ों दर्शकों को अगर बंदरो की तरह उछलती-कूदती, कामुक नृत्य करती नर्सें दिखाएंगे तो समाज में क्या संदेश जाएगा! फिल्म विधा की दृष्टि से भी दिल का डॉक्टर एक भोंडी फिल्म ही नजर आई। हास्य या व्यंग्य का विजन कभी यह नहीं कहता कि आप किसी की आत्मा को झकझोरने के बजाए उसमें सूजा भोंक दें।

'जख्मी औरत' फिल्म रिलीज होने के बाद 'रविवार' पत्रिका से इंटरव्यू में अवतार भोगल ने बड़ी-बड़ी बातें की थीं। हालांकि उनकी वह फिल्म एक अंग्रेजी फिल्म का रिमेक थी, लेकिन भोगल की बातें सुनकर लगा था कि सार्थक सिनेमा को एक और निहलानी या बेनेगल मिलने जा रहा है। जब 'जख्मी औरत' आई थी, उससे पहले बलात्कार की सख्या में भयावह वृद्धि हुई थी। फिल्म ने दर्शकों पर गहरा असर छोड़ा था, लेकिन अब नर्सों के पेशे के साथ इस तरह का खिलवाड़ दिखाकर स्वयं भोगल ने उनके साथ एक तरह का मानसिक बलात्कार ही किया।

महिला आयोग के ठोस कागजी सुझाव

महिला आयोग ने कामकाजी (दफ्तरी) महिलाओं के हित के लिए अनेक सुझावों-भरी एक रिपोर्ट सरकार को दी थी। 130 पृष्ठों की यह रिपोर्ट इस राष्ट्रीय आयोग ने दिल्ली की महिलाओं को मद्देनजर रखते हुए बनाई थी। पूरे देश में रोजगार पाने वाली कामकाजी महिलाओं की स्थिति पर एक नजर डाले तो हिंदीभाषी क्षेत्र के शहरी इलाकों में यह 10 प्रतिशत और ग्रामीण इलाकों में तकरीबन 30 प्रतिशत है। देश में सरकारी आंकड़ों के मुताबिक सौ में से 39 महिलाएं साक्षर हैं। इनमें से 5 प्रतिशत से भी कम महिलाएं उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। इन 5 प्रतिशत में भी नौकरी कर रही महिलाएं हम अपने आसपास देखें, तो दो प्रतिशत से ज्यादा नहीं हैं। इस हिसाब से ठीक-ठाक स्थायी नौकरी कर रही महिलाएं कितनी हो सकती हैं, इसका हम स्वयं अंदाजा लगा सकते हैं। आयोग ने अपनी इस रिपोर्ट में गांवों, कस्बों में खेती-मजदूरी में खट रही महिलाओं के लिए कुछ नहीं सोचा है, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। अधिकांश महिलाएं अपनी जीविका के लिए खेती पर निर्भर हैं। घरेलू उद्योग, हस्तशिल्प (पापड़, बीड़ी, स्लेट) बुनाई, दर्जीगीरी, दक्षिण में पेड से रबर, नारियल, सुपारी, जूट आदि निकालने के अलावा छोटे कारखानों जैसे गुड़िया, खिलौने, घड़ी, पटाखों, प्लास्टिक उद्योग, माचिस, चूड़ी उद्योग, बिंदी बनाने आदि में महिलाओं की खासी तादाद है। महिलाओं का सबसे ज्यादा शोषण इन्हीं क्षेत्रों में है। वे जितना काम करती हैं उन्हें उसका एक-तिहाई पारिश्रमिक भी नहीं मिलता है। इसकी तुलना में उच्च शिक्षित कामकाजी महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं तो बहुत खराब भी नहीं है। इस रिपोर्ट में आयोग ने कामकाजी महिलाओं का मातृत्व अवकाश बढ़ाकर छह महीने करने, काम का एक घंटा घटाने, दफ्तरों में बच्चों के लिए पालनाघर बनाने, हर दफ्तर में महिलाओं के मनोरंजन व आराम के लिए अलग कमरा बनाने, स्पेशल लेडीज बसों की संख्या बढ़ाने के मुख्य सुझाव दिए थे।

कामकाजी महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या हमेशा महिला होस्टलों की रही है, जिस पर आयोग ने कोई टिप्पणी नहीं की। अकेले दिल्ली को लें, तो

125 में से सिर्फ एक महिला को होस्टल मिल पाता है, वह भी तमाम जोड़-तोड़ और सिफारिशों के बाद। व्यावहारिक तौर पर यह पाया गया है कि ज्यादातर संस्थान एक खास संख्या के बाद महिलाओं की भर्ती इसलिए रोक देते हैं, क्योंकि श्रम कानूनों के अंतर्गत यदि 30 प्रतिशत से अधिक महिलाएं हैं तो क्रेच आदि की सुविधाएं देनी पड़ेंगी। इस तरह महिलाओं की सुविधाओं की मांग महिलाओं के लिए ही नकारात्मक साबित हो रही है। ज्यादातर गैर सरकारी संस्थान महिलाओं को उनके गर्भपात का अवकाश नहीं देते, जबकि इसके लिए 40 दिन का अवकाश देने की व्यवस्था है। छोटे संस्थान महिलाओं के गर्भवती होने के छठे या सातवें महीने में कोई न कोई आरोप लगाकर उन्हें काम से हटा देते हैं। सिर्फ इसलिए ताकि उन्हें मातृत्व अवकाश न देना पड़े। महिला आयोग को चाहिए कि वह ऐसी घटनाओं पर देशव्यापी विस्तृत सर्वेक्षण करवाए और श्रमायुक्तों से तुलनात्मक विवरण मागे।

यह भी शर्मनाक है कि आयोग ने अपनी रिपोर्ट में घरेलू नौकरानियों को प्रशिक्षण देने का सुझाव दिया था, जबकि जरूरत इन्हें अल्प शिक्षित करके, झाड़ू-पोंछा जैसे काम से हटाकर, कुछ ठोस काम दिए जाने की है। अभी तक दलित या निचली जातियों की महिलाएं ही घरेलू कामों में लगी हैं। सरकार भी अब इन घरेलू नौकरियों को बाहर निर्यात करने लगी है। इसी तरह मातृत्व अवकाश को छह महीने तक बढ़ाने के पीछे का तर्क यही है कि शिशु पालन सिर्फ महिलाओं की जिम्मेदारी है, क्यों नहीं पुरुषों को भी पितृत्व अवकाश दिया जाता? संतानोत्पत्ति महिला के लिए दूसरे जन्म के बराबर होती है।

कुछ समय पहले अखबारों में एक खबर छपी थी, जिसके अनुसार महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों पर काबू पाने के लिए खोले गए महिला थानों और महिला पुलिस प्रकोष्ठों की इंचार्ज महिला पुलिस अधिकारी अपने पुरुष अधिकारियों द्वारा किए गए भेदभाव व शोषण की शिकार थीं। उन्हें वह अधिकार और कार्यस्थल नहीं दिया गया, जो उसी कैडर के पुरुष अधिकारी को प्राप्त था। इससे हम कामकाजी महिलाओं की हालत का अनुमान लगा सकते हैं। जब तक मानसिकता नहीं बदलेगी, सिर्फ कानून बनाने और बदलने से क्या होगा?

मजदूरी कर रही महिलाओं की स्थिति यह है कि बुंदेलखंड के पाठा के जंगलों में ठेकेदारों को ठेका देते वक्त तेदू के पेड़ों और मजदूर आदिवासी लड़कियों को एक साथ गिनाए जाने का चलन आज भी जारी है। भोले-भाले आदिवासी एक कटोरा अनाज के लिए दिन-भर ठेकेदारों के दारुओं (लठैतों) की

गोलिया सुनते हैं और उनकी बहू-बेटिया ठेकेदारों द्वारा शारीरिक शोषण की मजबूरी झेलने को मजबूर की जाती हैं।

निष्कर्ष यह कि महिला आयोग यदि सचमुच कामकाजी महिलाओं के लिए कुछ सार्थक सुझाव रखना चाहता है, तो वह विज्ञापनों के जरिये एक जागरूकता अभियान चलाए और सभी संस्थाओं को साथ लेकर देश-भर में कामकाजी महिलाओं की स्थिति के बारे में तथ्यगत और व्यावहारिक आंकड़े इकट्ठे करे, उनका विश्लेषण करे और इन सबके लिए एक निश्चित कार्ययोजना तैयार करे। तब सरकार को सुझाव देने की जरूरत नहीं पड़ेगी, क्योंकि तब यह हक की बात होगी। सदन की सभी महिला सांसद इस मामले को लेकर गभीरता से सरकार पर दबाव बनाएंगी। अकेले दिल्ली के बारे में या इस तरह के हवाई सुझावों से कुछ नहो होने वाला।

महिला आयोग की दिखावटी चिंताएं

तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद कोई आयोग यदि जिम्मेदारी से अपनी भूमिका निभाना चाहे तो वह कितना कुछ कर सकता है, यह टी.एन. शेषन ने हमें दिखा दिया है। संदर्भ राष्ट्रीय महिला आयोग का है। अध्यक्ष मोहिनी गिरि के तमाम इंटरव्यू मीडिया के केंद्र में रहे हैं। इनकी नियुक्ति के पीछे की राजनीति को थोड़ी देर के लिए भुला दिया जाए तो जो जोशो-खरोश उनमें दिखाई पड़ता रहा है, वह महिला आयोग की पिछली अध्यक्षाओं की तुलना में बहुत बेहतर है।

यह दुःखद ही था कि जयंती पटनायक की अध्यक्षता वाले महिला आयोग ने काम के नाम पर ज्यादातर सिफारिशें ही कीं, उनके कार्यान्वयन के बारे में कोई चिंता नहीं की। मोहिनी गिरि इस मामले में थोड़ा सतर्क दिखाई पड़ती हैं। यह भी सही है कि इतने कम समय में किसी का आकलन या मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन पहला कदम ही लक्ष्य की दिशा को निर्धारित करता है और इस दृष्टि से मोहिनी गिरि के यह कहने का मतलब समझ के बाहर है कि राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन देश का दुर्भाग्य है। इस तरह तो कहने को यह भी कहा जा सकता है कि न्यायालयों का गठन देश का दुर्भाग्य है, क्योंकि एक स्वस्थ समाज में अन्याय होना ही नहीं चाहिए। लेकिन यह सब कल्पना की बातें हैं, सारे संविधान, नियम-कानून बनाने ही इसलिए पड़ते हैं कि भविष्य के लिए हम एक बेहतर समाज का ढांचा खड़ा कर सकें, जो अपने रास्ते से भटके नहीं और कोई स्वार्थी सद्‌इच्छाओं की नीयत से बनी संस्थाओं का दुरुपयोग न कर सके।

स्वीडन आज महिलाओं का स्वर्ग है तो सिर्फ इसलिए कि समय के साथ वहां की राजनीति में यह मुद्दा अपनी जगह बनाता चला गया कि महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार नहीं होना चाहिए और राजनीति में उन्हें बराबरी की जगह मिलनी चाहिए। आज स्वीडन में आधे से ज्यादा महत्वपूर्ण राजनीतिक पदों पर महिलाएं ही हैं। समाज का उत्थान द्वंद्ववाद के नियम के आधार पर ही चलता है। अभी हमारे यहां राज्यों में महिला आयोग के गठन की बात चल रही है, अगर ऐसे में हम राष्ट्रीय महिला आयोग को दुर्भाग्य मानकर चलेंगे तो इस दुर्भाग्य के विस्तार

के बारे में क्यों सोचेंगे? इसी तरह महिला आयोग की अध्यक्ष का मानना है कि बीजिंग में होने वाला संयुक्त राष्ट्र का चौथा अंतरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन निरर्थक है और उससे कुछ खास हासिल नहीं होने वाला। उनका कहना है, हर देश की अपनी अलग स्थिति होती है और अधिकतर दिक्कतें उन्हीं स्थितियों से उभरती हैं। उनका निदान भी उसी परिप्रेक्ष्य में ढूँढ़ा जाना चाहिए। पहले तो बीजिंग महिला सम्मेलन को निरर्थक बताना नकारात्मक सोच है, बल्कि यह एक आह्वान करने वाली बात भी है। बीजिंग महिला सम्मेलन के आयोजन के पीछे बुनियादी परिकल्पना यही है कि महिलाओं की दुर्दशा के रूप में भले ही पूरी दुनिया में अलग-अलग हो, पर उनका मूल एक ही है।

उदाहरण के लिए—सबसे विकसित और धनाढ्य देश अमेरिका में महिलाओं की स्थिति एक गरीब और अविकसित देश से भी बदतर है। अमेरिकी महिलाओं को अत्यंत अमानवीय और डरावनी स्थितियों में जीना पड़ रहा है। आर्थिक समस्याओं पर काबू पा लेने के बाद ऐसे कानून-से कारण है जिनके चलते महिलाओं का शोषण होना नहीं रुकता। क्या इसके पीछे सदियों से चली आ रही औरतों के दमन की इच्छा नहीं है? 180 देशों की 25 हजार महिलाएं बीजिंग में मार्केटिंग करने नहीं आ रही हैं। वे एक झड़े के नीचे जुट रही हैं। वे भले ही कोई घोषणा-पत्र न जारी कर पाएं, लेकिन यह एकजुटता क्या सबसे बड़ा संदेश नहीं है। गांधीवादी सोच की मोहिनी गिरि को सामाजिक कार्यों का खासा अनुभव है। वे 1971 में 'वार विडो एसोसिएशन' की संस्थापक अध्यक्षा भी रही हैं। निश्चय ही वे महिलाओं की समस्याओं को नजदीक से समझती हैं। उन्हें यह भी पता होगा कि सिर्फ भावनात्मक सहानुभूति से स्थायी निष्कर्ष नहीं निकलते, जैसे उन्होंने कहा कि नैना के हत्यारे को इंडिया गेट पर फांसी दी जाए। लेकिन यहां क्या यह प्रश्न हमारे दिल को नहीं सालता कि क्यों उस महिला को जन्म देने वाली माँ उसके शव को पहचानने से इनकार करती रही। नैना की माँ क्या यह सब अपनी इच्छा से कर रही है? क्या कोई माँ ऐसा कर सकती है? क्या उस पर यह कहने के लिए कोई दबाव नहीं है? निश्चय ही है और जबरदस्त है। बस, संक्षेप में यही वह बिंदु है जहां से महिला आयोग की जरूरत खड़ी होती है। राजस्थान में साथिन संगठन ने नाममात्र के पैसे में सैकड़ों किलोमीटर रेगिस्तान में पैदल चलकर थोड़े समय में अपनी जगह बनाई, तो सिर्फ इसलिए क्योंकि वहां महिला को समझने और समझाने वाली एक महिला ही थी—तमाम दाव-पेच न जानने वाली अनपढ़।

ऐसे समाजसेवियों से सावधान !

हेमा मालिनी ने भारत की कालजयी नारियों पर एक सीरियल बनाया था। यह दूरदर्शन पर दिखाया गया था। सीरियल का प्रसारण शुरू होने से पहले हेमा मालिनी ने कहा था कि इसे व्यावसायिक लाभ के लिए नहीं बना रही हैं, बल्कि वे इसके माध्यम से देश की स्त्रियों में प्रेरणा और चेतना का संचार करना चाहती हैं। हेमा मालिनी एक महिला पत्रिका की संपादक भी हैं, जिसकी संपादकीय नीति है महिलाओं को जागरूक करने के बारे में अधिकाधिक सामग्री देना। यह अलग बात है कि यह पत्रिका ऐसी सामग्री ज्यादा देती रही है जो महिलाओं को वस्तु बनाती है। बहरहाल, एक साक्षात्कार में हेमा मालिनी ने कहा है कि उन्होंने देश-भर का दौरा करने (शूटिंग, लोकेशन तलाशने आदि के दौरान) के बाद पाया कि महिलाएं ज्यादातर उनसे उनके रूप-रंग के बारे में सवाल करती हैं। महिलाओं की जिज्ञासा होती है कि उनके गाल चिकने कैसे हैं या उनकी आखें इतनी बड़ी-बड़ी कैसे हैं, उनके बाल इतने लंबे कैसे हैं, आदि-आदि।

इस बात को आगे बढ़ते हुए आप यह न भूले कि हेमाजी ने यह दावा पूरे देश की महिलाओं के बारे में किया। हां तो, हेमा मालिनी को महिलाओं की यह एकमात्र समस्या इतनी चुभी कि उन्होंने तय किया है कि वे सौंदर्य-प्रसाधन बनाने का कारखाना लगाएंगी और देश-भर की महिलाओं की इस महती जरूरत को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए पूरा करेगी। हेमा मालिनी महिलाओं की क्या, व्यक्तिगत स्तर पर भी कभी वैचारिक बेचैनी के लिए नहीं जानी गई। हां, इधर भारत की नारियों वाले सीरियल को लेकर उनकी एक ऐसी छवि जरूर बनी थी, जिसे लगा था कि वह सचमुच महिलाओं के लिए कुछ करना चाहती हैं, लेकिन सौंदर्य-प्रसाधन के कारखाने वाली योजना ने अकल का पल्ला खोल दिया और बता दिया कि वह हैं वही, जो थीं। हेमा मालिनी एक तरफ से हमारे यहां नारी को नेतृत्व देने की दिशा में हो रहे प्रयासों का एक प्रतीक हैं जो बड़ी-बड़ी प्रेस कॉन्फ्रेंस करके लंबी-लंबी योजनाएं तो बनाते हैं, लेकिन उनकी आड़ में अपने व्यावसायिक हित ही सोचते हैं।

मध्य प्रदेश में बस्तर के जंगलों में अकेले दम पर पेड़ न काटे जाने के

लिए सरकार और पुलिस से भिड़ने वाली महिला को कोई नहीं जानता, जिसने महिलाओं की एक जुझारू टुकड़ी बनाकर पेड़ काटने वाले सरकारी दस्तों पर हमला करके उन्हें भागने पर मजबूर कर दिया। उस अनपढ़ महिला से राज्य के बड़े-बड़े मेधावी अधिकारी भी तर्क में हार गए। हां, ऐश्वर्या राय को हर कोई जानता है, जिन्होंने मिस वर्ल्ड प्रतियोगिता के मंच पर महिलाओं, बच्चों और मानवता के लिए बड़ी-बड़ी बातें कहीं, या सुष्मिता सेन को ले लोजिए। इन दोनों से पूछा जाना चाहिए कि विश्व महिला सम्मेलन में वे अपने देश की तरफ से क्यों नहीं शामिल हुईं—जैसे भी हो इन दोनों की एक अंतरराष्ट्रीय पहचान तो है ही! लेकिन यहां बात सरकार की आती है, प्रतिबद्धता की आती है। एक तरफ तो सुष्मिता सेन राष्ट्रीय प्रेस क्लब में बैठकर समाजसेवा शुरू करने की कार्ययोजना पर बोलती हैं और उसी महीने 'सोसाइटी' पत्रिका के कवर के लिए भद्दे ढंग का अश्लील पोज देते हुए फोटो भी छपवाती हैं। इसी तरह एक महिला और हैं—नाम है माधुरी दीक्षित। पाच-दस करोड़ रुपया कमा लेने के बाद इन्हें भी समाजसेवा की सूझी और इन्होंने अपनी बहन के नाम से एक हाउसिंग कंपनी बनाई है। हेमा मालिनी की तरह माधुरी दीक्षित ने भी पाया कि घर लोगों का सपना है और लोगों को घर मिलना चाहिए। लोगों को घर मुहैया कराना माधुरी की नजर में समाजसेवा है, लेकिन बिहार के लोगों के लिए नहीं, सिर्फ मुंबई के लोगो के लिए! किसे नहीं पता कि मुंबई में घर से जुड़े धंधों में कितनी समाजसेवा होती है और कितना मुनाफा? यह दुःखद है कि मुक्त अर्थव्यवस्था के इस दौर में समाजसेवा भी एक बिकाऊ ब्रांड बन चला है।

इसकी आड में सरकारी टैक्स-फैक्स जो बचते हैं, सो तो है ही, अखबारों-पत्रिकाओं में जगह भी खूब मिलती है। आरिफ मोहम्मद खान का उदाहरण सामने है। एक समय पूरी दुनिया में वे महिलाओं के हक की लड़ाई के पुरोध बन गए थे और अब जब विकलांगों के लिए अपनी बनाई संस्था के ट्रिस्टों से जब करोड़ों के लॉकर मिले तो वह ऐसे तर्क देते फिरते रहे जो हास्यास्पद थे। अभी थोड़े दिनों पहले खबर आई थी कि सरकारी क्षेत्र की एक महिला संस्था महिलाओं के कल्याण के नाम पर करोड़ों रुपये डकार गई। इसका परदाफाश तब हुआ जब सरकार ने ही इस संस्था का ऑडिट किया। इस संस्था को तत्काल भंग कर दिया जाना चाहिए था और जांच बैठाई जानी चाहिए थी, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। संस्था धडल्ले से चल रही है और खुलेआम वही सब कर रही है।

देवदासी प्रथा के वकील

उड़ीसा के मुख्यमंत्री रहे जानकी वल्लभ पटनायक ने अपने कार्यकाल के दौरान देवदासी प्रथा को चालू रखने की वकालत की थी। पटनायक का कहना था कि 'देवदासी प्रथा में किसी तरह की कोई कंट्रोवर्सी नहीं है। यह सब अखबारवालों का खड़ा किया बखेड़ा है। देवदासियां भगवान को सुलाने के लिए मंदिर के अंदर गाना गाती हैं तो इसमें क्या गलत है! ईसाइयों के यहां यही सब करने के लिए नने होती हैं। उन पर रोक की मांग क्यों नहीं उठाई जाती।'

कुछ वर्षों पहले एक 'वैदिककालीन' संपादक ने पटनायक की ही तरह रूपकंवर को जिंदा जलाए जाने को 'पवित्र सती प्रथा' कहकर उसकी तरफदारी की थी, लेकिन जब सैकड़ों लोगो ने प्रत्यक्ष और पत्र लिखकर इस पर आपत्ति उठाई तो उनकी बोलती बंद हो गई। पटनायक को या तो नन प्रथा के बारे में ठीक से मालूम नहीं होगा या उनका कोई पूर्वद्वेष रहा होगा। ईसाई समाज में ननो की स्थिति हमारे यहां की देवदासी जैसी कतई नहीं है। उनका कार्यक्षेत्र व्यापक होता है और वह चर्च के निर्देश पर समाजसेवा करती है। नन आपको मिशनरी अस्पतालों में भी मिल जाएंगी, स्कूलों में पढ़ाती मिल जाएंगी, मानसिक विकलांगों या अनाथालयों में पूरी जिम्मेदारी संभाले हुए मिल जाएंगी। नन बनने की तमाम कड़ी शर्तें होती हैं, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि कोई नन अपना घर नहीं बसा सकती। पादरी की इजाजत लेकर कोई भी नन जब मरजी अपनी ड्यूटी से हट सकती है। लेकिन प्रायः ऐसा नहीं होता, क्योंकि इसे ईसाई समाज में अच्छी नजर से नहीं देखा जाता।

अब हम अपने यहां की देवदासी प्रथा को लें। इस अभिशाप के बारे में इतना कुछ छप चुका है कि बच्चा-बच्चा इस नरक को समझता है। देवदासियों की शादी नहीं होती। उन्हें मंदिर के भगवान के साथ ही विवाह के बंधन में बांध दिया जाता है। मंदिर के देवता ही आजीवन उसके पति होते हैं। उनका भोग लगाना, उन्हें रिझाना, उनको सुलाना, उसके आगे नाचना, गाना-बजाना—यह सब देवदासी आजीवन करती है। इसके लिए उसे हर समय सोलहों शृंगार में रहना

पड़ता है। इस प्रथा के चलते मंदिर के पंडित-पुरोहित देवदासियां का जमकर शारीरिक शोषण करते हैं। धीरे-धीरे इस शोषण को एक तरह से धार्मिक मान्यता भी दे दी गई और पंडित-पुरोहित को खुश रखना देवदासियों की नियति ही बन गई। आर्थिक कठिनाइयों के चलते देवदासियों की अवैध संतानें भी इन्हीं मंदिरों के शोषण-चक्र का शिकार होती गई—यह एक अलग दर्दनाक कहानी है।

उड़ीसा के भुवनेश्वर मंदिर, जगन्नाथ मंदिर और कोणार्क मंदिर में यह कुप्रथा ग्यारहवीं सदी से शुरू हुई, जबकि दक्षिण के मंदिरों में यह प्रथा तीसरी सदी में ही पैर पसार चुकी थी। इतिहासकार प्रोफेसर करुणासागर वेहरा के अनुसार, आदिकाल से देवदासियों के कई वर्ग थे—विक्रीता, भरोत्या, भक्ता, हरुत्ता, अलंकारा। इनमें से पहली विक्रीता वे देवदासियां थीं, जिसके गरीब मां-बाप लड़कियों को मंदिर में बेच देते थे। दूसरे नंबर की भरोत्या को मंदिर में झाड़-पोंछा आदि के लिए रखा जाता था। वे मंदिर में देवता के सामने नाच-गा नहीं सकती थीं। भक्ता वे खूबसूरत लड़कियां होती थी जो शौक में अपने-आप मंदिर में नाचने गाने के लिए राजी होती थीं। चौथी हरुत्ता वर्ग की वे लड़कियां होती थी, जिनको अपहरण करके जबरदस्ती देवदासी बनाकर रखा जाता था। खास बात यह है कि अपहरण हमेशा बहुत सुंदर लड़कियों का होता था। अलंकारा वे देवदासियां थी जो नृत्य और संगीत में निपुण होती थीं। अलंकारा का अभिप्राय अलंकरण से है—इन्हे मंदिर का आभूषण भी माना जाता था। मंदिर की ख्याति देवता से कम देवदासियों से ज्यादा होती थी।

उड़ीसा के पुरी मंदिर की देवदासियां 'भक्त श्रेणी' में आती हैं। इनकी एक खास समारोह 'साड़ीबध' के जरिये देवता से शादी कर दी जाती थी। जगन्नाथ मंदिर में इस भक्त श्रेणी में भी तीन तरह की देवदासियों की व्यवस्था है—भीतरगहनी यानी जो गर्भगृह में गाती है, बाहरगहनी यानी जो बाहर के हाल में गाती हैं, नचनी जो नृत्य करती हैं। जगन्नाथ मंदिर की (कु)व्यवस्था के अनुसार नई देवदासी वही लड़की बन सकती है जिसको पुरानी देवदासी गोद ले। जगन्नाथ मंदिर से रिटायर हुई बूढ़ी देवदासियों पारसमणि और शशिमणि ने किसी नई लड़की को इस प्रथा के लिए गोद लेने से इनकार कर दिया, क्योंकि वह जो नरक स्वयं भुगत चुकी थीं वह नहीं चाहती थीं कि कोई दूसरी लड़की उसका शिकार बने।

दसवीं शताब्दी में जगन्नाथ मंदिर को बनाने वाले राजा जाजाति ने उसमें इस गदी प्रथा को नहीं घुसने दिया। लेकिन बारहवीं सदी में किसी राजा ने देवदासी प्रथा को स्वीकृति दे दी, उसी तरह जैसे आज उड़ीसा के मुख्यमंत्री (राजा ही

समझो) इसको जारी रखने की वकालत कर रहे हैं।

लेकिन केवल आंसू बहाने से इन सड़ी-गली मान्यताओं के बांध नहीं टूटने वाले हैं। कोई पटनायक या राजनीतिक पार्टी इन समस्याओं के प्रति अपना वक्त बरबाद नहीं करना चाहेगा। इसके विरोध के लिए हम औरतों को ही कमर कसनी होगी। 'देवताओं की दासी' बनाकर 'वेश्यावृत्ति' को प्रश्रय देने वाले इस समाज की वहशी हरकतों को उघाड़ने के लिए हमें उठ खड़ा होना चाहिए। दासी बनाकर मजा लूटने वाला वर्ग स्वयं क्यों चाहेगा कि उसके भोग की वस्तु आसानी से हाथ से निकल जाए।

पटनायक ने पत्रकारों से कहा 'आप जगन्नाथ मंदिर की देवदासी का भजन सुन लें तो आपकी आंखों में आंसू आ जाएंगे।'

मेरा यह कहना है कि अगर मैं पटनायक किसी देवदासी के साथ हुए बलात्कारों की कहानी सुन लेते तो बिना भजन सुने ही आंखों में आंसू आ जाएंगे।

विश्व महिला सम्मेलन में असमानता

ओलंपिक खेलों के शपथ पत्र में लिखा है—‘हम दुनिया-भर के खिलाड़ी जाति-नस्ल-वर्ण से ऊपर उठकर शपथ लेते हैं.’ इसके आगे चुने हुए शब्दों का एक पूरा पैराग्राफ है, जिसमें विश्व-शांति, आपसी सद्भाव, मैत्री भावना आदि को बढ़ाते रहने की बात है।

अब इसकी सच्चाई देखिए कि इतने ओलंपिक हो जाने के बाद भी आज चार दर्जन से ज्यादा इस्लामिक देशों की करोड़ों महिलाएं इन खेलों में शिरकत नहीं कर सकतीं, क्योंकि इस्लाम धर्म महिला खिलाड़ी को वे कपड़े पहनने की इजाजत नहीं देता जो किसी एथलीट के लिए जरूरी हैं। सैकड़ों बार इस प्रसंग को लेकर प्रदर्शन किए गए, लेकिन ओलंपिक संघ ने इसको हर बार नकार दिया और आज तक नकार रखा है। सोचिए, जाति-नस्ल या वर्ण से ऊपर उठकर सैकड़ों बार शाब्दिक शपथ दोहराने का क्या मतलब है, जब हर बार हजारों प्रतिभाशाली महिला एथलीट अपने साथ हो रहे लगातार भेदभाव से छटपटाकर रह जाती हैं।

ओलंपिक संघ के अध्यक्ष रह चुके समाराच मानते हैं कि सिर्फ इसलिए तमाम महिलाओं को ओलंपिक से वंचित नहीं रखा जाना चाहिए क्योंकि वे कट्टर इस्लामिक देशों से हैं। लेकिन अपने समय में व्यावहारिक रूप से कोई कदम समाराच ने भी नहीं उठाया, क्योंकि अमेरिका सहित तमाम पश्चिमी देशों के इस्लामिक तेल निर्यातक देशों से व्यावसायिक हित सधते हैं और वह उन्हें नाराज नहीं करना चाहते।

इसी संदर्भ में चीन की उस दादागिरी को भी देखा जाना चाहिए, जिसने तिब्बती महिलाओं को विश्व महिला सम्मेलन में भाग लेने से रोक दिया। संयुक्त राष्ट्र की देखरेख में हो रहे इस सम्मेलन के तमाम घोषणापत्रों में बड़ी-बड़ी बातें होंगी, लेकिन क्या वे इस एक अन्याय से लड़ सकेंगी। तमाम बड़े देशों की महिला प्रवक्ताओं ने तिब्बती महिलाओं को चीन द्वारा वीजा जारी न किए जाने के इस विवादास्पद (?) मुद्दे पर टिप्पणी करने से इनकार कर दिया, वहीं कई

ने इसे राजनीतिक मामला माना है, जिसका महिलाओं के अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन की सफलता पर खास फर्क नहीं पड़ेगा।

बीजिंग में दुनिया-भर से जुड़ी महिलाओं ने अपनी एकता के प्रतीक स्वरूप 20 किलोमीटर लंबा बैनर बनाया। यह बैनर चीन की दीवार पर लगाया जाएगा। इसमें संदेश लिखा जाएगा—‘नारी ने इस दुनिया को एक सूत्र में पिरोया है।’ लेकिन हजारों निर्वासित जीवन बिता रही तिब्बती महिलाएं इस सूत्र से गायब रहेंगी। कोई उनकी बात नहीं करेगा, उनके हक के लिए कोई पर्चा नहीं पढ़ा जाएगा, क्योंकि चीनी सरकार ने साफ धमकी दी है कि वह अपने खिलाफ कोई विरोध-प्रदर्शन बरदाश्त नहीं करेगी। अकेले तिब्बत ही नहीं, चीन ने ताइवान की महिलाओं को भी वीजा देने से साफ इनकार कर दिया है। इतनी ही नहीं, नाइजीरिया की महिला प्रतिनिधि सिर्फ इसलिए इसमें भाग नहीं ले सकेंगी, क्योंकि नाइजीरिया ने ताइवान को मान्यता दी। यही कारण था कि उनका वीजा भी चीन ने रद्द कर दिया।

विश्व महिला सम्मेलन नारियों के अधिकार तथा संसार-भर में अन्याय के खिलाफ उनकी एकजुटता को लेकर है, लेकिन ओलंपिक आयोजन की तरह इसमें भी शर्मनाक भेदभाव हो रहा है और सारी दुनिया चुप है। काहिरा का विश्व जनसंख्या सम्मेलन, कोपनहेगेन का विश्व सामाजिक सम्मेलन या रियो-जेनेरियो के विश्व पर्यावरण सम्मेलन ने भले ही कोई खास उम्मीद न बांधी हो, लेकिन ऐसा भेदभाव हुआ हो—याद नहीं पड़ता। यहां तक कि इन तीनों सम्मेलनों में इराक आमंत्रित था (उसने भाग नहीं लिया यह अलग बात है)। प्रश्न उठता है, यदि चीन की शर्तों पर ही विश्व सम्मेलन होना है तो हम उससे किस खुलेपन या न्याय की आशा करें?

क्यों नहीं संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व सम्मेलनों को दो देशों की आपसी राजनीति से बचा पाता? वह पहले से ऐसी कोई व्यवस्था क्यों नहीं सोचता जो ऐसे सम्मेलनों को इन छोटे-छोटे धब्बों से बचा सके। सुना जा रहा है कि पाकिस्तानी प्रधानमंत्री चार तारीख को पाकिस्तान की महिलाओं की दुर्दशा पर नहीं, कश्मीर के बारे में कुछ कहेंगी। भारत ने अगले दिन मुहतोड़ जवाब देने की तैयारी भी कर रखी है, लेकिन क्या यह सब इसका मंच है? विश्व में महिलाओं की दुर्दशा और उस पर हुए अत्याचारों के आंकड़ों से पोथन्ने के पोथन्ने भरे पड़े हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की तटस्थ रिपोर्ट भी महिलाओं के आंसुओं से तर है। हालत यह है कि इस चौथे विश्व महिला सम्मेलन का एक-एक मिनट भी

महिलाओं की लड़ाई के लिए कम है और ऐसे में विषय से हटकर मुद्दे बिखरना कितना दुःखद है, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। देखना है हि क्लिंटन तिब्बत, ताइवान और नाइजीरिया की महिलाओं के लिए क्या कहती द्रष्टव्य है कि ताइवान को अलग देश की मान्यता सबसे पहले अमेरि ने दी है, लेकिन उनका वीजा नहीं रद्द हुआ। उनका वीजा कौन रद्द करेगा?

दोहरी और बचकाना दलीलें

उत्तर प्रदेश की महिला मामलों की एक मंत्री ने जनवरी महीने के अपने एक भाषण में काफी तेजी से एक तर्क रखा कि औरतों में बरदाश्त करने की क्षमता कम होने के कारण ही आत्महत्याओं में बढ़ोतरी आ रही है। सीबी-सीआईडी के महिला प्रभाग व यूनीसेफ द्वारा आयोजित एक विशेष सेमीनार 'औरतों व बच्चों के खिलाफ हिंसा व पुलिस की भूमिका' पर उन्होंने आगे कहा—'सभी आत्महत्याएं दहेज के कारण नहीं होती, केवल 10 प्रतिशत हत्याएं ही दहेज से संबंधित होती हैं।'

उनके इस बाहियात तर्क का तात्पर्य शायद यह रहा होगा कि 90 प्रतिशत आरोप मनगढ़त होते हैं, जबकि पुलिसिया आंकड़े स्वीकारते हैं कि दहेज हत्याओं के मामले में यह प्रदेश नंबर वन है। देश के उत्तरी इलाकों में दहेज के लिए मारी जाने वाली औरतों की तादाद को देखते हुए शायद कहा जा सकता है कि यह औरतों का दुर्भाग्य है कि देश के जिस प्रदेश का व्यक्ति प्रधानमंत्री जैसे जिम्मेदार पद पर सुशोभित है, वहां औरतों को 2348.6 प्रतिशत सेक्सुअली सताया जाता है। क्या ऐसा भी इसीलिए होता है कि औरतों की बरदाश्त करने की क्षमता कम हो चुकी है! औरतों को कितना और कैसा दुर्व्यवहार सहना चाहिए क्या अब इसकी सीमा खींची जाने की जरूरत है?

मंत्री महोदया की समझ पर शक होना इसलिए लाजमी है क्योंकि असलियत उनके बयान से एकदम उलट है। असल में तो बहू को जलाकर मार चुके ससुराली प्रायः इसीलिए बच जाते हैं कि कन्यापक्ष अपनी बच्ची की मौत पर इतना आहत और दुखी होता है कि वह पुलिस-कानून आदि के चक्कर में पडना ही नहीं चाहता। दूसरे शहर के निवासी हाने पर, आर्थिक रूप से अक्षम होने पर भी परिवार बदले की भावना से कुछ न करने का निर्णय ले लेता है। एक तो लंबी कानूनी प्रक्रिया उस पर भी कई दफा न्याय न मिल पाने का भय उन्हें इतना सालता है कि वे चुप्पी मारकर घर बैठना ही बेहतर समझते हैं।

औरतों को दहेज के लिए जिस बर्बरता से जिंदा जला दिया जाता है, वह

किसी सभ्य समाज की निशानी नहीं है। हमारी सामाजिक व्यवस्था में दहेज लेना-देना इतना रच-बस चुका है कि इसके विरोध के स्वर दबे ही रह जाते हैं। कर्ज लेकर, जमीन-जायदाद बेचकर और अपनी सारी जमा-पूंजी बेटी के दहेज में चुकाकर भी उसके भविष्य के प्रति मां-बाप प्रायः अनिश्चित ही रहते हैं। मुंह फाड़-फाड़कर दहेज निगलने में माहिर ससुराली प्रायः इतने पर भी अपनी दरिद्रता दर्शाते रहते हैं और वे घर आई नई-नवेली दुल्हन को तानों, मार-कूट और उलाहनों से इतना सताते हैं कि वह अपने मायके पर दबाव बनाने लगती है। कुछ मायकेवाले यह भूख भी मिटाते हैं पर कुछ आर्थिक रूप से इतने लाचार होते हैं कि अपनी बेटी की जान जोखिम में समझते हुए भी मूक रह जाते हैं। अंततः शेरदिल ससुराली बिना किसी डर या झिझक के एक नई-नवेली दुल्हन को जिंदा मार डालते हैं। कुछ चालू टाइप के ससुराली इस मारने की प्रक्रिया से दूर रहकर ऐसे हथकंडे अपनाते हैं कि नवविवाहिता खुद को असहाय मान लेती है। अकेलेपन, असुरक्षा और भविष्य के प्रति आशंकित संवेदनशील लड़कियां नए घर नए माहौल में इस तरह के तानों और दुर्व्यवहार से मानसिक अवसाद का शिकार हो जाती हैं। चूंकि नए घर में वह एकदम अकेली होती है, इसलिए पलायनवादी होकर कई दफा वह घबराहट में अपनी जान खुद दे देती है।

लड़की की शादी के लिए प्रायः मां-बाप को इतनी जूतियां चटखानी पड़ती है कि एक बार लड़की विदा करके वे गंगा नहाने चले जाया करते हैं। ऐसे में यदि लड़की लौट आए तो सामाजिक, पारिवारिक दुर्दशा होने के अलावा भारी आर्थिक क्षति बरदाश्त करनी पड़ती है। चाहते हुए भी तमाम लड़कियां अपने असुरक्षित भविष्य के भय से ससुरालियों की मार-प्रताड़ना बरदाश्त करने को मजबूर हो जाती हैं। जब बरदाश्त की यह हद गुजर जाती है तब वे आत्महत्या कर समस्या की जड़ ही खत्म कर लेती हैं। उस पर भी हजारों ऐसे लोग हैं जो अपनी बेटी खोने के बाद किसी तरह के लफड़े में नहीं पड़ना चाहते। वे कहते हैं कि कानून मेरी बिटिया तो वापस नहीं कर देगा। जान-माल दोनों की क्षति बरदाश्त करके ये लोग मुंह सिए क्यों रह जाते हैं? क्योंकि ये पुलिस के पचड़े में नहीं पड़ना चाहते। इस पर भी मंत्री का यह कहना कितना बचकाना और गैरजिम्मेदाराना है कि केवल 10 प्रतिशत औरतें ही दहेज के कारण आत्महत्याएं करती हैं। क्या केवल शारीरिक प्रताड़ना ही काफी है, मानसिक प्रताड़ना का आत्महत्या से कोई सबध नहीं होता? क्या यह समझने वाली बात नहीं कि पुलिस के सामने जाने से पहले कितनी औरतें यौन प्रताड़ना पर विचारती होगी? हमारे इस समाज में आज

भी औरतों का एक वर्ग ऐसा है जो अपने पति तक से यौन चर्चा करने में कतराता है, फिर पुलिस के सामने, उनके जायज-नाजायज सवालों का जवाब देना कितना कष्टकारी होता है—यह सोचने वाली बात है।

समाज की गदगी को साफ करने की बजाए उस पर फूलदार चादर डालने के इन प्रयासों से बचना इसलिए जरूरी होता जा रहा है कि इसी प्रदेश में होने वाला हर चौथा बलात्कार हवालात में होता है। जब पुलिस की नाक के नीचे यह हाल है तो बाकी इलाकों की स्थिति का अंदाजा खुद ही लग जाता है। अपनी गलतियां छिपाने या उन्हें भानने की बजाए यदि इसी तरह के तर्क चालू रहें तो एक दिन औरतों के लिए असुरक्षित हो चला यह प्रदेश औरतों के लिए तरसेगा, क्योंकि कब तक लुटती-पिटती औरत यह बरदाश्त करती रहेगी? आत्महत्याओं, बलात्कारों, अपहरणों, वेश्यावृत्ति, भ्रूण हत्याओं और कम उम्र की लड़कियों की खरीद-फरोख्त में बढ़ती तेजी किसी जिम्मेदार व्यक्ति को क्यों नहीं झकझोरती? क्यों औरतों के प्रति होने वाली इस हिंसा से कान मूढ़े, जुबान दबाए सब लोग अपनी संवेदनशीलता पर सवार, आंखें सेकते जा रहे हैं? जिस समाज में जिम्मेदार लोग ही ऐसे 'दोहरे', 'बचकाने' और बचाव-भरे जवाब देंगे, उस समाज की औरतें कितनी असुरक्षित होती जाएंगी! औरतों का जीवन सरल हो सके, ये बड़ी-बड़ी बाधाएं उनका जीवन मौत से जूझने जैसा न बना पाएं, इसके प्रयास कोई सरकार कर पाती नजर नहीं आती। शायद यह बीड़ा स्वयं औरतों को ही उठाना पड़ेगा, आगे चलकर।

पहले जीने का हक दो

बिहार के कटिहार जिले की डुकनी देवी हर महीने 6 या 7 बच्चों का जन्म करवाती है। डुकनी दाई है। वह इन बच्चों में से लड़कियों को मार डालती है। प्रत्येक कन्या शिशु को मारने के एवज में उसे 50 रुपये मिलते हैं। डुकनी की उम्र 60 साल की है और वह अकेले अब तक सैकड़ों बच्चियों को मार चुकी है। डुकनी डायन इसलिए नहीं है, क्योंकि इन बच्चियों के मां-बाप उसे इस काम की फीस देते हैं। फिर भी डुकनी बच्चियों को प्यार करती है, इसलिए कोशिश करती है कि वह उन्हें इस तरह मारे कि प्राण निकलने में तकलीफ न हो। लदन से निकलने वाले 'दि टाइम्स' की संवाददाता कैरोलीन ली के सामने उसने अपने काम का 'डिमांसट्रेशन' किया और बालू से भरे एक झोले में फंदा लगाकर उसने दिखाया कि वह इस वीभत्स कांड को कैसे अंजाम देती है। बहुत दुखी मन से डुकनी ने माना कि मेरा दिल कभी नहीं करता कि मैं अपने हाथ से फूल-सी बच्चियों को मौत के घाट उतारने का यह राक्षसी काम करूं लेकिन मैं क्या करूं, मेरे पास कोई दूसरा काम नहीं है। मुझे अपना परिवार चलाने के लिए पैसा चाहिए।

बिहार में इस नृशंसता पर कोई आश्चर्य नहीं है। क्रूरता वहां के सामान्य जनजीवन का एक हिस्सा बन चली है। डुकनी अनपढ़ है और वह दूरदराज के पिछड़े क्षेत्र में ऐसा कर रही हो, ऐसा नहीं। बिहार के कस्बों और शहरों में भी पढ़ी-लिखी डुकनिया हैं। यूनिसेफ के पैसे से चलने वाली एक गैर-सरकारी संस्था अदिति ने 85 मिडवाइफों से बातचीत की तो पता चला कि वे डुकनी से अलग नहीं हैं। इन 85 मिडवाइफों ने स्वीकारा कि वे हर महीने कम से कम 4 बच्चियों की हत्या करती हैं। लेकिन उनका यह भी मानना है कि यह उनकी मजबूरी है। प्रसूति कक्ष के बाहर बच्चियों के पिता घूस देते हैं और गिड़गिड़ाते हैं कि अगर बिटिया पैदा हो तो बाहर आकर कह देना कि वह मरी हुई पैदा हुई। डिलीवरी रूम से बाहर आकर यदि लड़का होने की खबर दी तो बख्शीश के रूप में 50 रुपये मिलते हैं। इसके एकदम उलट यह बताने पर कि लड़की हुई है, कुछ नहीं मिलता। हा, अगर यह कह दो कि लड़की हुई है और मरी हुई तो सौ रुपये तक मिल जाते हैं।

40 वर्षीय अदिला देवी जो पिछले 15 वर्षों से मिडवाइफ है, कहती है कि अगर वह पिता से उसकी बच्ची को मारने के लिए इनकार करती है तो बदले में उसे धमकी मिलती है। कई बार इन दाइयों को इस बात के लिए पीटा भी गया, क्योंकि उन्होंने लड़की मारने से इनकार कर दिया था। अदिला देवी ने बताया कि एक बार मैंने ऐसे ही एक स्वस्थ किलकती बच्ची को उसके पिता से घर ले जाने के लिए कहा तो वह (बाप) अदर प्रसूति-कक्ष में घुस आया और खुद ही बच्ची को मारने लगा। एक बार तो सारी कोशिशों के बाद भी बच्ची नहीं मरी, बार-बार उसका गला घोटा जाता रहा, लेकिन उसकी सांस बार-बार लौट आई।

बिहार में जन्म-मृत्यु का रिकार्ड रखने का कोई सरकारी रजिस्टर नहीं है लेकिन ये दाइयाँ ही थोड़ा-बहुत हिसाब रखती हैं, जैसे—एक मा ने 14 साल की उम्र से 32 वर्ष तक 3 लड़कों और 12 लड़कियों को जन्म दिया, जिनमें से 10 लड़कियों को उसने अपने हाथ से मार दिया। दहेज सिर्फ बिहार की ही नहीं पूरे हिंदुस्तान की त्रासदी है, जो घटने की बजाए और फैलती ही जा रही है लेकिन बिहार में सिर्फ दहेज ही बच्चियों की हत्या का कारण नहीं है। आपसी जातीय संघर्षों या बिरादरी में पगड़ी-नाक के लिए लड़की को एक समस्या माना जाता है और बिहार का हर आदमी इस समस्या से निजात पाना चाहता है। इसके चलते बिहार में महिलाओं का प्रतिशत बहुत नीचे जा चुका है, लेकिन सरकारी तबके में किसी को इसकी आहट नहीं है।

विदेशों में अभी तक भारत की छवि मदारियों या सपेरों के देश के रूप में भले ही थी, लेकिन इसे करुणा और शांति का देश माना जाता रहा है। मीडिया की मेहनत और संस्थाओं की सक्रियता ने अपने देश का असली चेहरा उघाड़ना शुरू कर दिया है। अकेले बिहार ही नहीं, इस तरह की क्रूरता में राजस्थान, बिहार से भी आगे है। सरकार के पास बच्चियों के साथ हो रही बर्बरताओं के आंकड़े भी हैं और तस्वीरें भी लेकिन इसमें कोई कमी आती नहीं दिखती। विश्व महिला सम्मेलन के ठीक पहले 'न्यूज वीक' पत्रिका ने राजस्थान में दुधमुंही बच्चियों के एक ऐसे ही रेतीले कब्रिस्तान के रोंगटे खड़े कर देने वाली तस्वीर छपी। यहां बच्चियों को मारकर नहीं, जिंदा दफन किया जाता है।

अंत में महिला आयोग से एक लाचार सवाल कि नौकरियों में महिलाओं को 80 प्रतिशत आरक्षण आपने दिलवा भी दिया तो क्या, जब महिलाएं जिंदा ही नहीं बचेंगी!

‘5 हजार लगाओ, 50 हजार बचाओ’

महिलाओं के साथ अत्याचार के अतीत पर एक नजर डालें तो सती प्रथा शायद सबसे क्रूर तरीका रहा है। कोई सोच नहीं सकता कि सती प्रथा खत्म होने के इतने दशकों बाद महिलाओं के नष्ट करने का उससे भी भयानक तरीका यह समाज खोज लेगा। पंजाब में अल्ट्रासाउंड मशीन लगाए एक डॉक्टर ने अपने बोर्ड पर लिखा था ‘5 हजार लगाओ, 50 हजार बचाओ!’ बी बी सी. ने कई बार भारत में मादा भ्रूण नष्ट किये जाने के विषय पर डाक्यूमेंट्री फिल्में दिखाई हैं। आजादी के बाद से इन सालों में महिलाओं का प्रतिशत पुरुषों के अनुपात में लगातार घटता जा रहा है और सभी के एकमत होने के बावजूद, दो-तीन राज्यों को छोड़कर, अभी किसी भी राज्य सरकार ने इस पर कानून बनाने की जरूरत नहीं समझी। इस बारे में अगर दोषियों की लिस्ट बनाई जाए तो उसमें महिला आयोग का नाम सबसे ऊपर होगा।

1992-93 के दौरान आयोग द्वारा जारी किए गए प्रतिनिधियों के पर्चे पर एक नजर डाले तो हम पाते हैं कि यह विषय उसकी प्राथमिकता में नहीं है। हर वर्ष दो-तीन सरकारी सेमिनार हुए हैं जो कुछ असर नहीं डाले सके। महिलाओं के लिए समानता के विषय पर तमाम परिचर्चाएं होती रहती हैं, लेकिन इस पर कोई आक्रोश नहीं दिखाई पड़ता कि महिला असमानता का पहला शूल इस दुनिया में आने से पहले ही क्यों झेलती है।

दिल्ली में तंदूर कांड चर्चा में रहा है इसलिए पंजाब में उस अल्ट्रासाउंड वाले कसाई डॉक्टर पर किसी का ध्यान नहीं गया सिवाय एक-दो पाठकों की अखबार में छपने वाली चिट्ठी को छोड़कर। एक और ऐसे ही डॉक्टर का कहना है कि कानून हमारे काम में बाधा नहीं डाल सकता, क्योंकि मादा भ्रूण गिरवाने का फैसला सहमति से होता है, दो-एक राज्यों में जहां यह कानून बन गया है, वहां लड़का या लड़की के अपने विज्ञापनों में आगे स्वस्थ शब्द जरूर दिया जाता है। यह कारोबार बेहद भयानक है। डॉक्टर पैसे लेकर कई अनपढ़ गर्भवती माताओं को कंप्यूटर के स्क्रीन पर गर्भ का चित्र दिखाते हैं। करीब 30 प्रतिशत

अनुमान गलत साबित होते हैं, नतीजतन 'श्रेष्ठ' नर भ्रूण भी मारा जाता है। ज्यों-ज्यों कस्बों और गांवों में थोड़ी आर्थिक समृद्धि आई है, वहां अल्ट्रासाउंड करवाने की यह प्रवृत्ति लगातार बढ़ रही है। बहुत से डॉक्टर जिनकी डॉक्टरी नहीं चल पायी वो अल्ट्रासाउंड मशीन रखकर बैठे यह धंधा चला रहे हैं।

एक और बेशर्म डॉक्टर का कहना है कि सरकार इस पर पूरी इच्छा-शक्ति के साथ कानून इसलिए नहीं बना रही, क्योंकि यह कृत्य जनसंख्या नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण तरीका है।

प्रतिवर्ष लाखों मादा भ्रूण नष्ट होने से समाज में महिलाओं की संख्या घटने के कारण प्रति 1000 में से 170 लोग अविवाहित रह जाते हैं और बलात्कारों का एक न रुकने वाला अंतहीन सिलसिला शुरू हो जाता है। चीन भी इस समस्या से त्रस्त है। बलात्कार पर आप चाहे फांसी देने का कानून बना दें, लेकिन हम इसे कभी नहीं रोक सकते, यदि महिलाओं का अनुपात इसी तरह घटता रहा।

कौन नहीं जानता कि मादा भ्रूण मारने वाले डॉक्टर हर गली में मौजूद हैं मगर कोई इन पर हाथ नहीं डालता। सरकार के तो कहने ही क्या, लडकियां मरें या पूरी औरत जात का सफाया ही हो, उसे तो केवल वोट चाहिए जो नर या मादा नहीं होते, बस गिनती के वोटर होते हैं।

आठवीं योजना में महिलाओं की सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास को लेकर तमाम प्रावधान हैं, लेकिन इस अमानवीय हरकत को रोकने का कोई प्रावधान क्यों नहीं है? महात्मा गांधी ने कहा था—हमारे समाज में स्त्रियों को गुलामी की तरह जीना पड़ता है और उन्हें यह भी नहीं पता चलता कि वे गुलामों का जीवन जी रही हैं। जो डॉक्टर यह कहते हैं कि मादा भ्रूण सहमति से गिराया जाता है, वे सरासर झूठ बोलते हैं। दरअसल यह गुलामी का चरम है जहां औरत के पेट को फ्रिज समझा जाता है।

थोड़े दिन पहले दिल्ली के राष्ट्रीय अखबार ने सर्वे द्वारा जानना चाहा था कि महिलाएं व पुरुष अगले जन्म में क्या होना चाहते हैं। समाज के ऊंचे तबके की तमाम महिलाओं और छात्राओं ने अगले जन्म में महिला ही होना चाहा। 97 प्रतिशत से ज्यादा महिलाओं ने कहा, उन्हें अपने महिला होने पर गर्व है। वे अगले जन्म में भी महिला ही होना चाहेंगी। अब बताइए, कोई महिला अपनी गर्भ की बच्ची क्यों गिराना चाहेगी!

दरअसल महिला भ्रूण को नष्ट करना सिर्फ एक हत्या समझा जाता है, जबकि इसके साथ कई बड़े अपराध जुड़ते हैं और यह पुरुष द्वारा औरत के गुलाम

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12

यह विज्ञापित शोषण ही है

रात के दस बजे रहे हैं। पति आराम से धुला कुरता-पायजामा पहने साफ-सुथरे बिस्तर पर जम्हाइया ले रहा है। पत्नी बाल बिखराए पसीने से लथ-पथ अपनी धोती कमर मे खोंसे, चूड़ियां चढाए है। इसके बाद गंदे बरतनों का क्लोजअप जो चिकनाई ज्यादा होने के कारण साफ नहीं हो रहे हैं।

अलग दृश्य—पति बिस्तर पर पत्नी का इतजार करते-करते सो जाता है।

यह एक वाशिंग पाउडर बनाने वाली कंपनी का विज्ञापन है जो टी वी पर प्राइम टाइम पर रोज आता है। वाशिंग पाउडर, तेल आदि बनाने वाली लगभग सभी कंपनियां रोजाना ऐसी ही लुटी-पिटी तसवीर पेश कर रही हैं। खैर, वाशिंग पाउडर की बिक्री बढ़ती हो या न बढ़ती हो, लेकिन एक गंदा संदेश देश-भर के घरों में जाता है, वह यह कि बरतन माजने का काम पत्नी का है। जिन लोगों को 'नारी-मुक्ति' शब्द से नफरत है, मुझे नहीं पता वे इस विज्ञापन के समर्थन में क्या तर्क देगे, लेकिन सभी पत्र-पत्रिकाओं से लेकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में दिखाए जाने वाले सीरियलों या विज्ञापनों में चौका-बरतन, झाड़ू-पोछा, कपडे धोना, बच्चों की देखभाल के सारे काम महिलाओं के मत्थे मढना किस संस्कृति को दर्शा रहा है?

'टाइम्स ऑफ इंडिया' के रिव्यू सेक्शन में प्रकाशित एक लेख के अनुसार, अमेरिका में 45 प्रतिशत महिलाएं प्रबंधन के क्षेत्र में कुशलतापूर्वक काम कर रही हैं और बड़ी कंपनियां पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को प्रबंधन के क्षेत्र में वरीयता दे रही हैं। जबकि अपने यहां हम यदि कपडे धोने के काम को आसान बनाने के लिए वाशिंग मशीन बनाते हैं तो उसके भी रख-रखाव की जिम्मेदारी महिला के हिस्से है, क्यों?

यदि महिलाएं बराबर के स्तर पर आउट-पुट दे रही हैं तब होड़ के इस युग में घरेलू काम अकेले वह ही क्यों करें? कुछ पुरातनपथी घर में खटने की इस लीला को परिवार के सस्कारों से जोड़कर महिला को महान् भारतीय नारी का खिताब दे देते हैं, जबकि यह सीधा भावनात्मक शोषण है और हमारे संचार

माध्यम इस कुसंगति को रोकने की बजाय फैला रहे हैं। टी वी. में आने वाले लगभग 300 विज्ञापनों में से 200 से भी ज्यादा में औरत कपड़े धोते दिखाई जा रही हैं, रोटी बनाते दिखाई जा रही हैं या पोंछा लगाते दिखाई जा रही हैं और विज्ञापनों की जांच करने वाली सरकारी एजेंसी चुप है, क्योंकि इस सरकारी एजेंसी के क्राइटेरिया में कोई विज्ञापन तभी गलत है जब वह उत्पाद के सिलसिले में भ्रामक जानकारी दे रहा हो। महिला का एकतरफा शोषण इस क्राइटेरिया में नहीं आता।

टी वी. पर आने वाले कई सीरियलों में बार-बार पत्नियां अपने पति की आरती उतारते दिखाई जाती हैं और अपना छिपा कुसंदेश दे जाते हैं कि पति परमेश्वर हैं। पति जीवनसाथी हैं लेकिन परमेश्वर नहीं। सिर्फ आर्थिक कारणों से वह स्वयंभू बन जाता है। यही बात भारत की महिलाओं (खासकर मध्यमवर्गीय) के दिमाग में बैठाने की जरूरत है। टी.वी. आने के बाद लगा था कि महिलाओं में यह चेतना अब लाई जा सकेगी। 'रजनी' जैसे सीरियल के माध्यम से एक अच्छी शुरुआत भी हुई और उसका व्यापक असर देखने में आया। महिलाओं को घर के काम नहीं करने चाहिए—ऐसा नहीं है, लेकिन महिलाओं को ही घर के काम करने चाहिए—ऐसा भी नहीं है। एक कामकाजी महिला भी दफ्तर में पुरुष की तरह ही शारीरिक-मानसिक दबाव झेलती है, लेकिन घर की जिम्मेदारियों से उसे कोई छूट नहीं मिलती।

यदि उसे बच्चों को क्रेच में भी छोड़ना होता है तो उनके कपड़े, खाना, दूध, खिलौने से लेकर उनके लाने-ले जाने की कसरत भी उसे ही करनी पड़ती है। घर में यदि दूसरे सदस्य भी हैं, तो उनकी ओर परिवार के वुजुर्गों की दवा से लेकर उनकी चिड़चिड़ाहट सब उसके ही हिस्से आती है।

जो मामूली काम लगता है, लेकिन मामूली है नहीं। कुछ लोग इसे इस बात से भी जोड़ देते हैं कि महिलाओं को परिवार के इन कामों में खुशी मिलती है, जबकि वह दोहरे शोषण का शिकार बनते-बनते अशक्त और चिड़चिड़ी हो जाती है। इस समस्या को किसी आंकड़े से नहीं बताया जा सकता, लेकिन इस पर संचार माध्यमों को गंभीरता से सोचना चाहिए।

सत्ता में औरतों की हैसियत

एक बार फिर महिला संगठन एक पुराने और बेहद महत्वपूर्ण मुद्दे पर एक हुए—दिल्ली में दक्षिण देशों की महिलाओं के संयुक्त मोर्चे ने सत्ता में महिलाओं की लगातार घट रही भागीदारी के सवाल उठाए। बासी आंकड़ों का ताजा उफान यह है कि बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, मालदीव और अपने देश की संसद में महिलाओं की संख्या अधिकतम दस प्रतिशत है।

श्रीलंका और पाकिस्तान, जहां महिलाएं ही सर्वोच्च पद पर रही, वहां स्थिति और भी दयनीय है। श्रीलंका में 47 प्रतिशत और पाकिस्तान में 18 प्रतिशत महिलाएं ही जनता का प्रतिनिधित्व कर रही हैं। आंकड़ों से हटकर हम अपने आस-पास या दैनिक अखबारों पर एक नजर डालें तो निष्कर्ष निकलता है कि भारत में जहां महिलाओं के लिए पंचायती राज संस्थानों में 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित की गईं, वहां घूंघट काढ़े नवनिर्वाचित महिला सरपंचों की हालत और भी गई-बीती हो गई है। पहले वे चूल्हे-चौके, जेठ-देवर, सास-ससुर, मवेशी और हर साल पैदा होने वाली अपनी सतान की देखभाल में ही लस्त थीं तो अब उन्हें जाने-अनजाने में तमाम उलटे-सीधे कागजों पर अंगूठा भी लगाना होता है। पति या ससुर जिन्होंने उसे कठपुतली की तरह सरपंच का चुनाव जितवाया है, उसी तर्ज पर उसे रबर स्टैप की तरह इस्तेमाल करने लगे हैं। इससे पुरुष सत्ता को दो सीधे फायदे हुए हैं—अब वह सीधी जवाबदेही से बच सकते हैं और दूसरा, घर की इज्जत के नाम पर वे सरपंच को देहरी के भीतर कैद करने में भी कामयाब रहे हैं। चलिए, इसे छोड़िए! लवली आनंद बिहार में सांसद बनीं, लेकिन उनके पति लवली की हर प्रेस कॉन्फ्रेंस में साथ बैठते और खुद ही अधिकारिक प्रवक्ता का रोल निभाते रहे, पत्रकारों ने इस पर सख्त आपत्ति की तो आनंद मोहन ने लवली को कई बार प्रेस कॉन्फ्रेंस से उठकर बाहर चले आने पर मजबूर किया। ऐसा बार-बार हुआ और राजधानी में राष्ट्रीय प्रेस के सामने हुआ।

यहां तक की जिस वक़्त लवली सांसद थीं तो टीवी चैनल ने कोई बहस कराई तो सामने की सीट पर किसी मर्द का बैठना तक उन्हें रास न आया। खैर,

जब सवाल पूछा गया तो लवली का सपाट-सा जवाब था—‘आप हमसे स्वेटर के डिजाइन या सब्जी के बारे में पूछिए, हम झट बताएंगे।’

लवली ने एक-दो बार पत्रकारों के सवाल का जवाब देने की कोशिश की तो आनंद मोहन ने उसे घुड़क दिया। आज भी बिहार के लोगों की नजर में आनंद मोहन की घरवाली एम पी. हो गई। यह एक बानगी है उन आंकड़ों की असलियत की जो सार्क देशों के महिला संगठनों ने जुटा रखे हैं। लवली की तरह 33 क्या 50 प्रतिशत महिलाएं भी संसद में आ जाएं तो इसका क्या मतलब है?

शरद पवार विधानसभा चुनाव में पहले महिलाओं को लुभाने के लिए एक खास पैकेज लाए। कहा गया कि महाराष्ट्र के आने वाले चुनाव में 30 प्रतिशत महिला उम्मीदवारों को कांग्रेस टिकट देगी। लेकिन असल में हुआ क्या? कांग्रेस की जो भी सीटें हैं, उनमें महिला विधायकों का कोई चेहरा नजर नहीं आता। हालांकि कांग्रेस ने महिलाओं को काफी वरीयता दी है, लेकिन यह कृपा ज्यादा है, हक कम। क्या यह गलत है कि कांग्रेस पार्टी अपनी महिला सांसद ममता बनर्जी की सक्रियता से परेशान रही। संसद में विपक्ष से ज्यादा सवाल ममता बनर्जी और गिरिजा व्यास ने उठाए, लेकिन उन्हें मिला क्या?

राजनीति या सत्ता में महिलाओं की भागीदारी विषय ही दरअसल गलत है। इससे लगता है जैसे महिला कोई विकलांग है और उसे सहारा दिया जाना चाहिए। जबकि सच यह है कि स्वीडन या शायद स्विट्जरलैंड की शिक्षा और संस्कृति मंत्री ने पूरी दुनिया में अपने काम से अपनी पहचान बनाई है। एक अर्द्धइस्लामी राष्ट्र तुर्की की महिला प्रधानमंत्री ने दो साल के अपने कार्यकाल में दिखा दिया कि शासन कैसे चलाया जाता है। व्हाइट हाउस में इस समय सारी महत्वपूर्ण प्रवक्ता और प्रेस सचिवों की जिम्मेदारी ज्यादातर महिलाओं के कंधों पर है। कार्ल हिल्स और रॉबिन राफेल ने कूटनीति के मामले में बहुत कुछ सिद्ध करके दिखा दिया। तो ऐसे में सत्ता में महिलाएं सिर्फ इसलिए अनिवार्य न हो क्योंकि वे महिलाएं हैं। क्या मतलब है भागीदारी का! अस्पताल में नर्सिंग के काम में महिलाओं को वरीयता इसलिए दी जाती है कि माना जाता है (है भी) कि महिलाओं में करुणा, सेवा-भावना और समर्पण पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा होता है और मरीज को दवा से ज्यादा इन्हीं चीजों की जरूरत होती है। राजनीति पूरे राष्ट्र की नर्सिंग ही है, फिर इसमें जिम्मेदारी को वह बात क्यों नहीं लागू हो सकती जो एक अस्पताल में लागू होती है? मेरी नजर में राजनीति में महिलाओं की जगह के प्रतिशत का प्रश्न ही गलत है। यह महिलाओं की एक लड़ाई है, जिसे जीतना

ही हागा। इंदिरा गांधी न उसे करके दिखाया भी है। लेकिन यह महज सिर गिनने के लिए न होकर रह जाए— इस पर चर्चा होनी चाहिए।

सत्ता में महिला का इस तरह आना भी गलत है कि वह अपने चमचों की एक फौज बनाने में जुट जाए। उनके माथे और हाथ पर अपना नाम गुदवाने लगे, जैसे जयललिता करती रही हैं। इस सम्मेलन में इस मुद्दे पर पुरुषों का प्रतिशत बेहतर होता तो और अच्छा होता।

करंजिया और विकी भार्गव में क्या फर्क है?

मुंबई में निकलने वाली 'सोसाइटी' पत्रिका में अपने वार्षिकांक '94 में एक चित्र छापा था, जिसमें जाने-माने पत्रकार और संपादक आर. करंजिया एक निर्वस्त्र युवती के साथ पोज दे रहे हैं। सोसाइटी पत्रिका अभिजात जरूर रही है पर अश्लील कभी नहीं रही, और आर करंजिया देश के शायद एक मात्र ऐसे बिरले पत्रकार हैं जिनका अभिनंदन करने भारत के महामहिम राष्ट्रपति स्वयं मुंबई गए थे।

करंजिया देश की हर समस्या पर अपने निर्भीक विचारों और बेबाक विश्लेषणों के लिए जाने-माने जाते हैं, लेकिन अस्सी साल की उम्र में करंजिया अपने बेडरूम को सार्वजनिक क्यो करना चाहते हैं—समझ के बाहर है। एक परिचर्चा में निष्कर्ष निकाला गया था कि पांच हजार साल पुरानी हमारी भारतीय संस्कृति पश्चिमी हमले का यह दौर भी झेल जाएगी और विजयी होगी। परिचर्चा में कहा गया है कि जरूरत सिर्फ संचार-माध्यमों के प्रमुखों के सचेत रहने की है। यह गोष्ठी बुद्धिजीवियों और पत्रकारों ने की थी।

तटस्थ होना अपराध में शामिल होना माना जाता है। अश्लीलता और भोंड़ेपन के इस माहौल के सामने सारे बुद्धिजीवी और पत्रकार अपने हथियार डालते जा रहे हैं। कानून को कोसा जा रहा है। यहां तक भी एक बार सहा जा सकता है कि चरम पतन के इस टूटे बांध को समय ही संभालेगा, लेकिन मुट्ठी-भर दिशा दिखाने वाले समझदार और संवेदनशील लोग भी इसमें शामिल हो जाएंगे यह तो सपने में भी नहीं सोचा जा सकता है। मैं दोहरा रही हूँ कि श्री करंजिया अस्सी साल के हैं और वह ठस गोविंदा नहीं हैं।

इससे कुछ दिन पहले ही 'फैंटेसी' पत्रिका के संपादक विकी भार्गव को जेल हुई थी। भार्गव पर यही आरोप था कि उसकी पत्रिका अश्लीलता को भुनाती है। भार्गव का अदालत में तर्क था कि लड़कियां उसकी पत्रिका में स्वयं संपर्क करती थीं। तब भार्गव से कहा गया कि आप तो संपादक थे, क्या आपकी कोई सामाजिक जिम्मेदारी नहीं बनती कि नासमझ स्कूली लड़कियों को भटकने से रोके। यह लेख लिखे जाने तक यह मामला अदालत में चल रहा था। लेकिन इस

बार वहा विकी भार्गव नहीं आर करजिया है जो हर बात पर महात्मा गांधी से लेकर आजादी की लड़ाई के दिनों को याद दिलाते हैं। विकी भार्गव की फैंटेसी ने स्कूली लड़की का अश्लील चित्र छापा था, लेकिन वह स्वयं उस चित्र में शामिल नहीं था। करजिया विकी भार्गव से एक कदम आगे है और खुद भी अश्लील चित्र में शामिल है।

यहां यह याद दिलाना जरूरी है कि एक संपादक की जिम्मेदारी एक स्कूल के प्रिन्सिपल और एक न्यायाधीश से भी बहुत ऊंची मानी जाती है। करजिया का ब्लिट्ज अखबार भी इतने छोटे प्रसार वाला नहीं रहा कि उसे गंभीरता से न लिया जा सके।

खुशवंत सिंह से ज्यादा रसिक और ओपन माइंडेड पत्रकार शायद ही देश में कोई दूसरा हो, लेकिन याद नहीं पड़ता कि करजिया जैसे भोंडेपन में वे कभी शामिल हुए हों, फिर भी खुशवंत सिंह को सबसे ज्यादा आलोचना सहनी पड़ती है। उनकी अश्लीलता और खुलेपन को संभ्रांतों द्वारा लगातार गरियाया जाता है। लेकिन करजिया की इस बेहूदा हरकत पर सभी चुप रहे, क्यों?

इस चर्चा का कोई मतलब नहीं कि वह करजिया का अपना निजी मामला है, क्योंकि पत्रिका में न तो ब्लिट्ज संपादक का कोई लेख है, कोई इंटरव्यू और न ही ऐसा कुछ जिसके आधार पर इस माडलिंग की एक प्रतिशत भी तरफदारी की गुंजाइश हो। ननी पालकीवाला, सुनीलदत्त, सुनील गवास्कर, अमिताभ बच्चन, आर. करजिया आदि ये वे गिने-चुने नाम हैं जिन पर मुंबई को नाज है, इनसे ही बार-बार यह अपेक्षा की जाती है कि बंबई कि हिंदी फिल्मों में बढ़ रही हिंसा और अश्लीलता को रोकने के लिए अपने प्रभाव का प्रयोग करें। वरना क्या हम करिश्मा कपूर, ममता कुलकर्णी या गोविंदा से उम्मीद रखें कि वे समाज के बारे में सोचें।

मुंबई और दिल्ली में भी इतना खुलापन आज से नहीं है। सच बात तो यह है कि नई अर्थनीति ने इन दो महानगरों को गलत कामों का लाइसेंस-सा दे दिया है और यही दो शहर इस देश के दो फेफड़े हैं। संचार के अस्सी प्रतिशत माध्यमों के नियंत्रक यहीं बसते हैं, पर यह भी सही है कि इन्हीं दो शहरों के थोड़े-से संवेदनशील लोग देश की नब्ज पर हाथ रखते हैं और समाज की लगातार समीक्षा करते हैं। अपसंस्कृति की इस उलटी गिनती में एक बार तटस्थ रहने को भी नजरअंदाज किया जा सकता है बशर्ते ये लोग इस अधी दौड़ से बचे रहें।

एक तरफ समाज में बूढ़े-बुजुर्गों के सम्मान को लेकर रोना रोया जाता है

कि युवा पीढ़ी इनकी तनिक चिंता नहीं करती। और दूसरी तरफ, बूढ़ों का यह हाल है।

आर. करजिया को उनकी जिम्मेदारी की याद दिलाना बचकानापन मान जाएगा। बेहतर यही होगा कि वे अपनी इस हरकत के लिए माफी मांगें। वे संपादक हैं, इसलिए प्रेस काउंसिल को चाहिए कि वह उनको तलब करे, मुझे विश्वास है—कुछ होगा।

महिला मस्तिष्क पुरुष मस्तिष्क से श्रेष्ठ है

‘औरत की बुद्धि उसकी एड़ी में होती है’, इस पुरुष-प्रिय मुहावरे के लिए यह तगड़ा झटका है—पेनसिलवेनिया यूनीवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने अपनी रिसर्च से यह प्रामाणिक तौर पर सिद्ध कर दिया है कि एक विकसित और स्वस्थ मस्तिष्क में सकारात्मक गुण स्त्री के मस्तिष्क में पुरुष से ज्यादा होते हैं। यह तो एक वैज्ञानिक रिसर्च है जो आज सामने आई है, लेकिन व्यावहारिक तौर पर भी लड़कियां लड़कों की अपेक्षा ज्यादा सजग और चैतन्य होती हैं। जैसे जन्म के बाद लड़कियां लड़कों की अपेक्षा जल्दी चलती और बोलती हैं।

पाया गया है कि तीन साल की बच्ची भी अपने एक साल के छोटे भाई की देख-रेख संभालकर और जिम्मेदारी से करने की कोशिश करती है। पश्चिम में अकेले मस्तिष्क पर होने वाला रिसर्च वर्क हमारे यहां के स्वास्थ्य के कुल बजट से ज्यादा है। इसलिए वहां तरह-तरह से तुलनात्मक रूप से मस्तिष्क में होने वाली क्रियाओं-प्रक्रियाओं को दर्ज किया जाता है। स्त्री-पुरुष के मस्तिष्क के तुलनात्मक अध्ययन में इस बात पर विशेष इलेक्ट्रोड कैट स्कैनिंग कैप की सहायता से हर सवाल या समस्या के जवाब में मस्तिष्क में होने वाले रक्त-प्रवाह के चित्र लिए गए। इन चित्रों से इस बात का अध्ययन किया गया कि मस्तिष्क का कौन-सा भाग कितना सक्रिय हुआ। इस प्रयोग के लिए एक खास रेडियोधर्मी ग्लूकोज दिया गया। इसे पॉनिट्रॉन इमीशन टोमोग्राफी कहते हैं। ‘न्यूज वीक’ पत्रिका ने अपने एक अंक में इस पूरे प्रयोग को विस्तृत रूप से पेश किया है।

शक्ति हृष्ट-पुष्ट मांसपेशियों में नहीं, मस्तिष्क में होती है। स्त्रियों को हमेशा से शारीरिक शक्ति के मामले में ही कमजोर बताकर उन्हें मानसिक रूप से कमजोर करने की साजिश सदियों से चली आ रही है। प्रगतिशील वरिष्ठ पत्रकार प्रभाष जोशी ने भी अपने एक लेख में इस बात की वकालत की है कि स्त्रियों को चूल्हे-चौके में ही रमना चाहिए, समाज इसी से चलेगा। सिर्फ जोशी ही क्यों? उनकी जैसी संकोर्ण मानसिकता वाले धिसे-पिटे पुरुषों के विचार से

औरत का काम केवल घर सभालना और बच्चे जनना ही रहा है।

लेकिन जरा अपने ही देश की उन लड़कियों के बारे में भी सोचिए जिन्होंने लड़ाकू विमान उड़ाकर अपनी दक्षता को हर तरह से सिद्ध कर दिखाया है। लड़ाकू विमान उड़ाना सबसे कठिन काम और क्विक डिसीजन लेने का जोखिम है। और दो साल तक चलने वाले टेस्टों में लड़कियों ने युवक पायलटों की तुलना में नगण्य गलतियाँ कीं। बताइए, समाज के लिए बेहतर क्या है, इन लड़कियों का रोटरी बेलना (जो काम हर कोई कर सकता है) ज्यादा बेहतर था या लड़ाकू विमान उड़ाने का यह काम जो लाखों में कोई एक कर पाता है।

अभी तक यह माना जाता है कि पुरुषों के मस्तिष्क में दायीं सिरीबल अधिक एक्टिव होता है और वे गणित में या कल्कुलेशन आदि में ज्यादा तेज होते हैं, जबकि है इसका उलटा। शकुंतला देवी ने कल्कुलेशन में आधुनिकतम कंप्यूटर को भी पीछे छोड़ दिया। मस्तिष्क एक पूंजी होती है। इसे हम चाहें तो प्राकृतिक प्रतिभा कह सकते हैं—यह है तेज स्मृति-क्षमता और ठंडे दिमाग से बिना उत्तेजित हुए किसी बात पर सोचना या निर्णय लेना। स्त्री और पुरुषों को जब भावनात्मक प्रतिक्रियाओं के एक जैसे सवाल दिए गए तो देखा गया कि पुरुष मस्तिष्क शारीरिक तौर पर ज्यादा उग्र हुआ, जबकि स्त्री मस्तिष्क में विश्लेषण पक्ष ज्यादा उत्तेजित दिखा। यह बात भी नई नहीं है। व्यावहारिक तौर पर भी देखा गया है कि स्त्रियों में धैर्य और सहनशक्ति पुरुषों की अपेक्षा कई सौ गुना ज्यादा होती है। अपने किसी प्रतिशोध को लेने के लिए स्त्री अपनी सतान को पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाने का सकारात्मक समाधान ढूँढ़ती है, जबकि अपने प्रतिशोध में पुरुष सीधे निपटना चाहता है। प्रायः इस आक्रामकता को पुरुषों का मर्दपना माना जाता है। लेकिन वास्तव में यह मस्तिष्क का अधकचरापन है।

पेनसिलवेनिया यूनीवर्सिटी में स्त्री-पुरुष मस्तिष्क पर लंबे समय से काम करने वाले डॉक्टर क्यूबन का कहना है कि इन प्रयोगों का अर्थ यह नहीं कि यह बस कुछ एक प्राकृतिक सत्य हैं। वास्तव में मस्तिष्क की क्षमताएं 90 प्रतिशत किए जाने वाले प्रयासों पर निर्भर करती हैं। मस्तिष्क की जैविक उपलब्धियों को सीचने से बेहतर परिणाम संभावित हैं, लेकिन क्या स्त्रियों के साथ ऐसा हुआ?

आप अपनी माँ-बहन, पास-पड़ोस या रिश्तेदारी की उन स्त्रियों के बारे में सोचें जिन्हें आप जानते हैं। क्या उन्हें समाज ने मस्तिष्क की क्षमता को बढ़ाने का एक प्रतिशत भी अवसर दिया। क्या 90 प्रतिशत कोशिश इस बात की नहीं की गई कि मस्तिष्क की क्षमता को किस तरह मार दिया जाए। रेलवे अपनी

प्रतिदिन चलने वाली साढ़े सात हजार यात्री गाड़ियों में महिला ड्राइवर इसलिए नहीं रखना पसंद करता क्योंकि रेलवे प्रबंधन को लगता है कि सौ किलोमीटर प्रति घंटा की गति से भागने वाली शताब्दी एक्सप्रेस को एक औरत कैसे सभाल पाएगी, जबकि लड़कियों ने दो हजार प्रति घंटा की गति से चलने वाला लडाकू विमान बखूबी हैंडल करके दिखा दिया।

यह तथ्य है कि स्त्रियों का मस्तिष्क पुरुषों की अपेक्षा एक सौ तीस ग्राम कम होता है, लेकिन यह भी तो तथ्य है कि कम चीज ही बेहतर होती है। नहीं?

शेखों की मर्दानगी

प्राकृतिक रूप से पुरुष के मुकाबले कमजोर एक महिला को अपनी अस्मिता बचाने के लिए आत्मरक्षा का हक है या नहीं? लगातार तीन महीनों तक सारा बालाबगान को फांसी की सजा दिए जाने का एक इस्लामी अदालत का फैसला दुनिया-भर के सभी बड़े अखबारों के प्रथम पृष्ठ की खबर बना रहा। मानवाधिकार के लिए लड़ने वाले प्रमुख अखबारों (लंदन का 'संडे आब्जर्वर' आदि) के अलावा पहली बार कट्टरता पसंद देशों से निकलने वाले अखबारों 'अरब टाइम्स', 'कुवैत टाइम्स', 'खलीज टाइम्स', 'गल्फ न्यूज' ने भी इस बहस को चलाए रखा। जिन पाठकों को सारा को फांसी की सजा सुनाए जाने का सारा केस नहीं मालूम है, उनकी जानकारी के लिए संक्षेप में बता दूं।

27 साल की सारा फिलीपींस से संयुक्त अरब अमीरात में रोजी-रोटी की तलाश में आई थी। फिलीपींस में अपने भाई, माता-पिता की गरीबी उससे नहीं देखी गई, तब उसे मजबूरी में यह फैसला लेना पड़ा था। अमीरात में उसे नौकरी देने वाले मोहम्मद अब्दुल्ला अल बालोशी ने जुलाई '94 में एक दिन चाकू की नोक पर उसके साथ जबरदस्ती सेक्स करने की कोशिश की। सारा बताती है कि ऐसी कोशिश वह पहले कई बार कर चुका था, लेकिन परदेश में यह उसकी बेबसी ही थी कि वह आक्रामक न होकर लगातार किसी तरह अपना बचाव करती रही। लेकिन बालोशी की नजर में केरल-श्रीलंका-फिलीपींस से आने वाली युवतियों का सिर्फ एक ही मतलब था।

सिर्फ बालोशी ही क्यो, उसकी जैसी धिनौनी मानसिकता वाले शेखों के चंगुल से अपना देश भी कहा सुरक्षित है? कुछ पैसों के एवज में वे कभी यहां से अमीनाएं ब्याहकर ले जाते हैं तो कभी नौकरानी के रूप में, जबकि उनसे वे काम एक ही लेते हैं— अपनी हवस मिटाने का। शेखों का मानना है कि कम उम्र की युवती के साथ सभोग करके वे अधिक से अधिक समय तक अपनी मर्दानगी बनाए रख सकेंगे। उनकी इस मर्दानगी को खुराक देने के लिए गरीब देशों की बच्चियां धडाधड बेची-खरीदी जाती हैं, मगर सरकारें मुंह-नाक-कान बंद किए

ऐसी, दफ्तरों में स्वप्नावस्था में विचरते रहते हैं।

अरब की महिलाएं सौंपने वाले तमाम ठेकेदारों से लेकर रोजगार के लिए आने वाली महिलाएं बीस साल से चले आ रहे इस नरक से अनजान नहीं हैं। लेकिन सारा इस शोषण के खिलाफ खड़ी हुई और उसने बलात्कार पर उतारू शेख अब्दुल्ला अल बालोशी को जान से मार डाला। सारा के साथ क्या हुआ होगा, इसका अंदाजा हम इसी से लगा सकते हैं कि उसने 70 साल के अत्याचारी पर छुरे से 34 वार किए। मामला राजधानी अबूधाबी से 100 मील दूर अल इन शहर स्थित इस्लामी अदालत में गया, जहां शरीयत के कानून पर चलने वाली कट्टर अदालत ने बिना कोई डॉक्टरी परीक्षण करवाए यह एकतरफा और मर्दवादी निष्कर्ष निकाल लिया कि सारा के साथ बलात्कार की कोई कोशिश नहीं हुई। चूंकि इस्लामी अदालत के अनुसार बलात्कार का कोई सबूत नहीं पाया गया, इसलिए सारा के आत्मरक्षा की बात गलत मानी जाती है और 16 सितंबर '95 शनिवार को इस्लामी अदालत ने सारा को फांसी पर लटकाने का फतवा दे डाला। लेकिन मानवाधिकार संगठनों ने जिस तरह पाकिस्तान में 12 वर्षीय ईसाई बच्चे को इस्लामी अदालत में फांसी के फतवे से बचाया था, उसी तरह सारा को बचाने के लिए भी कमर कसी और तमाम ठोस प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया कि सारा के साथ बलात्कार की कोशिश ही नहीं, बलात्कार भी हुआ था।

संयुक्त अरब अमीरात की सरकार पर दबाव पड़ा तो उसने फिलीपींस के दूतावास को सारा के पक्ष में 15 दिन के भीतर अपील करने की छूट दी। इस बीच सारा के तमाम इंटरव्यू छप चुके थे, जिसमें उसने कहा कि वह फांसी से कतरई डरने वाली नहीं है। उसने नारी जाति के स्वाभिमान के लिए मोहम्मद अब्दुल्ला की हत्या की है। जेल से अपने माता-पिता के नाम लिखे एक पत्र में सारा ने यह दर्ज किया—‘आई डोंट फील अफ्रेड, आई मेंटेन दैट। आई ओनली डिफेंडेड माइसेल्फ। आई ओनली प्रोटेक्टेड माइ ऑनर ऐज ए वूमेन।’ फिलीपींस के राजदूत रायसीनेर्स ने बाद में यह पत्र सवाददाताओं को दिखाया। संयुक्त अरब अमीरात के कानून के मुताबिक वहां का राष्ट्रपति भी मृत्युदंड पाए किसी व्यक्ति को क्षमादान नहीं दे सकता। इसलिए माना जा रहा था कि सारा की आखिरी घड़ी आ गई है और अब उसे शायद नहीं बचाया जा सकेगा, लेकिन इस्लामी देशों के प्रगतिशील अखबारों ने सारा के तर्कों के आधार पर माना कि मोहम्मद अब्दुल्ला अल बालोशी की हत्या उसने आत्मरक्षा में ही की है। इस बीच फिलीपींस के राजदूत ने भी अपनी विधिवत कानूनी अपील दायर की। इस पर

इस्लामी अदालत ने अपना फैसला तो नहीं रद्द किया, लेकिन न्याय मंत्रालय के तहत सरकारी अभियोजन पक्ष ने सारा के खिलाफ अपने अभियोग वापस लेने का फैसला किया और अंततः सारा की सजा माफ हो गई और मानवाधिकार संगठनों की एक और जीत हुई। लेकिन इसमें ज्यादा खुशी की बात इसलिए नहीं रही क्योंकि मौत की सजा से बचाने के बावजूद सारा को 100 कोड़े मारने का आदेश दिया गया।

फिलीपींस के राजदूत ने सीखचों के पीछे फांसी की मानसिक तैयारी कर रही सारा को जब यह खबर दी तो वह खुशी से चीख पड़ी और घंटो रोती रही, क्योंकि यह अकेले सारा के पक्ष का फैसला नहीं था। अरब देशों में हर वर्ष बाहर से काम करने आने वाली हजारों महिलाओं के साथ होने वाली बर्बरताओं पर विजय का यह प्रतीक था। सारा बालाबगान को अखबारों में दूसरी तस्लीमा कहा गया। इसी के साथ इस्लामी अदालतों को भी एक संदेश गया है कि वे कम से कम न्याय के साथ तो न्याय करें।

औरत धर्माचार्य क्यों न हो?

‘औरत को अपनी बात चिल्लाकर ही कहनी चाहिए, ज्यादा असरदार ढंग से, ताकि वह इस बहरे पुरुष-प्रधान समाज में सुनी जा सके। आज अगर औरत कुछ कहती है तो उसे अनसुना कर दिया जाता है। लेकिन अगर वही बात 5 मिनट बाद एक मर्द कहता है तो उसे दर्ज किया जाता है।’

यह अनुभव है जूली नैथानील का। 53 वर्षीय जूली पिछले 25 सालों से एशिया और यूरोप के तमाम देशों में महिलाओं के लिए काम कर रही हैं। पिछले 10 साल से वह ‘एसोसिएशन ऑफ चर्च एंड मिशंस इन साउथ वेस्ट जर्मनी’ में वूमेन डेस्क की सचिव रही हैं और महिलाओं की एक बड़ी अंतरराष्ट्रीय पत्रिका ‘अवर वाइस’ की संपादक रही हैं। आजकल वे तिरुअनंतपुरम में चर्च की चर्चित महिला पादरी हैं।

चर्च में महिला के पादरी होने को लेकर कुतर्कों का उफान अभी ठंडा नहीं हुआ है। यूरोपीय देशों और इंग्लैंड में महिला पादरी का चलना-बोलना, खाना-पीना सब कुछ खबर है। इन गिनी-चुनी महिला पादरियों पर कड़ी नजर रखी जाती है। जूली नैथानील के अनुभव इससे अलग नहीं हैं। वे भारत में हैं लेकिन पूरी दुनिया पर नजर रखती हैं। वे मानती हैं कि यह दुनिया पुरुषों की है और महिलाओं को पादरी बनाया जाना लोगों को सहन नहीं हुआ है, जबकि ईश्वर मीमांसा में महिलाओं का काम पुरुषों से बहुत ज्यादा रहा है। जूली के अनुसार धर्म या आध्यात्म का मूल प्रेम और करुणा की भावना है और प्रकृति में यह गुण महिला में पुरुष की बनिस्बत ज्यादा भरे हैं।

एक महिला समाज के दुःख-दर्द को बेहतर ढंग से समझ सकती है, क्योंकि वह इसी से होकर गुजरती है। इसके बावजूद, महिला को उसका हक नहीं दिया जा रहा। जहां तक इतिहास की बात है, वह तो लगता है मानो पुरुषों ने पुरुषों के लिए ही लिखा है।

जूली पिछले 10 सालों से चर्च की महत्वपूर्ण पदाधिकारी हैं और वह इससे इनकार नहीं करती कि वहां भी लोगों ने उनके साथ मनमानी करने की कोशिशें

की। वे बताती है जब वे पहली बार दीक्षा लेकर पादरी बनीं तो कुछ लोगो ने उन्हें कहा कि अरे, आप तो बिलकुल फादर लग रही हैं। इससे मुझे दुःख हुआ कि आज भी डिक्शनरी में महिला पादरी के लिए कोई भी शब्द नहीं है। यहा तक कि जर्मनी में 'मिसेज प्राइस्ट' बोला जाता है। महिलाओ को पादरी बनाए जाने का निर्णय 15 साल पहले ले लिया गया था, लेकिन जब-जब भी किसी महिला को दीक्षा देकर पादरी बनाने की बात आई तो चर्च ऑफ इंग्लैंड पीछे हट गया। सी एम आई (चर्च ऑफ साउथ इंडिया, स्थापित 1947) में इस समय एक हजार चर्च हैं जिनमें सिर्फ चार में महिला पादरी हैं।

जूली कहती हैं एक दिन वह आएगा और जरूर आएगा जब महिला विशप के पद पर बैठेगी। यह स्थिति अकेले ही क्रिश्चियनिटी की नहीं है। हिंदू धर्म में भी कही पर भी महिला को धार्मिक स्थल में निर्णायक पद नहीं दिया गया है। मंदिरों में इसका प्रवेश अगर है तो देवदासी बनकर ही। जहा तक दूसरे धर्मों की बात है, भगवान बुद्ध ने कहा था कि जिस दिन महिला मठ में प्रवेश कर जाएंगी, उसके 500 साल बाद बौद्ध धर्म खत्म हो जाएगा। मस्जिदों में तो महिला का प्रवेश ही वर्जित है। लेकिन यह सब क्यों है— इसका कोई तर्क नहीं है। पिछले दिनों अकेले राजधानी पुलिस ने ही ऐसे आधा दर्जन मामले पकड़े, जिसमें मठाधीशों और धर्माचार्यों ने बलात्कार किए। कोई बहस नहीं हुई। किसी ने सवाल नहीं उठाया। ज्यादा से ज्यादा मुसकान के साथ एक आह भर के कहा गया— घोर कलयुग है। एक जैन धर्माचार्य द्वारा साध्वी के साथ बलात्कार की सुनवाई के दौरान अभियोग पक्ष और बचाव पक्ष में जो तर्क-वितर्क हुए उसे पढ़कर कही नहीं लगा कि धर्म का नैतिक अनुशासन भी कोई चीज है।

जैन साधुओं के (जो समाज में नग्न घूमते-फिरते हैं) सेक्स स्कैंडल हर थोड़े दिनों में खुलते रहते हैं, मगर धार्मिक अंधता के चलते आम आदमी को विश्वास नहीं हो पाता। ऐसे मामलों में हमेशा औरतो को ही, चाहे वे भी साध्वी क्यों न हो, दोषी बताकर मामला रफा-दफा कर दिया जाता है।

खैर, यह घाव जैन समाज का है। यहां बात इस बिंदु को लेकर है कि एक महिला धर्माचार्य क्यों नहीं हो सकती? यदि वह अपनी योग्यता से एक राष्ट्र की शासनाध्यक्ष हो सकती है, सर्वोच्च न्यायालय की जज हो सकती है, शिक्षण संस्था की अध्यक्ष हो सकती है या तमाम तकनीकी संस्थाओं में सर्वोच्च पद पर बैठ सकती है, तब उसके धर्माचार्य होने पर ही हाय-हाय क्यों? बल्कि धर्माचार्य पद तो बहुत दूर की बात है अभी तो हम पिछले दिनों दक्षिण भारत में हुई उस

शर्मनाक घटना को ही याद करें। जिसमें मंदिर में महिला के प्रवेश को लेकर तूफान खड़ा कर दिया गया था। आज भी हनुमानजी के मंदिरों में महिलाओं द्वारा भजन-पूजन पर पुजारी-पंडे आसमान सिर पर उठा लेते हैं। लेकिन अगर उन्हीं बजरंगबली की मूर्ति का प्रसाद कुत्ता उठाकर ले जाए तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। यहां आप महिला की स्थिति की तुलना कर सकते हैं।

धर्माचार्य बनने से किसी महिला को कोई लपकौरा नहीं मिल जाता लेकिन सवाल बस, इतना-सा है कि महिला को धर्माचार्य बनाए जाने पर आपत्ति क्यों? प्रोग्रेसिव से प्रोग्रेसिव लोग भी इससे कन्नी काट जाते हैं। जब पहले-पहल लंदन में महिला को पादरी के लिए दीक्षित करने की बात आई तो वहां संसद और मीडिया में ऐसा तूफान मचा मानो लंदन पर किसी ने परमाणु बम गिरा दिया हो, जबकि यह एक सीधी-सी बात थी कि यदि महिला उस योग्यता में उत्तीर्ण होती है तो उसे पादरी बनाया जाना चाहिए। आखिर चर्च में नर्तक तो थीं ही। लेकिन असल बात धर्म के बहाने सत्ता की थी— यानी निर्णय लेने का अधिकार महिला को दिया जाए या न दिया जाए! और कहने की बात नहीं कि इंग्लैंड का पुरुष-प्रधान समाज एक बार फिर एक्सपोज हुआ। बहसों में यहां तक कहा गया कि कनफेशन (प्रायश्चित्त) में अगर महिला पादरी होगी तो लोग अपना अपराध उसके सामने स्वीकारने में हिचकिचाएंगे।

तवलीन सिंह के (कु)तर्क

किसी मरीज की दाई की जगह बाई टांग काट देने जैसी भयानक लापरवाही के लिए अभी तक डॉक्टर ही कुख्यात थे, लेकिन कई दफा चंद पत्रकार भी यही करने लगते हैं। हाथ में कलम या लिखने के लिए मच हासिल हो जाने का क्या यह मतलब है कि पत्रकार अपने निजी विचार के नाम पर कुछ भी लिख डालें? दिल्ली की एक चर्चित पत्रकार हैं, नाम है— तवलीन सिंह। देश-विदेश के तमाम अखबारों में इनके कॉलम छपते हैं। एक अखबार के अपने कॉलम में इन्हीं महोदया ने अजीब-अजीब तर्क पेश करते हुए रूपन देओल बजाज के लिए अनाप-शनाप कह डाला है। आप जानते होंगे, रूपन देओल बजाज पंजाब की वरिष्ठ आई.ए.एस. अधिकारी हैं जो के.पी.एस गिल द्वारा अपने साथ हुई बदतमीजी को सुप्रीम कोर्ट तक ले गई।

तवलीन सिंह के मुताबिक, बाटम स्लैपिंग या चुटकी काटने का यह मामला सुप्रीम कोर्ट तक ले जाने वाली बात नहीं थी। सरसरी तौर पर आशय यह है कि तवलीन सिंह के मुताबिक तिल का ताड़ बनाया गया। या तो तवलीन सिंह अखबार नहीं पढ़ती है या फिर उनमें इतनी संवेदना नहीं है कि वे दूसरे की पीड़ा को समझ सकें। अन्यथा उन्हें रूपन देओल का वह इंटरव्यू याद रहना चाहिए, जिसमें उन्होंने बताया है कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा गिल पर मुकदमा चलाए जाने का आदेश देने के बाद उन्हें जान से मारे जाने की छह से ज्यादा धमकियां मिल चुकी हैं। इसी का नतीजा है कि उस दिन पार्टी में मौजूद दर्जनों प्रत्यक्षदर्शी आई.ए.एस. , आई पी एस अधिकारी गिल के खिलाफ गवाही देने से पीछे हट गए।

अकेले रूपन देओल बजाज से ही नहीं, तवलीन सिंह की खुन्नस पूरे महिला आंदोलन से है। 'आउटलुक' पत्रिका को दिए अपने इंटरव्यू में वे खुद को बिंब पर आधारित किसी मुद्दे से अलग बताती हैं। उनकी भोथरी संवेदना के आगे यह सवाल उठाना बेमानी होगा कि देश में प्रतिवर्ष लाखों मादा भ्रूण ही क्यों नष्ट किए जा रहे हैं या पुरुषों के मुकाबले महिलाओं का अनुपात प्रति हजार में 200 तक क्यों घट गया है। तवलीन सिंह इतना भी नहीं समझ सकती कि रूपन

देओल बजाज की लड़ाई अकेली एक महिला के साथ घटी ज्यादाती (दिल्ली के किसी बस में होने वाली) आम साधारण घटना नहीं है। कायदे से तो इसे भी हलके से कतरई नहीं लिया जाना चाहिए।

देश के संविधान की रक्षा के लिए राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि होता है, आई.ए.एस.। जब वह अपनी रक्षा करने में ही असमर्थ है तो दूसरों की रक्षा कैसे करेगा? फिर बात सिर्फ मामूली छेड़खानी की नहीं है, के.पी.एस. गिल ने भरी पार्टी में हाथ में दारू का प्याला लिए हुए रूपन देओल के साथ शारीरिक छेड़छाड़ तो की ही, भद्दी-भद्दी अश्लील बातें भी कहीं।

तवलीन सिंह अपने कॉलम में इसका सड़क छाप समाधान सुझाती हैं कि रूपन देओल बजाज को गिल के साथ मारपीट कर लेना चाहिए थी, चलिए मान लीजिए, तवलीन सिंह के स्तर पर आकर इस पर भी विचार करतीं तो क्या रूपन बजाज की और ज्यादा दुर्गति नहीं हो जाती। तवलीन सिंह को शायद न मालूम हो कि छह साल तक सुप्रीम कोर्ट तक यह लड़ाई लड़ने में रूपन बजाज को कोई मजा नहीं आया होगा, बल्कि उन्हें मुकदमेबाजी के लिए अपने और अपने पति के फंड से पैसा निकलवाना पड़ा और बेहद मानसिक तनाव से गुजरना पड़ा। वजह यही कि के.पी.एस. गिल पंजाब में शांति के 'सो काल्ड' मसीहा बने हुए थे, उन्हें प्रधानमंत्री ने एक्सटेंशन भी दिया हुआ था, इसलिए उन्होंने समझ लिया कि उन्हें औरतों के शरीर के साथ मनमानी करने का भी लाइसेंस मिल गया है। दिल्ली के एक होटल में पत्रकारों की जानलेवा पिटाई कोई महिलाओं के साथ बदतमीजी का मामला नहीं था, लेकिन वह गिल की बपौती का तो परदाफाश करती ही है। रूपन बजाज चाहतीं तो इस मामले को छोड़ भी सकती थीं, उन्होंने छोड़ना चाहा भी लेकिन वह कहती हैं कि उन्हें लगा कि यह अकेले उनका मामला नहीं है, यह तो पूरी नारी जाति के स्वाभिमान की बात है। गिल के निकटवर्ती सुरक्षा सूत्रों के अनुसार, उन्होंने अभिनेत्री श्रीदेवी के साथ भी बदतमीजी करने का कोशिश की थी। गिल की आगे की गद्दी योजना को श्रीदेवी भाप गई और समय रहते ही बंबई वापस हो लीं। श्रीदेवी ने कोई मुकदमा दर्ज नहीं करवाया, दुनिया यही जानती रही और जानती है कि गिल श्रीदेवी के जबरदस्त फैन हैं।

दरअसल अक्सर होता ही यही है कि औरतें अपने बॉस या मालिक को बदतमीजी लांकलाज के भय से मुह सिए सहती रहती हैं। उन्हें लगता है कि इसमें उस बदतमीज पुरुष की बजाए उनका ज्यादा अपमान होगा और लोग उलटा उन्हीं

पर लाछन लगाएंगे.

तवलीन सिंह की जानकारी के लिए परम शक्तिशाली व्हाइट हाउस की लाख कोशिशों के बाद भी क्लिंटन पर एक महिला क्लर्क द्वारा लगाया यौनाचार का मुकदमा वापस नहीं हुआ। रूपन बजाज तो एक आई.ए.एस अधिकारी हैं। तवलीन सिंह का एक आक्रामक सवाल यह भी है कि रूपन बजाज ने भंवरी देवी के लिए क्या किया? ठीक है, माना, कुछ नहीं किया, पर वे कम से कम भंवरी के खिलाफ तो नहीं हैं (तवलीन सिंह की तरह)। जिस अखबार ने तवलीन सिंह का यह कॉलम छापा है, संयोग से उस अखबार की स्थानीय संपादक भी एक महिला हैं और उन्होंने तवलीन की इस टिप्पणी के खिलाफ आए दर्जनों पत्र हफ्तों अखबार में छापे। शायद इसमें चिढ़कर तवलीन कहती हैं 'आइ एम नॉट एन एक्विविस्ट, आइ एम ए जर्नलिस्ट।' शायद उन्हें पता नहीं कि ये दोनों शब्द अलग-अलग नहीं हैं। 'एक्विविस्ट' ही जर्नलिस्ट होता है। जो एक्विविस्ट नहीं होता, वह जर्नलिस्ट मात्र एक टेक्नोक्रेट होता है। खैर, यह दूसरा मुद्दा है।

तवलीन के मुताबिक रूपन बजाज का अपने साथ छेड़खानी के मामले को प्रेस में उछालना ही अनुचित है। क्यों? प्रेस में नहीं उठाएंगी, कोर्ट में नहीं उठाएंगी तो क्या एक महिला आपबीती गेरू से दीवारों पर लिखेगी? अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मतलब तवलीन की तरह ऊल-जलूल बकना ही है। यदि तवलीन सिंह के दिमाग में संवेदनशीलता तनिक भी बची होती तो निश्चित रूप से वे ऐसी वाहियात बात कतई न करतीं। कोई औरत जब इस तरह की बदतमीजी झेलती है तो उस पर क्या गुजरती है। लाख सोचने के बाद ही वह इसे जुबान पर लाने का साहस करती है।

थोड़े दिनों पहले एक महिला पत्रकार ने इसी तरह अपने कॉलम में मुख्यमंत्री जयललिता द्वारा अपने दत्तक पुत्र की शादी में करोड़ों रुपये पानी की तरह बहाना उचित ठहराया। आखिर यह कौन-सी पत्रकारिता है? मेरा यह सवाल 'प्रेस काउंसिल' से भी है।

रास्ता न्याय और अन्याय का

इस्लाम में नारी को अगर अधिकार मिलें भी तो किस तरह मिल सकते हैं, इसके तमाम उदाहरण चौथे महिला सम्मेलन में देखने में आए थे। इस्लामी देशों के सारे महिला प्रतिनिधि मंडल सिर से पैर तक, एक-एक इंच नकाब से बुरी तरह ढके हुए थे। सिर्फ आंखों के पास एक मिलीमीटर की कपड़े की दरार से वे महिलाएं बराबरी के अपने अधिकार के पक्ष में बोलने आई थीं। इन महिलाओं ने अपने गले में बकायदा अपने पहचान पत्र लटकाए हुए थे। पहचान पत्रों में जो फोटोग्राफ लगा था, वह भी नकाब में ही था।

यानी अगर इस्लामी देश अपने यहां की महिलाओं को समानता का अधिकार देंगे भी तो वे अपनी पहचान फोटो परदे में रहकर भी खिंचवा सकती हैं। यह मात्र प्रतीक है। क्योंकि महिला सम्मेलन में ऐसे इस्लामी देशों की तारीफ की गयी जिन्होंने महिलाओं को इस तरह भी भाग लेने दिया। वरना अधिकांश ने तो 'धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप' मानते हुए महिलाओं को किसी तरह सम्मेलन में भाग लेने की छूट देने से साफ मना कर दिया।

इस्लामी कट्टरता के अंधे कुएं से अधिकारों के लिए लड़ रहे एक संगठन की नेता और पत्रकार बारबरा क्रासेट ने पाकिस्तान के तमाम शहरों की महिलाओं से बातचीत करने पर पाया कि वहां युवा बेटियों के अंतर्वस्त्र भी उनके पिता ही खरीदते हैं। उनकी मां या खुद उन्हें यह अधिकार नहीं है कि वे अपने अति निजी वस्त्रों को भी खुद खरीद सकें। महिलाओं के कपड़ों का पाकिस्तान में पूरा कारोबार पुरुषों के हाथों में है और डिजाइन भी आदमियों द्वारा ही तैयार किए जाते हैं। पाकिस्तानी महिलाओं के लिए यह कल्पना ही बहुत बड़ी बात थी कि बाजार जाकर अपने कपड़े अपनी ही पसंद से खरीदने का फैसला उन्हें स्वयं करना चाहिए। लेकिन यह पाकिस्तान और बांग्लादेश के लिए अभी सौ साल आगे की बात है। इन दोनों देशों के छोटे शहरों और कस्बों में काम करने वाली मजदूर महिलाओं के पैरों में 12 घंटों के लिए फैक्टरी मालिक बेड़ी डाल देता है, ताकि काम के दौरान वे बच्चे खिलाने, खाना खाने या नित्यक्रिया के लिए न जा सकें।

इन जाहिल इस्लामी देशों से ऐसी रिपोर्ट भी आई है, जिनमें प्रसव के लिए तड़पती महिला के पेट में धीरे-धीरे से लात मारी जाती है ताकि उसे जल्दी से और सुरक्षित प्रसव हो सके। ऐसी खबरे यदा-कदा आती ही रहती हैं कि कुवैत में शेख काम करने वाली तमाम महिलाओं के साथ कुकर्म तो करते ही हैं साथ में उनके शरीर को जलती सिगरेटों या दूसरी चीजों से जला भी देते हैं।

ऐसा वे इसलिए करने हैं ताकि उनके ब्रांड को देखकर दूसरा शेख उन्हें काम न दे। बांग्लादेश में पिछले साल प्रेम के अपराध में एक युवती को गले तक जमीन में गाड़कर उसके ऊपर 10,000 की भीड़ ने पत्थर बरसाए। मौलवी का कहना था कि उसका उद्देश्य उस लड़की को जान से मारना नहीं था, बल्कि उस युवती के माता-पिता को आदेश दिया गया था कि वे चाहें तो उसे खोदकर निकाल सकते हैं और उसका इलाज करवा सकते हैं। मानवाधिकार संगठनों के हायतौबा मचाने पर जब यह मामला बांग्लादेश की बड़ी अदालत में गया तो वहाँ के न्यायाधीशों ने बिना चौंके सिर्फ यह फैसला दिया कि सजा देना अदालत का काम है, मौलवी का नहीं। लेकिन मौलवी की इस क्रूरता के बारे में अदालत ने कोई टिप्पणी नहीं की। जैसे फिलीपींस की एक मजदूर युवती सारा बालाबन के ऊपर लगा मृत्युदंड हटाया गया तो उसे सौ कोड़ों की सजा में बदल दिया गया। 17 साल की इस लड़की की उम्र को देखते हुए उसकी सजा बहुत ज्यादा है इसलिए कोड़े मारने वाले से कहा गया कि वह अपने बगल में कुरान की एक प्रति दबा ले, ताकि कोड़े बहुत तेजी से उसे न लगे या शायद उसे मारने के इस पाप से बचाने के लिए यह टोटका किया गया हो।

महिला सम्मेलन में कुछ वक्ताओं का कहना था कि ऐसे काम नहीं चलेगा, महिलाओं को हाथों में बंदूक उठानी होगी। इस पर पांचवें अंतरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन की प्रमुख मुंगेला ने कहा कि बंदूक नहीं, फिलहाल महिला के हाथों को जरूरत है—हैंडपंप की। उनका इशारा था कि बगैर आर्थिक कुशलता हासिल किए महिलाएं अपनी लड़ाई को परिणति तक नहीं पहुंचा सकती हैं। एक उदाहरण भी दिया गया कि विश्व बैंक ने बांग्लादेश के एक ग्रामीण बैंक के द्वारा गांव की हर महिला को एक डालर का कर्ज दिया था। 97 प्रतिशत महिलाओं ने निश्चित समय पर पैसा वापस कर दिया और लाभ भी कमाया। जबकि इससे एकदम उलट हमारे विकासशील भारत महान में एक सर्वेक्षण के दौरान पाया गया कि केवल 2.22 प्रतिशत औरते यहां लोन लेने को राजी हैं। शेष का इस पर विश्वास ही नहीं है।

इस्लामी देशों में धार्मिक जकड़बंदी किस कदर है, इसका उदाहरण खुद तस्लीमा नसरीन हैं कि समझौता न करने के लिए अपने फैसले के लिए वे अपनी जान पर खेल गईं, लेकिन न्यायालय में जाते समय उन्होंने भी बुर्के जैसी कार्लो स्कार्फ अपने सिर पर बांधे हुए थीं। पाकिस्तान की मानवाधिकारों की लड़ाई लड़ रही प्रमुख वकील अस्मा जहागीर अपनी जान पर खतरे की कोई भी नौबत देखते ही फौरन लड़न भाग जाती हैं और वहीं से फोन पर अपने मुकदमों का संचालन करती हैं।

सूचना क्रांति के इस दौर में भी महिलाओं के साथ अत्याचार की कोई खबर महीनों बाद ही बाहर आ पाती है, वह भी सक्षिप्त ही। जान पर खेल कर ही कोई खबरनवीस किसी रिपोर्ट पर काम करता है। तो तस्लीमा का यह कहना कि इस्लाम और लोकतंत्र साथ-साथ नहीं चल सकते हैं। यह तो बाद की बात है। अभी तो नौबत यह है कि इस्लाम और प्रेस ही साथ-साथ नहीं चल पा रहे हैं जहां इस्लामी देशों का कोई अखबार सलमान रुश्दी की तस्वीर या फोटो कैप्शन काफिर लगाए बगैर न छापता हो वहां महिलाओं के लिए किसी तरह के न्याय की अपेक्षा करना व्यर्थ है। तस्लीमा की बातों से लगता है कि वह पूरी तरह हताश हैं। उन्होंने भी इस बात को आखिरी सच के तौर पर स्वीकारा जो पहला सच है कि न्याय और अन्याय साथ-साथ नहीं चल सकते हैं।

जरूरत कुछ शुरू करने की

‘इतिहास की जमीन तैयार है या नहीं, यह जांचना बड़ा विकट काम है। कई बार लगता है कि उत्साही किसानों की तरह हमें बीज डालते ही रहना चाहिए, ताकि जब मौसम आए तो उर्वर भूमि उन्हें ग्रहण करे और फसल उपजाए।’ राजेंद्र माथुर ने यह बात क्यूबा के नौजवान नेता अर्नेस्टो ग्वेवैरा की विफलता के बारे में लिखी थी। ग्वेवैरा क्यूबा के मंत्रिमंडल के सदस्य थे। 1956 में उन्होंने इस्तीफा दे दिया और क्रांति का बीड़ा उठाया। 1967 तक अपने मुट्ठी-भर सशक्त क्रांतिकारियों के साथ जंगल-जंगल लड़ते हुए मारे गए।

जनता किस समय क्रांति के लिए तैयार हो जाएगी, यह कहना मुश्किल है। समकालीन चिंता महिलाओं के साथ लगातार बढ़ रहे अत्याचार और भेदभाव के बाद भी कोई आंदोलन न खड़ा होने की है। महिलाओं की ये हालत हजारों सालों से है और बदस्तूर चली आ रही है। जनक्रांति के बारे में यह कहा जा सकता है कि क्रांति के बीज डालने के लिए जमीन तैयार है या नहीं, लेकिन महिलाओं की क्रांति के बारे में लगता है कि कोई जमीन है ही नहीं। जमीन की तैयारी का तो सवाल ही नहीं उठता है। पिछले दिनों सुप्रीम कोर्ट ने महिलाओं के साथ बलात्कार के कानून कड़े करते हुए निर्देश जारी किए थे, उसमें एक सुझाव यह भी था कि भुक्तभोगी महिला को थाने में निःशुल्क महिला वकील उपलब्ध करवाई जाए और महिला वकील का नाम और पता थाने के नोटिस बोर्ड में लगाया जाए। इसके अगले ही दिन अखबारों में खबर थी कि राजधानी की एक प्रतिष्ठित महिला वकील ने अपने नग्न फोटो एक पत्रिका के कवर पर छपवाए और उसे अपना निजी मामला कहा। इसके आगे कुछ लिखने, कहने, बोलने या सोचने की जरूरत नहीं रह जाती।

पिछले दिनों संयुक्त राष्ट्र का विश्व महिला सम्मेलन एक मसखरी में कुछ ज्यादा नहीं दर्ज हुआ। पश्चिमी मीडिया ने यह छापने में ज्यादा दिलचस्पी दिखाई कि उसमें यदि कोई प्रदर्शनकारी निर्वस्त्र हो जाएगी तो चीन की पुलिस

कितने मीटर सफेद कपड़े से उसे दौड़कर ढकेगी। गंभीर मुद्दों की वृहत तैयारी के साथ शुरू हुआ यह सम्मेलन अपने समापन तक महिलाओं के प्रति अत्याचार के एक बैकग्राउंडर से ज्यादा कुछ नहीं हो सका। क्यों?

पिछले महीनों में राजधानी दिल्ली में बच्चियों के साथ बलात्कार (पिता द्वारा आधा दर्जन) की घटनाएँ हुई, लेकिन अखबार फाइव स्टार होटलों में होने वाली फैशन प्रदर्शनी के दौरान मॉडलों की तस्वीरें ही छापते रहे। फिर इन बेबस गरीब बच्चियों के साथ न्याय की उम्मीद उस देश में कैसे रखी जा सकती है, जहाँ एक महिला आई ए एस अधिकारी के साथ अश्लील दुर्व्यवहार का मामला सात साल बाद दर्ज हुआ—वह भी जब सुप्रीम कोर्ट ने झाड़ू लगाई। रूपन देओल बजाज के साथ बदतमीजी जुलाई '88 में हुई थी वह कहती है—‘के पी एस गिल के प्रभाव के कारण मीडिया ने मेरा पक्ष एक लाइन भी नहीं छपी, लेकिन मैं इसे सिर्फ अपनी नहीं, बल्कि पूरी नारी जाति के सम्मान की बात मानकर चली। मैंने अपने फंड से पैसे निकलवाए और मामले को सर्वोच्च अदालत तक ले गई।’

यह एक पढ़ी-लिखी सक्षम महिला कलेक्टर के साथ हुई ज्यादाती का हथ्र है। हम देश भर के छोटे-छोटे दफ्तरों में अपनी ड्यूटी के दौरान पुरुष अधिकारियों द्वारा किए जा रहे दुर्व्यवहार (हरेसमेंट) का अदाजा लगा सकते हैं। इलाहाबाद के पास एक गांव में सारा दिन महिला को नंगी करके घुमाया जाता रहा। मामला विधानसभा में उठा। जिला प्रशासन ने न्याय के नाम पर उसे दस हजार रुपये दिलवा दिए। मध्य प्रदेश में तो विधानसभा में एक मंत्री ने यहां तक कह डाला कि यदि दो बार बलात्कार हुआ है तो सरकार दो बार मुआवजा देगी। जले पर नमक छिड़कना सिर्फ एक मुहावरा नहीं है, यहां वास्तव में ऐसा होता है और ये घटनाएं इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

वरिष्ठ कवि त्रिलोचन ने एक बार कही टिप्पणी की थी कि ‘सरकार अपनी योजनाओं में कुपोषण के लिए बजट निर्धारित करती है, जबकि यहां पोषण ही नहीं है। जहां पोषण नहीं है, वहां कुपोषण की बात कहां आती है।’ यही स्थिति महिलाओं की है। जब महिलाओं के साथ न्याय ही नहीं होगा, तब हम उनके साथ हो रहे अन्याय के खिलाफ कितने ही कड़े कानून बनाते जाएं, उससे क्या होगा? प्रगतिशीलता का तमाम दम भरने वाला ‘टाइम्स ऑफ इंडिया’ करवा चौथ की पूजा करती महिला की तस्वीर प्रतिवर्ष क्यों छापता है? यह काम 15वीं सदी में

लिखी गई चौपाई 'ढोल, गवार, शूद्र, पशु नारी...' से ज्यादा भिन्न कहां है। कंप्यूटर युग में सिर्फ महिला से यह उम्मीद क्यों की जाती है कि वह दिन-भर भूखी-प्यासी रहकर पति के दीर्घायु रहने की कामना करे? वट-सावित्री, करवा-चौथ, तीज जैसे व्रत वह पुरुषों के लिए क्यों करे?

कुछ साल पहले एक एथलीट लड़की ने अपने कोच द्वारा की जा रही बलात्कार की कोशिश को प्रेस के सामने उजागर कर दिया था, इस पर थोड़ा तूफान उठा था। बाद में नाम न छापने की शर्त पर पूरी महिला टीम ने रोंगटे खड़े कर देने वाले किस्से बताए कि किस तरह पुरुष अधिकारी और कोच उन्हें हमबिस्तर होने पर मजबूर करते हैं और ऐसा न करने पर उन्हें टीम से बाहर कर देते हैं।

देश उम्मीद लगाए बैठा है कि खेल जगत् में भारतीय महिलाएं चीन या कोरिया की महिलाओं की तरह कुछ कर दिखाएं। जबकि किसी भी टीम की महिला सदस्य का लक्ष्य पदक नहीं, बल्कि उसका अपना शरीर होता है कि किस तरह वह उसे भेड़ियों के बीच बचा सके।

बात की जाती है कि ससद में महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल रहा। बाकी विधायी संस्थाओं में भी महिलाओं की कमोबेश यही स्थिति है। एक कटु सत्य यह भी है कि महिलाओं के नेतृत्व से महिलाओं को कोई फायदा नहीं हुआ। पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका के आंकड़े तो इसके गवाह हैं ही, अपने सौ दिन के शासनकाल में मायावती ने भी महिलाओं की कोई सुधि ली हो, याद नहीं पड़ता। कछुआ चाल से एक रस्म के तौर पर महिलाओं के अधिकारों की बात तो हर कोई करता है, लेकिन परिणति तक कोई नहीं ले जाना चाहता।

थोड़े दिनों पहले 'लंदन टाइम्स' की एक संवाददाता ने बिहार के कटिहार जिले में 50 रुपये में नवजात बच्ची की गरदन मरोड़ देने वाली एक महिला को 500 रुपये दिए और कहा कि वह उसी जगह पर चलकर यह बताए (डिमॉन्स्ट्रेशन करे) कि उसने बच्ची की गरदन कैसे उमेठी। छह महीने बाद विनोद मेहता के संपादकत्व में निकली मैगजीन 'आउटलुक' ने फिर उसी महिला से उसी तरह का डिमॉन्स्ट्रेशन करवाया।

क्या कहना चाहते हैं ये लोग?

बच्चियों की हत्या करने वाली इस दाई ने साफ कहा कि वह यह सब नहीं करना चाहती, पर बच्ची के मां-बाप उसे ऐसा करने पर मजबूर करते हैं।

वह सिर्फ इतनी कोशिश करती है कि फूल-सी बच्ची को इस तरह मारे कि उसे बिलकुल कष्ट न हो।

इस क्रूर सामाजिक सच का प्रसार जरूरी है या उसे रोकना। महिलाओं के साथ हो रहे अत्याचारों के आंकड़े तैयार करना जरूरी है या इनके खिलाफ खड़े होना? भंवरी बाई के पास कौन-सी डिग्री है, वह किसी मेनस्ट्रीम या सेमिनार में लेख नहीं लिखती, बल्कि सीधे खिलाफ खड़ी हो जाती है और उसकी कीमत (सामूहिक बलात्कार सहकर) चुकाती है। महिलाओं के बारे में जरूरत अब ज्यादा सोचने की नहीं, सचमुच कुछ शुरू करने की है।



सरकारी दहेज है यह

दिल्ली सरकार की तरफ से अनुसूचित जाति की विधवाओं के लिए 5000 रुपये अनुदान देने की पेशकश 'डाइरेक्ट्रेट फॉर दि वेलफेयर ऑफ एस सी/ एस टी' ने हाल ही में जारी एक विज्ञापन के जरिए की है। 'फाइनेंशियल असिस्टेंस टू शिड्यूल कास्ट विडोज' के शीर्षक से अंग्रेजी में दिए गए इस विज्ञापन में लिखा है कि यह राशि अनुसूचित जाति की कोई भी विधवा, जिसकी आमदनी 15000 रुपये (शायद वार्षिक) से अधिक न हो, तथा बेटी की उम्र 18 या उससे अधिक हो, यह धन बेटी की शादी के लिए ले सकती है। इस राशि को लौटाने की भी कोई आवश्यकता नहीं है—ऐसा विज्ञापन में ही लिखा है। इसके लिए की जाने वाली तमाम आवश्यक कार्यवाहियां भी दी गई हैं।

सरकार द्वारा खुद लिखित रूप से दहेज दिए जाने को स्वीकृति देने की इससे पुख्ता सहमति को कानून की नजर से क्या माना जाना चाहिए? सरकार द्वारा उठाया गया यह कदम तब, जबकि 'दहेज देना या लेना कानूनन जुर्म है।' ऐसे में क्या माना जाना चाहिए? यही कि देश में जहां दहेज एक गंभीर समस्या के रूप में दिन-ब-दिन फैलता जा रहा है, लड़कियों को सामाजिक बोझ समझा जाता है, उनके विवाह में अड़चनें आती हैं, वहां सरकारी तौर पर यह एलान करना कि 'लड़कियों की शादी के लिए दहेज ले लो' निहायत ही घटिया माना जाएगा। खासकर तब जबकि सरकार अपने ही बनाए कानूनों को स्वयं रौंद रही हो।

20 मई 1961 को भारत सरकार ने 'दहेज निषेध एक्ट' बनाकर दहेज लेना तथा देना दोनों ही कानूनी रूप से अवैध घोषित कर दिया था। 'दहेज निषेध एक्ट' सेक्शन-2 में 1984 तथा 1986 में कुछ संशोधन करने के बावजूद सरकार ने यह स्वीकार किया कि उक्त अनुच्छेद के अंतर्गत दहेज मांगने या मांगने के लिए किसी भी प्रकार का दबाव डालने पर 5 वर्ष की कैद व 15000 रुपये जुर्माना किया जाएगा। इस सजा या जुर्माने की राशि में किसी प्रकार की कमी या राहत नहीं देने के स्पष्ट आदेश भी हैं। दहेज देने की इस प्रक्रिया में सरकार द्वारा कानून का खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन आम जनता को क्या सीख देगा?

सरकारी कार्रिंदे या नेताजन माइक उठाए सेमिनारों, उद्घाटनों और महिला जागृति पर दिए जाने वाले भाषणनुमा लफ्फाजी में क्या कहेंगे? यही न कि यदि आप गरीब हैं, आपके पास फूटी कौड़ी भी नहीं है तो क्या हुआ? अब हम आपकी बेटियों की शादी में दिए जाने वाले दहेज का जिम्मा उठाते हैं। अब से सरकार देगी दहेज और मुह बंद कर देगी ससुराल-पक्ष का। कहने का मतलब यह बिल्कुल नहीं कि सरकार द्वारा गरीब-बेसहारा जरूरतमंद लोगों की मदद न की जाए, बल्कि सीधी तौर पर यह कहना ठीक होगा कि सरकार इस तरह के कार्यों को स्वयं संपन्न करवाए तो बेहतर रहेगा। गरीब बेवा की बेटी के हाथ पीले करने के लिए सरकारी तौर पर सबसे बढ़िया कदम तो यह माना जाता कि सारी आवश्यक कार्यवाही के बाद एक-दो दिन की व्यवस्था करवा कर सरकार अपने अधीन एक 'सामूहिक विवाह-समारोह' जैसा कार्यक्रम संपन्न कर ये तमाम शादियां एक साथ करवा देती। इससे न केवल उचित व्यक्ति तक सहायता पहुंचती, बल्कि जरूरतमंदों को इधर-उधर भटकने के बाद तमाम दस्तावेज न जुटाने पड़ते जो सरकार द्वारा वैधव्य की प्रमाणिकता सिद्ध करने के लिए मांगे गए हैं।

लड़कियों को समाज में सम्मान दिलाने, गर्भ से गिरा दिए जाने या ससुरालियों द्वारा वांछित दहेज न ला पाने पर मार दिए जाने जैसी घटनाओं को यदि रोकना है तो शिक्षा का व्यापक प्रसार और महिलाओं को आर्थिक रूप से दृढ़ करने के अतिरिक्त कुछ खास देने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। आर्थिक रूप से संपन्न महिला दोयम दर्जे का जीवन जीने के लिए मोहताज नहीं रहती। न उसके सामने किसी पर आश्रित रहने का सवाल आता है और न इस तरह की सरकारी मददों की जरूरत ही रह जाती है। अपने बच्चों को दो जून की रोटी, तन ढकने को कपड़ा और प्राथमिक शिक्षा दिलाने में उसके हौसले पस्त नहीं होते। औरत के मोहताज न होने-भर से सामाजिक कुव्यवस्था की आधी छुरियां स्वतः ही भोंथक जाएंगी। यह मान भी लिया जाए कि दहेज एक रिवाज के तहत दिया जाता है तो भी लड़की के भविष्य के प्रति निश्चिंतता तो नहीं ही आ पाती।

समाज में दहेज का प्रचलन पिछले कुछेक सालों में तेजी से बढ़ा है। ज्यों-ज्यों लोगों में धनाकर्षण बढ़ता गया, वे अपनी गरिमा और स्थिति को संपत्ति के जोर पर तोलने लगे। ऐसे में लड़कियों की शादी पर वैभव व संपन्नता का प्रतीक बना धन धीरे-धीरे स्त्री-धन में तब्दील होता गया और अंततः यह आवश्यक अंग

माना जाने लगा। आज गरीब तबके तक में दहेज का खासा वर्चस्व नजर आता है। एक घरेलू काम करने वाली 10-12 साल की लड़की से जब यह पूछा गया कि वह मा-बाप के नौकरी करने के बावजूद क्यों काम करती है। उसका मासूम-सा जवाब था—‘अपनी बड़ी बहन की शादी पर हमने दहेज लेने के लिए जो कर्ज लिया था उसे चुकाने के लिए सारा घर पैसा कमाता है।’

लड़कियों के जन्म को अपशकुन समझना, समाज में उनकी इज्जत कम होना और जन्मते ही लड़की का गला दबा देना या आधुनिक मायनों में भ्रूण-हत्या कर देना, लड़कियों को दूसरे दर्जे पर रखने जैसे तमाम दुष्कर्म मात्र दहेज से जुड़े हैं। दहेज मायने सीधे तौर पर कह सकते हैं—पैसे से लड़का खरीदने की यह वह बेबुनियाद जरूरत है, जिसकी दरअसल कोई जरूरत ही नहीं है।

।
।
।
।
।
।
।
।
।
।
।

कॉलमबाजों का जायका

गरीबी की रेखा से ऊपर के अखबार 'एशियन एज' में प्रत्येक रविवार को जानी-मानी फैशन डिजाइनर बीना रमानी 'वेरी पर्सनल' कॉलम में लोगों को निजी समस्याओं के चटपटे समाधान सुझाती हैं। 15 जनवरी के अंक में एक प्रश्न देखें—'मैं 25 साल का युवक हूँ। बहुत रईस हूँ। मैं गली की एक लड़की से प्यार करने लगा हूँ। हमारे बीच पिछले कई महीनों से शारीरिक संबंध है। मैं उससे शादी करना चाहता हूँ। लेकिन मुझे पता है, मेरे मम्मी-पापा इस रिश्ते की इजाजत नहीं देंगे। क्या मेरा यह विवाह संभव है या मुझे यह रिश्ता तोड़ देना चाहिए' (ए.एम. दिल्ली)। अब बीना रमानी का जवाब—'यस। ब्रेक इट, एंड अवॉयड फरदर हार्ट ब्रेक। इट लुक्स लाइक ए डूम्ड रिलेशनशिप, हाउएवर आई कांट हेल्प वट सेल्यूट योर एडवेंचर।' (हां, तुरंत इसे तोड़ दीजिए और आगे दिल टूटने से बचाइए। यह आपको बरबाद कर देने वाला कदम है। मैं आपकी मदद नहीं कर सकती, लेकिन आपके इस साहस को सलाम करती हूँ।)

इस प्रश्न के ठीक ऊपर बीना रमानी का लगभग खिलखिलाती रंगीन फोटो लगी है। इस सवाल-जवाब पर चर्चा थोड़ा रुककर पहले एक और सवाल देखें—सौंदर्य प्रतियोगिताओं के लिए चर्चित महिलाओं की एक अति प्रगतिशील पत्रिका में पर्ल पदमसी का ऐसे ही समस्या-समाधान का एक सवाल—'मैं 16 साल की हूँ, मेरा इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा भाई 21 साल का है। घर में मां नहीं है। मेरा भाई मुझे बहुत प्यार करता है। एक दिन उसने मेरे साथ शारीरिक संबंध कायम किया। यह सिलसिला एक साल से चल रहा है। मैं अपने पापा को बहुत चाहती हूँ। मेरे पापा बहुत सुंदर और स्मार्ट हैं। मेरे भाई को मेरा पापा से ज्यादा बातें करना अच्छा नहीं लगता। मैं बहुत परेशान हूँ। क्या करूँ? (स.शु मुंबई)

पदमसी का जवाब छापने योग्य नहीं है। आप उत्तर के सतहीपन का अंदाजा लगाइए, जब इतना खुला सवाल यहां दिया जा रहा है, तो पदमसी के जवाब में ऐसा क्या होगा? फिर भी उसे दिया नहीं जा सकता। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में

निजी समस्याओं पर आधारित सवाल-जवाब का सिलसिला सचमुच परेशान पाठकों से हमदर्दी और उन्हें सही राह दिखाने के लिए शुरू हुआ था, लेकिन आज यह एक सेलिंग प्वाइंट है।

एक मिनट के लिए बीना रमानी के जवाब के बारे में सोचिए। एक रईस युवक यदि एक स्वाभिमान से कमाने वाली गरीब लड़की को चाहने लगा और उसने रिश्ते की सीमा लाघ ली तो क्या उसे जवाब में यह राय दी जानी चाहिए कि 'यस, ब्रेक इट।' सिर्फ इसलिए, क्योंकि रईस लड़के के मा-बाप को यह सूट नहीं करेगा। क्या प्यार की शुरुआत में मां-बाप की इजाजत ली गई थी और फिर इसमें बीना रमानी को ऐसा कौन-सा साहस दिखा जिसमें सैल्यूट मारने लगीं। पहाड़ की भोली-भाली महिलाओं के साथ पुलिसवालों द्वारा बर्बर बलात्कार के बाद मुजफ्फनगर के डी.एम अनंत कुमार सिंह के जवाब और बीना रमानी के जवाब में क्या फर्क रह जाता है? मिस्टर सिंह ने भी तो यही कहा था कि कोई भी औरत अकेली होगी, तो उसके साथ बलात्कार नहीं होगा तो क्या होगा।

इसे केवल औरतों का दुर्भाग्य मानकर छोड़ देने से कुछ नहीं होने वाला। औरत के बारे में इतनी गंभीर और धिनौनी बातें करने वाले इन समझदार लोगों की बुद्धि पर तरस खाकर इन्हें छोड़ भी नहीं दिया जा सकता। दरअसल तो तमाम औरतों को मिलकर ऐसी वाहियात बातें करने वालों की जुबान सीने को हरदम तैयार रहना होगा, ताकि ये सब ऐसी बेहयाई-भरे जवाब मोचने से भी डरें। चाहे वह रमानी हों या अनंत।

नई आर्थिक नीति के बाद नवधनाढ्य वर्ग की महगी पत्र-पत्रिकाओं का सेक्स, हेल्थ, फैशन, व्यंजन और कल्चर के नाम पर हजार सालों की अपनी संयुक्त परिवार की धारणाओं की खिल्ली उड़ाना ही होता है। फैशन की नामी पत्रिका 'क्लैडियस' के एक अंक में महिलाओं की खुली परिचर्चा में महिलाओं की ही अति गोपनीय मर्यादाओं और विश्वास की छीछालेदार की गई और यह बताने वाली महिलाओं के बारे में लिखा था कि वह एक हाउस-वाइफ है। मेरा सवाल है कि महिलाओं के लिए महिला आयोग बनाने का क्या मतलब रह जाता है, जब बीना रमानियां, पदमसियां, शोभा डेएं और इसी तरह की तमाम फाइव स्टार सोच वाली महिलाएं ही यह करेंगी। क्षमा कीजिए, 'मानुषी' की संपादक मधु किश्वर को भी इन्हीं सब चीजों में अब मजा आने लगा है। यहां सिर्फ 'नारि न मोहे नारि के रूपा' वाली शिकायत नहीं है।

सुप्रीम कोर्ट ने बलात्कारी युवकों की सजा घटा दी, लेकिन इस पर शोभा

डे, तवलीन सिंह, अनीस जंग, अमिता मलिक, कूमी कपूर, मृणाल पाडे, मधु किश्वर, बच्ची करकरिया आदि तमाम कॉलम लिखने वाली महिला पत्रकारों का खून क्यों नहीं खौला? किसी की प्राथमिकता में यह विषय नहीं आया।

क्या इन सबसे लाख दर्जे बेहतर वह अगूठाछाप भंवरीदेवी नहीं है, जिसका खून तो खौलता है। हम लाखों-करोड़ों बेसहारा महिलाओं के साथ हमदर्दी न रख सकें, एक बार यह भी क्षम्य हो सकता है, लेकिन बीना रमानी की तरह कम से कम सेल्यूट तो न करें। मुझे किसी ने बताया कि 'हैलो जिंदगी' बनाने वाली नलिनी सिंह अपने फुटेज को लाइवली बनाने के लिए महिलाओं (ऑब्जेक्ट) को तब तक कुरेदती रहती है जब तक वह फफककर रो नहीं पड़ें। यह उनका सेलिंग प्वाइंट है। वरना इसका क्या मतलब है कि निम्न-मध्यम वर्ग की तमाम दुखती रंगों को परदे पर दिखाकर इसके उपसंहार में पूछे गए सवालों के जवाब देने वालों को हवाई जहाज की सैर करवाई जाती है। आधे घंटे का 'हैलो जिंदगी' देखने के बाद जब दर्शक सचमुच अभागे लोगों के दर्द में शामिल हो जाता है, तब नलिनी सिंह हवाई यात्रा का यह प्रपोजल लेकर प्रकट हो जाती हैं और इसके लिए नलिनी सिंह की तारीफ की जाती है कि वाह, भाई वाह! क्या प्रोग्राम प्रोड्यूस किया है!

बीना रमानी, पद्मसी और नलिनी सिंह को अपनी मार्केटिंग पर भले ही शर्म न आए, लेकिन मुझे शर्म आती है कि मैं भी उसी नारी समाज से हूँ जहाँ पुरुष ही नहीं, नारी भी नारी का शोषण करती है।

‘अशुद्ध’ मानसिकता या औरत?

मां काली, मां दुर्गा, मां सरस्वती, मां लक्ष्मी, थोड़ी देर के लिए इनमें नई देवी संतोषी मइया को भी शामिल कर लेते हैं। इन सबकी क्या उमर होगी भला? हम सभी रोज इनकी मूर्तियां और कैलेंडर में बने इनके चित्र देखते हैं। चित्रों और मूर्तियों को सुंदरता के आधार से देखें तो किसी भी देवी मां की उमर तीस साल से ज्यादा नहीं लगती। ज्यादा से ज्यादा 35 साल कह सकते हैं। प्राचीन मंदिरों में उकेरी अन्य प्रस्तर देवियों, अप्सराओं का शरीर-सौष्ठव भी लगभग इसी उमर के आसपास दिखता है, बल्कि इससे कम ही होगा।

हिंदू संस्कृति ही नहीं, ग्रीक और ईसाई धर्म में भी लगभग सभी देविया युवा ही हैं। देवियों की उमर का हिसाब-किताब मैं इसलिए आपके सामने रख रही हूँ, क्योंकि केरल के शवरमाला स्थित ‘आयप्पा’ के मंदिर में 10 साल से 50 साल के बीच की महिलाओं का प्रवेश वर्जित है। यह मंदिर जिस जिले में आता है, वहां की जिलाधिकारी कुमारी वल्सल पुजारियों और पंडों के इस तानाशाही धर्मदिश के खिलाफ खड़ी हुई। 42 साला कुमारी वल्सल केरल हाईकोर्ट में गईं और जीतीं।

जो पाठक अखबार-पत्रिकाओं आदि से गुजरते हैं, उनके पास एक न्यूनतम सोच होती है। लेकिन महिला एक ऐसा विषय है, जिसमें मूर्ख का दिमाग भी खूब चलता है। आप समझ रहे होंगे कि 10 साल से 50 साल की औरत समाज में क्यों इस लायक नहीं होती कि वह मंदिर में घुस सके। यह समय उसके मासिक चक्र का होता है। निश्चित रूप से यही चक्र पुजारियों और पंडों के इस धार्मिक दुनिया में आने में एक अहम रोल निभाता है। जहा आकर वे इसी प्राकृतिक क्रिया के कारण महिला जाति को ‘अशुद्ध’ करार देते हैं। सोचिए, कितना भयावह है। यहां दक्षिण के उन्हीं मंदिरों में लड़की अजीवन कुंवारी रहकर पुजारियों और पंडों की रखैल (देवदासी) बनी रहे तो उसके मंदिरों में प्रवेश से मंदिर अशुद्ध नहीं होता।

दक्षिण के लिए यह बात भी भुलाई नहीं जा सकती कि वहां की कुल

अर्थव्यवस्था की उपलब्धियों को अर्जित करने में महिलाओं का भारी योगदान है। अस्सी प्रतिशत से अधिक महिलाएं वहां आर्थिक रूप से सुदृढ़ हैं, और विभिन्न व्यवसायों या रोजगार से जुड़ी हुई हैं।

‘धर्मयुग’ में सुदर्शना द्विवेदी ने इतिहास के किसी हिटलर का हवाला देते हुए एक बयान दर्ज किया था, जो मुझे कभी नहीं भूलता। बयान है कि औरत सत्रह साल की पैदा होनी चाहिए और तीस साल में मर जानी चाहिए। इस दौरान वह मानव समाज का जितना भला कर जाती है, उतना बाकी जीवन की नहीं कर सकती। अर्थ यह कि औरत एक कारतूस से ज्यादा कुछ नहीं। उसका यौवन ही उसके स्त्रीत्व की एकमात्र पूजी है और जब तक मर्द उसे भोग सकता है, तभी तक वह जीवित रहे। यानी औरत का जीवन केवल मर्द के भोग तक ही सीमित रहना चाहिए।

विश्व हिंदू परिषद् के लोग तथा मुस्लिम कठमुल्ले कहते हैं कि धर्म के मामले कोर्ट में नहीं ले जाए जाने चाहिए। यह आस्था की बात है, इसे तर्क से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। लेकिन जरा सोचिए कि बल्सल कुमारी, बल्कि इसी बहाने पूरे महिला समाज की बात अगर कोर्ट नहीं समझता तो आस्था के चलते महिलाएं एक प्राकृतिक प्रक्रिया के अपराध-बोध से ग्रसित रहतीं और लंबे समय से चले आ रहे इस अपमान को सहती रहती।

सर्वेक्षण बताते हैं कि 76 प्रतिशत भारतीय लड़कियां मासिक चक्र के दिनों में भयानक डिप्रेशन का शिकार हो जाती हैं। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि भारतीय परिवारों में मासिक को घृणित नजर से देखा जाता है। औरतो को इस वक्त अंधेरी-सीलनभरी जगहों में मर्दों के साये से दूर छिपकर रहना होता है। इन दिनों उन्हें इस्तेमाल करने के लिए गंदे चिथड़े दिए जाते हैं, लिहाजा तमाम यौन संक्रमण उन्हें घेर लेते हैं।

जबकि मासिक चक्र है क्या—यह भी तो आज तक नहीं सिद्ध हो पाया। वैज्ञानिक आधार पर यदि देखा जाए तो मासिक चक्र का सीधा-सा संबंध स्त्री के गर्भ धारण करने से है। तमाम परीक्षणों और वैज्ञानिक आधार पर केवल इतनी पुष्टि भर हो पाई है कि मां बन सकने वाली उमर में प्रतिमाह रक्त-कणिकाओं का एक जाल या हम कह सकते हैं, महीन झिल्ली जैसी गर्भाशय के अंदर चारों तरफ फैल जाती है। इस प्रक्रिया के जरिये एक खास तरह का पदार्थ उत्पन्न होता है जो गर्भ धारण करने में सहायक होता है। गर्भ न ठहरने की स्थिति में यह जाल या झिल्ली ही रक्त-स्राव के माध्यम से नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ

साल पहले एक अमेरिकी युवा स्कॉलर ने एक थ्योरी भी दी थी जिस पर बहस हुई। लेकिन अततः यह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकी। दूसरी स्तनजीवियों में यह चक्र क्यों नहीं पाया जाता? कुल मिलाकर आज भी इम् का सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार नहीं है। लेकिन एक सुदृढ़ सामाजिक विचार कि महिला इसके चलते 'अशुद्ध' हो जाती है।

4

आत्मविश्वास बढ़ाना या तोड़ना?

रविवार को दूरदर्शन पर आने वाले मूकों और बधिरो के समाचार में एक बार खबर दी जा रही थी कि मुंबई सरकार मानसिक रूप से विकलांग युवतियों के गर्भाशय निकाले जाने के मामले की जांच करवाएगी। आगे समाचार में इसी घटना की पृष्ठभूमि के बारे में इशारों से न्यूज रीडर बता रही थी। मूकों और बधिरो के समाचार दूरदर्शन पर सरकार ने इस मशा के साथ शुरू किए थे कि इसके मूक-बधिरो को देश-दुनिया की जानकारी मिलेगी और समाज में उनका खोया हुआ आत्मविश्वास लौटेगा। सोचिए, विकलांगों के साथ सरकारी डॉक्टरों द्वारा गर्भाशय निकालने वाली खबर सुनकर उनका आत्मविश्वास कितना बढ़ा होगा !

दिल्ली में अब प्रति वर्ष मूक-बधिर महिलाओं की सौदर्य प्रतियोगिता का चलन शुरू हो चुका है। इसे आयोजित करवाने वाली एक संस्था डी एफ डी.डब्ल्यू (डेलही फाउंडेशन ऑफ डेफ वूमेन) की सेक्रेटरी मिस रूनी कूरियन का कहना है कि 'इससे गूमी-बहरी महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ेगा। पिछले कई सालों से हम इस प्रतियोगिता के लिए स्पॉन्सर ढूँढ रहे थे। इस साल हमें स्पॉन्सर करने वाली कंपनी मिल गई तो हम यह प्रतियोगिता करवा सके।' प्राकृतिक शाप की शिकार इन महिलाओं के साथ हुए भोंडे मजाक को दिल्ली के लगभग सभी अभिजात्य अखबार पहले पन्ने पर छापते हैं। प्रतियोगिता में मूक-बधिर महिलाओं का आई.क्यू टेस्ट होता है जिसका प्रतियोगिताओं के इशारों से जवाब देना होता है। प्रतियोगिताओं में 'फिगर के अनुपात' को भी मार्किंग का आधार बनाया गया है।

पुरुषों में से बहुत सारे लोग हो सकता है इन भोड़ी प्रतियोगिताओं से सहमत हों क्योंकि भरे हॉल में लोग तालिया तो बजा ही रहे थे। यह उसी तरह है जैसे गुरुदत्त की फिल्म 'कागज के फूल' में एक दृश्य की शूटिंग के लिए स्टूडियो के बाहर बैठे भिखारी को भी शामिल किया जाता है, क्योंकि दृश्य में भिखारी की जरूरत थी। फिल्म की बाकी कहानी पर न जाए तो क्या इस तरह काम करवा लेने से भिखारी का आत्मविश्वास बढ़ जाएगा। मिस यूनिवर्स और मिस वर्ल्ड प्रतियोगिताएं पहले अमेरिका और इंग्लैंड में होती थीं, लेकिन वहां के

महिला संगठनों के कड़े विरोध के कारण आयोजकों को इन दोनों देशों से खदेड़ा गया। 'मानुषी' की सभादक मधु किश्वर बताती हैं कि जब वह मिराडा कालेज छात्र यूनियन की अध्यक्ष थीं तब उन्होंने वहां हर साल होने वाली सौंदर्य प्रतियोगिता को बंद करवाया था, लेकिन उनके हटने के बाद ये फिर शुरू हो गई। सौंदर्य प्रतियोगिताओं पर कई लंबी, गंभीर वैचारिक बहसों का निष्कर्ष यही रहा है कि यह औरत को 'माल' बनाने की एक खूबसूरत साजिश है।

लेकिन बजाय इन्हे रोक पाने के आज हालात यहां तक पहुंच गई कि गूगी-बहरी लड़किया भी ग्लैमर के इस जाल में फंसाई जा रही हैं। प्रतियोगिता के आयोजक आत्मविश्वास बढ़ाने की बात करते हैं, जरा जाकर पूछिए उन मूक-बधिर लड़कियों के मां-बाप से कि बेटी के साथ यह हादसा कैसे हुआ—जवाब मिलेगा कि यदि हमारे पास पैसे होते तो हम अपनी बिटिया का इलाज करवा सकते थे। जी हा, आज ऐसे तमाम कोर्स हैं जिनमें चरणबद्ध और धैर्य के साथ दिए प्रशिक्षण से मूक लोगों ने कामचलाऊ बोलना सीखा, बधिरों के लिए तो तमाम यंत्र आ ही गए हैं। यह कोई गंभीर समस्या नहीं है। प्रतियोगिता के आयोजकों ने भी माना है कि कुछ लड़किया फाइनेंशियली वीक बैकग्राउंड यानी गरीब परिवारों की थीं। अच्छा यह भी छोड़िए, सोचिए उन बाकी लड़कियों के बारे में जो इन प्रतियोगिताओं में अपना सब कुछ दिखाने के बाद भी कोई इनाम नहीं पास सकीं। क्या इससे उनका आत्मविश्वास मजबूत होगा? दरअसल हम सब संवेदना के साथ हो रहे क्रूर मजाक में शामिल हैं। पहले नंबर पर आई लड़की को मिस साइलेंट डेलही का खिताब दिया जाता है। क्या है यह? एक लड़की की विवशता को ही उसका गुण बनाया जा रहा है।

इतने ही पैसे से मूकों और बधिरों की शिक्षा, उनके इलाज, उनमें आत्मविश्वास पैदा करने के लिए सचमुच कोई कार्यक्रम होता तो शायद मूक-बधिरों को बड़ी संख्या में फायदा मिलता है, जो न केवल वर्तमान समय में बल्कि लंबे अरसे तक सैकड़ों की तादाद में उन्हें मदद पहुंचाता रहता। देश के लाखों मूकों व बधिरों में सभी 18 माल की लड़कियां ही तो नहीं हैं, बूढ़े हैं, बच्चे हैं और ऐसे लोग हैं जो किसी तरह अपना पेट भी नहीं भर पा रहे हैं। यह सौंदर्य प्रतियोगिता उन्हें कौन-सा संदेश दे रही है—इस पर हमें सोचना चाहिए। कम से कम एक मिनट ही, वरना यह तो आदिकाल से पुरुषों को सूट करता रहा है कि सुंदर औरत गुंगी हो। कहीं यह वही तो नहीं।

नंगेपन से दूर सौंदर्य प्रतियोगिता

सौंदर्य प्रतियोगिताओं के नाम पर, स्विमिंग सूट में स्त्री देह की कमनीयता को 'प्रोडक्ट' में बदलने की वकालत कर रहे, अभिजात्य, नवधनाढ्य, पश्चिमपरस्त लोगों के मुह पर लॉस एंजिलिस में हुआ एक छोटा-सा समारोह करारा थप्पड़ है। लॉस एंजिलिस में रह रहे भारतीयों ने भी एक सौंदर्य प्रतियोगिता ही की थी, लेकिन इसमें मिस वर्ल्ड या मिस यूनिवर्स बनकर प्रायोजक बहुराष्ट्रीय कंपनियों की गुडिया बनने की चाह नहीं थी। चाह थी—अमेरिका में रहकर अपनी जड़ों से जुड़े रहने की। अपनी पहचान पर गर्व करने की।

छोटे से, बिना तडक-भडक वाले मंच पर प्रवासी भारतीयों की ये लड़कियाँ साड़ी का बड़ा-सा पल्लू लिए हुए पारंपरिक भारतीय आभूषण और हाथों में मेंहदी लगाए हुए थीं। इस प्रतियोगिता में भाग ले रही तमाम लड़कियों ने तो भारत देखा भी नहीं है लेकिन उनके सपनों में भारत ही बसा था। गौर करने वाली बात यही है कि ये सारी प्रतियोगी लड़कियाँ करोड़पति, बल्कि डॉलरपति बाप की बेटियाँ हैं। दुनिया के सबसे महंगे स्विमिंग सूट भी उन्होंने पहने हैं और खुलेपन का वह क्लाइमेक्स भी देखा है जिसे लेकर हमारे यहाँ अखबारों में पत्र-लेखी पाठक हाय-हाय करते हैं। जबकि देश में या विदेशों में होने वाली मिस इंडिया/मिस यूनीवर्स टाइप प्रतियोगिताओं के कार्यक्रम की छोटी-सी झलक हो सकता है, आपने भी देखी हो। फेमिना की मिस इंडिया प्रतियोगिता की तरह न तो इसमें अश्लील कैमरा एंगल थे, न ही प्रतियोगी लड़कियाँ दिल्ली, मुंबई जैसे महानगरों में होने वाले तमाम ब्यूटी कंटेस्टों की तरह भोंडी अदाएं पेश कर रही थीं।

वास्तव में सकारात्मक या नकारात्मक जैसा कुछ स्पष्ट नहीं होता। पहले यह आपके इरादों में पनपता है। लॉस एंजिलिस में रहकर ही हजारों सालों से चली आ रही भारतीय संस्कृति की व्यापकता को ठीक तरह से समझा जा सकता है। सही तो यह है कि दुनिया की किसी भी संस्कृति में ऐसा कुछ भी नहीं है जो भारतीय संस्कृति में न हो। इसमें वह नकारात्मकता भी शामिल है, जिसका प्रयोग

कर और फल भुगतकर सैकड़ों साल पहले हम उससे निकल चुके हैं। उदाहरण के लिए— अब तक के अनगिनत नारी परिधानों में साड़ी को सबसे ज्यादा कमनीय पोशाक माना गया है। यह भारतीय नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्वीकारोक्ति है। साड़ी से कमनीयता का मतलब उसी सेक्सीपन से है जो स्विमिंग सूट में भी नहीं आ पाता। लॉस एंजिलिस में रह रहे भारतीय मूल के लोग हम भारत में रह रहे भारतीयों से ज्यादा भारतीय इसीलिए हैं, क्योंकि वे पश्चिम की खोखली भोगवादी संस्कृति की निरर्थकता को रोज पास से देखते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक जगह रचना की व्याख्या करते हुए कहा कि कृति की श्रेष्ठता इसी में है कि वह कितने कर्व लिए है। यह बात स्त्री सौंदर्य के साथ भी लागू होती है। खुलापन एक तरह से स्त्री सौंदर्य की सपाट अभिव्यक्ति है। आदिम युग में यही तो था! लेकिन मनुष्य ने अपनी कल्पनाशीलता से उसे सजाया-संवारा और यह कल्पनाशीलता भारत में अपने चरम पर मानी जाती है। डेढ़-दो कोस में पानी-बानी व पहनावा बदल जाना सिर्फ एक मुहावरा नहीं है, यह हमारी विविधता और बौद्धिक समृद्धि का परिचायक भी है। लेकिन इसे यहाँ रहकर हम उस तरह से नहीं समझ पाते, जिस तरह से हम ब्रिटेन, बर्लिन या न्यूयार्क में समझते हैं। भारत को तो विदेशी अपने-आप में पूरी एक दुनिया मानते हैं। सिर्फ चमड़ी के रंग से कोई किसी देश का वासी नहीं हो जाता।

एशियाई मूल के सारे लोग एक जैसे होते हैं, लेकिन वे अपनी बोली और पहनावे से ही अपनी मातृभूमि का प्रतिनिधत्व करते हैं। इससे ज्यादा दुःखद क्या हो सकता है कि फेमिना के मिस इंडिया शो में भारतीय लड़कियाँ अर्धनग्न होकर इतराती हैं और पश्चिम में भारतीय लड़कियाँ अपने भारतीय होने पर गर्व कर रही हैं। कुछ लोग इसमें अपनी आर्थिक आंकड़ेबाजी की टांग अडाने की कोशिश कर इसे भी जायज ठहरा सकते हैं या ये लोग यह भी कह सकते हैं कि लॉस एंजिलिस में साड़ी पहनना कंट्रास्ट को उभारता है, लेकिन ऐसे लोग उस भारतीय मुसकान के बारे में क्या कहेंगे जो प्रवासी भारतीयों के चेहरों से झलक रही थी या उस ललक के बारे में क्या कहेंगे जो लॉस एंजिलिस की लड़कियों में भारत के बारे में थी?

‘मेरा भारत महान्’ कहने और इसके होने में सचमुच अभी कितना अंतर है।

नहीं चाहिए लव लेटर

इंडियन पीनल कोड में किसी लड़की से इशारेबाजी करना, फब्बतियां कसना या उसे छेड़ने को अपराध माना गया है और इसके लिए तमाम धाराएं हैं, लेकिन राजस्थान उच्च न्यायालय ने इन तीनों चीजों से एक कदम आगे जाकर लड़की को 'लवलेटर' लिखने को अपराध नहीं माना है, बल्कि फैसले की शब्दावली लवलेटर लिखने की उत्साहित करने के पक्ष में ज्यादा है।

मामला आपको मालूम ही होगा, एक क्लास में एक छात्र ने अपनी कक्षा में साथ पढ़ने वाली लड़की को लवलेटर लिखा। लड़की ने प्रिंसिपल से इसकी शिकायत की। प्रिंसिपल ने लड़के के परीक्षा में बैठने पर रोक लगा दी। लड़के का पिता मामले को अदालत में ले गया। अदालत ने अंतरिम तौर पर छात्र को परीक्षा में बैठने की छूट तो दे दी, लेकिन साथ ही यह निर्देश भी दिया कि छात्र का परीक्षाफल रोक लिया जाए। मामला राजस्थान उच्च न्यायालय तक पहुंचा, जहां लड़के को अपराध से बरी करते हुए यह फैसला दिया गया कि लवलेटर लिखना शारीरिक आकर्षण का परिणाम है और इसमें कुछ भी गलत नहीं है। पूरा मामला अखबारों में छपा और चस्के लेकर पढ़ा गया। एक अखबार ने अपने संपादकीय में कालेज प्रबंधन को ही अपराधी ठहरा दिया। लेकिन उच्च न्यायालय के फैसले पर गहराई से विश्लेषण करें तो पहली बात यही है कि प्रेमपत्र लिखना शारीरिक आकर्षण का परिणाम नहीं होता। यह नितांत निजी, आपसी सहमति और परस्पर सम्मान देने की शब्दों में पिरोना है। संक्षेप में इसे हम 'चाहना' भी कहते हैं। लेकिन यदि यह अनचाहा हो तो किसी की निजता पर सीधा आक्रमण है और उसे मानसिक रूप से बहुत आहत करता है।

राजस्थान उच्च न्यायालय ने तो लवलेटर को हरी झंडी दे दी, लेकिन इसकी सीमा के बारे में जरा भी नहीं सोचा। उदाहरण के लिए— आज तमाम फिल्में पवित्र प्रेम पर आधारित हैं, लेकिन उनके सीन ब्लू फिल्मों को पछाड़ते हैं। इसी तरह किसी लड़की के बारे में आप थोड़ी-सी जानकारी जुटा लें और प्रेमपत्र के बहाने उसे ब्लैक मेल करना शुरू कर दें, तो न्यायमूर्ति के अनुसार, इसमें कुछ

गलत नहीं है, लेकिन उस लड़की का जीना दूभर हो जाएगा और वह आत्महत्या की कगार पर भी पहुंच सकती है। (हालांकि न्यायालय के अनुसार तो अब आत्महत्या भी जुर्म नहीं है।) न्यायालय को शायद नहीं पता कि लड़कियों को परेशान करने के लिए रजिस्टर्ड लवलेटर भेजे जाते हैं, जिनकी पावती लड़कों तक पहुंच जाती है और वह लड़की के लिए सिरदर्द बन जाता है।

हमारे सामने ऐसे केस क्या कम आते हैं जब शादीशुदा औरत को उसका पूर्व प्रेमी उसके पति तक पत्र पहुंचाने की धमकी द्वारा उसे लगातार ब्लैकमेल करता है?

दिल्ली के एक जिला न्यायालय ने फैसला दिया था कि 'चोली के पीछे' गाना अश्लील नहीं है। न्यायाधीश महोदय ने कहा कि उन्होंने कई बार गाने को चलवाकर देखा लेकिन उन्हें इसमें कुछ भी अश्लील नहीं लगा। जबकि यह गाना बसो में बजना शुरू होता है तो महिला सवारियां अपने गंतव्य से पहले ही उतरने पर मजबूर हो जाती हैं। इसकी वजह यही है कि एक लोकगीत को तोड़-भरोड़कर बनाया गया यह गाना बेहद अश्लील है और स्त्री सम्मान पर बर्बर चोट है। आपकी अम्मा की चोली के नीचे क्या रहा है, यह आप भली-भांति जानते हैं, मगर जब माधुरी दीक्षित अपने वक्ष उचकाकर यह गाती है तो उसका अर्थ निहायत फूहड़ और अश्लील दिखता है। लवलेटर वाला फैसला भी इसी फैसले जैसा है। सुनने में और कहने में तो बहुत अच्छा लगता है कि दुनिया में चारों तरफ प्रेम ही प्रेम हो लेकिन इसकी जमीनी असलियत यह नहीं है। आज लड़का प्रेम तो हर लड़की से करना चाहता है, लेकिन शादी वहीं करना चाहता है जहां मां-बाप उसकी बोली लगाते हैं। प्रेम के नाम पर मध्यम वर्ग की 95 प्रतिशत लड़कियां ठगी जाती हैं।

यह ठीक है कि प्रेम विज्ञापन देकर नहीं किया जा सकता लेकिन इसे सार्वजनिक मखौल बना देना भी इसे अपमानित करना है। वैसे यह खुलेपन का दौर है। सीमा कहां तक जाएगी, कुछ कहा नहीं जा सकता लेकिन कुछ आदरणीय संस्थाओं पर हम सबका भरोसा बना रहता है। न्यायपालिका एक ऐसी ही संस्था है। उससे सिर्फ महिलाओं की ही नहीं, बल्कि सभी की यही अपेक्षा होगी कि वह शरीर को मात्र आकर्षण की चीज न माने। महिलाओं की तो सारी लड़ाई इसी बात की है कि उन्हें मात्र देह न माना जाए। एक जिम्मेदार संस्था इसमें सहायता न करे तो कम से कम इसके विरुद्ध तो न हो। प्रार्थना के शब्दों में सभी महिलाओं की तरफ से राजस्थान उच्च न्यायालय से मेरी यही विनती है कि वह अपने इस फैसले पर फिर से विचार करे, दया होगी।

इज्जत लौटाने का शार्टकट

तुर्की सरकार ने घोषणा की है, वह अपने यहां की वेश्याओं का उद्धार करेगी। इसके लिए कार्यक्रम बनाया गया है, जिसमें रिटाउर्ड वेश्याओं को रहने के लिए घर, पेंशन और दूसरी सुविधाएं दी जाएंगी। इसके लिए वेश्याओं को सिर्फ इतना करना है कि उन्हें अपना नाम बदलना पड़ेगा। ऐसे समय में, जब कोपनहेगन में दुनिया-भर के मठाधीश समाज पर चर्चा करने जा रहे हैं, यह छोटी-सी खबर तथाकथित उद्धार और कल्याण कार्यक्रमों का असली सच है।

यहां इस बात का कोई मतलब नहीं कि तुर्की में कितनी वेश्याएं हैं और कितनी इस कार्यक्रम में लाभान्वित होगी; बात इसकी है कि कोई औरत वेश्या बनती क्यों है? इस देह व्यापार को लेकर दुनिया भर में तमाम मास्टर पीस नॉवेल लिखे गये हैं। आज भी इस नारकीय स्थिति पर स्तरीय साहित्य लिखा जा रहा है। उन सबको पढ़ जाइए या इस विषय पर बनी डाक्यूमेंटरी देख डालिए—निष्कर्ष सबका यही है कि हर महिला वेश्यावृत्ति को तभी चुनती है, जब उसे मौत या वेश्यावृत्ति में से किसी एक को चुनना होता है। वेश्या का कोई नाम नहीं होता, इस धंधे में सिर्फ उसकी उमर ही उसका नाम होती है। यूरोप के लोग तुर्की को यूरोप का कोढ़ कहते हैं। जरूरी नहीं कि यह सच हो, लेकिन इतना जरूर है कि तमाम खुलेपन के बावजूद तुर्की भी अंततः एक इस्लामी देश ही है और एक इस्लामी देश में औरत की स्थिति पैर की जूती की ही मानी जाती है।

शौक से या अपने मजे के लिए कोई महिला इस धंधे में नहीं आती। हालांकि कुछ लोग ऐसा मानते हैं—यह उनके अंदर की पशुता है। तुर्की की अभागी महिलाओं (वेश्याओं) को 'आवास, पेंशन की सुविधाएं—सरकार की तरफ से मिलेंगी ऐसी भलमनसाहत पहले मिल जाती तो वे सालों नरक क्यों भोगतीं। सोचिए, यह कितनी बड़ी क्रूरता है कि औरत की पूरी अस्मिता को एक सरकार ने उसके नाम से तौल दिया। यानी तुर्की की सरकार के हिसाब से वेश्याएं नाम बदल लेंगी तो उन्हें उनका सम्मान और सामाजिक हैसियत फिर से वापस मिल जाएगी! यदि कोई समाज किसी को नाम बदलने पर स्वीकार करता है तो

एक तरह से वह उस इतिहास से मुंह मोड़ता है, जिसका विश्लेषण कर उसे सबक लेना चाहिए।

औरत को वेश्यावृत्ति के रास्ते से हटाना और वेश्यावृत्ति को खत्म करना दो अलग-अलग बातें हैं। तुर्की की सरकार ने यह व्यवस्था बूढ़ी वेश्याओं के लिए की है, उसने उन नाबालिग लड़कियों और किशोरियों के लिए क्यों नहीं कुछ सोचा। जो जान नहीं पाती कि दुनिया में नरक के अलावा और भी कुछ होता है। यदि कोई समाजशास्त्री इस पूरी घटना को व्यापक परिप्रेक्ष्य देकर इसका अध्ययन करे, तभी पूरी बात सामने आ पाएगी कि यह किस दिमाग की उपज है। अपराधी नाम बदलकर इज्जत की जिंदगी जी लेते हैं, ऐसा सुना गया है, लेकिन यहां तो भुक्तभोगी को ही नाम बदलने को कहा जा रहा है और वह भी सरकार कह रही है।

मोटे तौर पर देखा जाए तो यह योजना पहली नजर में सभी को अच्छी लगती है कि वेश्याओं के लिए किसी ने सोचा तो। लेकिन किस तरह सोचा, क्या यह सोचना महत्वपूर्ण नहीं है। लकड़ी काटकर पेट भरने वाली आदिवासी महिला या मैला साफ करके दो जून रोटी खाने वाली औरत अपना नाम सोनिया गांधी रख ले तो क्या उसे वह इज्जत मिल जाएगी? तुर्की सरकार को सचमुच अगर वेश्याओं की मदद ही करनी है तो वह इसे फैक्टरी नियमों की तरह नहीं, समाजशास्त्रीय संवेदनाओं के साथ देखे। इज्जत वापस दिलाना महत्वपूर्ण नहीं, महत्वपूर्ण है इज्जत न जाने देना। इसी में किसी भी सरकार की इज्जत है, चाहे वह तुर्की की हो या भारत की।

।
त
ह
न
र
।
ह
न

५

।

‘औरत के बारे में’ धारावाहिक कुंठा

कुछ साल पहले तस्लीमा नसरीन ने बांग्लादेश के एक जाहिल कठमुल्ले ने निकाह करने का प्रस्ताव रखा था। आपको याद हो तो तस्लीमा ने निकाह के लिए हामी भरते हुए अपनी दस शर्तें रखी थीं। तस्लीमा की यह शर्तें विभिन्न संवाद समितियों ने दुनिया-भर में प्रसारित की थीं। इस्लाम के तमाम हदीसबाजों के मुंह से तब बोल नहीं फूटा था। कोई पुरुष पाठक है जिन्होंने ‘हंस’ के एक अंक में औरत के बारे में लिखते हुए नारियों को सलाह दे डाली है कि यदि उन्हें मादा होना नहीं रुचता तो वे अपना लिंग परिवर्तन करवा सकती हैं।

महिला के बारे में जहर उगलने में इस शख्स ने अपनी माँ के लिए दूध की पूरी ताकत लगा दी है। अकेले पिछले 5 सालों में 60 लाख से ज्यादा गर्भ इसलिए गिरवा दिए गए क्योंकि बापों ने अल्ट्रासाउंड स्क्रीनों पर पहले ही देख लिया था कि वे इस बार भी लड़का नहीं पैदा कर पा रहे हैं। इस जारी हत्याकांड के बावजूद इस हूस का मानना है कि भारत में स्त्री सम्मान यथायोग्य है। चुन-चुनकर इस पुरुष ने स्त्रियों के बारे में कुछ प्वाइंट जुटाए हैं। हालांकि इनमें से एक भी नया नहीं है, फिर भी मैं इन उठाए गए 12 प्वाइंट्स का स्पष्टीकरण देना चाहती हूँ। (इन्हें जवाब न समझें। विकृत दिमाग के लोगों को तर्क की बात समझ में आती होती तो क्या था?)

पहले और दूसरे प्वाइंट में कहा गया है कि स्त्री अत्याचार में स्त्रियाँ ही आगे हैं, बहुओं को सासों ही जलाती हैं। लेखक ने स्त्रियों को नीचा दिखाने के लिए इन दो बिंदुओं के समर्थन में टांट जुटाए हैं। एक लाइन में मैं यह कहना चाहती हूँ कि अपराधी की कोई जाति या लिंग नहीं होता। सुरसा, ताड़का से लेकर पूतना और आज की फूलन देवी तक—किसी महिला संगठन ने इनका सम्मान किया हो तो बताएं। तीसरे और चौथे नंबर के प्वाइंट में आरोप है कि स्त्री स्त्री को बस, रेल या ट्राम में सीट नहीं देती, छेड़खानी की शिकार हो रही लड़की की मदद स्त्रियाँ नहीं करतीं। इसके बारे में मैं यही कहूँगी कि लेखक में हिम्मत हो तो वह मेरे सामने किसी लड़की से बदतमीजी करने की जुरत करके

कभी भी जब इच्छा हो (अनुभव तो होगा ही) जवाब पा सकते हैं। स्त्री स्त्री की मदद न करती तो शायद आज स्त्री होती ही नहीं। स्त्रियां स्त्रियों की वाकई मदद करती हैं, दिखावा नहीं। पाचवे व छठे प्वाइंट में लेखक की कुंठा है कि स्त्रिया बनाव-ठनावपसंद होती हैं, दो घटे मेकअप करती हैं, उत्तेजक पोशाकें पहनती हैं। मेरा कहना है कि स्त्री पुरुष की जागीर नहीं है, उसके अपने सपने हैं और उसे अपने सपने साकार करने का पूरा हक है। उत्तेजक पोस्टरों पर महिला संगठन रोज कालिख पोतते हैं। पत्र-लेखक अपने मोतियाबिंद का इलाज करवाएं और इस नेक काम में मदद करें। पिछले दो साल से मैं ऐसी 10 घटनाएं गिनवा सकती हूं जिसमें दर्जनो राक्षसों ने स्त्रियों को निर्वस्त्र करके गांव और कस्बों में घटो घुमाया। लेखक को यह नहीं दिखा? केवल मेकअप करती स्त्रियां ही दिखीं।

सातवे प्वाइंट में लेखक की कुंठा एक बार फिर फूटी है। आठवे में कहा गया है कि स्वर्णाभूषण स्त्रियों की कमजोरी हैं। इस बचकाने आदमी को कौन बताए कि अकेले दिल्ली शहर में प्रतिदिन दो दर्जन ऐसी गरीब महिलाएं पुरुष अत्याचार का शिकार होती हैं, जिनके बदन पर सोना तो क्या, ढंग का कपड़ा भी नहीं होता। लेखक ने इसका जिक्र क्यों नहीं किया—पति पर विपत्ति आने पर सबसे पहले औरत अपने आभूषण ही उतारकर उसे बेचने के लिए देती है। नवे प्वाइंट में इसमें लिखा है कि लाखों ऐसे जोड़े हैं, जिनमें पुरुष एम.ए. है और स्त्रियां अंगूठाटेक। हां, ऐसा है और इसलिए है क्योंकि कोई पुरुष चाहता ही नहीं कि उसकी पत्नी पढ़े-लिखे और सोसायटी में उठने-बैठने लायक बने। इस काम के लिए हर पुरुष एक स्टेपनी चाहता है। जहां चाह है वहां आप वरिष्ठ कवि त्रिलोचन की पत्नी का उदाहरण ले सकते हैं, जो विवाह के समय अंगूठाटेक थीं और बाद में गलत उच्चारण के लिए त्रिलोचनजी को टोक देती थीं। जहां पत्नी ज्यादा पढ़ी-लिखी व कामकाजी होती है वहां प्रायः निठल्ले पति सिर्फ दारू पीते हैं।

दसवें प्वाइंट में इस सज्जन ने लाखों पुरुषों की दुहाई दी है, जो पत्नियों की वजह से अपनी मरजी से बनियान तक नहीं खरीद सकते। इस पर क्या कहूँ, मजबूरी है। पुरुष तो अपनी मरजी से पैदा भी नहीं हो सकते।

ग्यारहवां प्वाइंट लेखक की निजी कायरता है या तो आप अपने लिए मर्द शब्द का प्रयोग बंद करें या इस तरह की बेचारगी न व्यक्त करें। बारहवे प्वाइंट के बारे में मैं यही कहूंगी कि झगडा बाप-बेटे में भी होता है। कृपया इसका नारी

मुक्ति या नारा विमुक्ति से कोई संबंध न जोड़े।

औरत का शोषण नहीं हो रहा, वास्तव में तो उस पर जुल्म हो रहा है। लेखक की ये बातें भी क्या एक तरह का हमला नहीं हैं? इन जैसों को कौन बार-बार बताएगा कि इस देश में 5 लाख से ज्यादा नाबालिग बच्चियों में से प्रत्येक कोठों पर प्रतिदिन बाप की उमर के 15 पुरुषों को संतुष्ट कर रही है।

रेप सीन की रायल्टी

अपने साथ हुए जिस अत्याचार और अपमान का बदला लेने के लिए फूलन देवी ने 20 बेकसूरो को लाइन में खड़ा करके गोलियों से भून दिया था, उस अपमान को उसी फूलन ने 20 लाख रुपये में बेच दिया। खबर आपको मालूम ही होगी कि बी बी.सी. के चैनल फोर के लिए बनी 'बैडिट क्वीन' फिल्म के निर्माताओं से फूलन ने समझौता कर लिया—एक गंदा समझौता। जिसके चलते भारत को छोड़कर बाकी दुनिया-भर के दर्शक उन चार दृश्यों को चटखारे लेकर देख सकेंगे, जिन पर फूलन को आपत्ति है। फूलन ने अपनी आपत्ति के अधिकार कैंश करवा लिए हैं। लेकिन बैडिट क्वीन को शायद यह नहीं पता कि न मालूम कैसे इस फिल्म का पूरा का पूरा कैसेट भारतीय बाजारों में चोरी-छुपे उपलब्ध हो गया और इसमें वे चारो दृश्य हैं जिनको रुकवाने के लिए फूलन देवी कोर्ट गई थीं। फिल्म निर्देशक शेखर कपूर के अनुसार, फूलन के साथ बलात्कार के दृश्य कलात्मक ढंग से फिल्माए गए हैं, जबकि असलियत यह है कि यह दृश्य सुबह के शो में चलने वाली टाप 'ए' ग्रेड फिल्मों का भी मात देते हैं। निर्देशक शेखर कपूर की यह दलील कुछ वैसी ही है जैसे आम बबइया फिल्मों के भोदू निर्देशक घटिया फिल्म पत्रिकाओं को दिए इटरव्यू में कहते हैं कि उनकी आने वाली फलां फिल्म में मर्डर को खास एंगेल से फिल्माया गया है और इसके दर्जनों रि-टेक हुए हैं।

बलात्कार, हत्या या अत्याचार के दृश्यों में यदि अन्याय के प्रति गुस्सा नहीं फडकता तो वह कला नहीं, बल्कि एक तरह से कला का अपमान है। फूलन पर बनी फिल्म में निर्देशक ने एक अपराध को 'सेलेबल' बनाने में निश्चय ही बहुत मेहनत और बुद्धि का प्रयोग किया है। दिल्ली के सीरी फोर्ट में चुपके-चुपके इस फिल्म का एक शो चलाया गया था। इसमें चुने हुए खास लोगों को बुलाया गया था, लेकिन फूलन को इसकी कोई सूचना नहीं दी गई थी। तभी जाहिर हो गया था कि फिल्म निर्माताओं की नीयत साफ नहीं है और उन्हें फूलन और फूलन के साथ हुए अत्याचार या प्रतिशोध के वास्तविक कारणों से कोई लेना-देना नहीं

है। उन्हे तो किसी तरह इस हिट प्लॉट पर फिल्म बनाकर ऑस्कर झटकने थे। वकीलों की गुडिया फूलन फिल्म निर्माताओं की इस चाल को ताड़ गयी और एक बार लगा कि 'इल्यूजन और रियलटी' पर शायद एक बार फिर नये सिरे से सार्थक बहस शुरू हो सकेगी। कोर्ट ने फिल्म के आगामी प्रदर्शन पर रोक लगा दी। इस कंट्रोवर्सी के चलते फिल्म ऑस्कर के लिए नामांकन से रह गयी। फूलन की आपत्ति सौ प्रतिशत सही थी कि उस पर बनी फिल्म में उन दृश्यों को नहीं दिखाया जा सकता जो उसकी वास्तविक जिंदगी में नहीं थे। उदाहरण के लिए—उसने कहा कि वह कभी उस तरह से नहीं नहाई जिस तरह फिल्म के लंबे-लंबे स्नान दृश्य हैं—फिल्म में नहाती हुई फूलन कमर से ऊपर कोई कपड़ा नहीं पहने है। तमाम अखबारों ने (और उन्होंने भी जो शेखर कपूर की कला के प्रशंसक थे) फूलन की इस आपत्ति के समर्थन में सपादकीय टिप्पणियां छपीं।

माना गया कि कला यथार्थ से ऊपर कैसे जा सकती है। यदि इसी विषय का तर्ज पर आज कोई लड़की अत्याचार की शिकार हो, लेकिन वह फूलन की तरह बंदूक नहीं उठाए, तब क्या बी.बी.सी. का चैनल फोर उस पर फिल्म बनाने के लिए लाखों पाउंड खर्च करेगा? एक बार लगा कि बी.बी.सी. चैनल फोर अत्याचार की शिकार एक लड़की के साथ फिल्म में हुए अत्याचार पर पुनर्विचार करेगा, लेकिन उससे पहले फूलन ने पता नहीं किसी के दबाव में या अपनी मरजी से सौदा कर लिया। थोड़े दिन पहले फूलन ने एक इंटरव्यू में कहा था कि अब वह साउथ दिल्ली छोड़कर नोएडा या मयूर विहार जैसी सेकंड ग्रेड जगह रहने नहीं जाना चाहती। सौदे से मिले बीस लाख रुपये में फूलन अब बाकी जिंदगी साउथ दिल्ली में शान से रह सकती है। यह कहना थोड़ा ज्यादाती जरूर होगी कि साउथ दिल्ली में ऐसे ही लोग रहते हैं या रह सकते हैं!

हम सब इसके कायर गवाह हैं

मिस्र में 13 साल की एक बच्ची को सिर्फ इसलिए पीट-पीटकर मार डाला गया कि उसने गरमी से परेशान होकर सार्वजनिक स्थान पर चेहरे से बुर्का हटा लिया था। कट्टरपंथी मौलवी के आदेश पर यह सब हुआ पिछले साल। बांग्लादेश में भी प्रेम करने के आरोप में इतनी ही उम्र की एक किशोरी को मौलवी के आदेश पर गले तक मैदान में गाड़ दिया गया और उसके गड़े सिर पर चारों तरफ से भीड़ ने पत्थरों की बौछार की। सजा पूरी होने के बाद जब बच्ची के घरवालों ने उसे खोदकर निकाला तो घंटे-भर के भीतर ही उसने दम तोड़ दिया।

इस्लामी देशों में हर साल-छह महीने में कहीं न कहीं से ऐसी ही दिल दहला देने वाली वहशियाना हरकत की खबर आती है, जो बताती है कि इस्लामी देशों में महिलाओं की स्थिति क्या है? बल्कि इस्लामी देश ही क्यों, हम सिर्फ इस्लाम को ही ले सकते हैं। इससे करीब 4 महीने पहले बुलदशहर में एक मुसलमान मर्द ने अपनी बच्ची की बारात सिर्फ इसलिए वापस कर दी, क्योंकि दूल्हा चाहता था कि वीडियो फोटोग्राफी में दुल्हन की भी एक झलक आ जाए। लडकी के घरवालों ने इसे इस्लाम के खिलाफ बताकर दुल्हन की फोटो खिंचवाने से साफ इनकार कर दिया। जब दूल्हे ने दोबारा दबाव डाला तो उसकी पिटाई की गई, जिससे उसने शादी तोड़ दी।

मिस्र और बांग्लादेश की इन दो दिल दहला देने वाली घटनाओं ने वहां के रहने वालों को नहीं झकझोरा, बल्कि थोड़े दिन पहले अखबारों में एक फोटो छपा था जिसमें महिलाओं को एक मैदान में कोड़े मारे जा रहे थे और चारों तरफ खड़ी हजारों की भीड़ तालियां बजा रही थी। इस्लामी देश के अंगूठाछाप मौलवी कुरान और हदीस के अनुसार एकतरफा न्याय करते हैं। औरत अगर अपने हक में कोई बयान देना चाहे तो वह चादर की आड़ में या बुर्के के अंदर से ही एक बार में अपनी बात कह सकती है। बस, इसके बाद जंगली तर्ज पर फैसला सुना दिया जाता है। तमाम मानवाधिकार संगठनों द्वारा मिस्र और बांग्लादेश में महिलाओं के साथ हुई इस क्रूरता के मामले उठाए गए तब पुलिस ने उनके खिलाफ सिर्फ

रिपोर्ट दर्ज की है।

तस्लीमा ने 'औरत के हक में' हदीस के बारे में लिखा है— मुझे विश्वास नहीं हुआ कि इस सभ्य युग में भी मुद्रित अक्षरों में नारी के प्रति इस तरह के कुविचार ऐसे मर्यादाहीन रूप में प्रचारित हो रहे हैं और इस तरह के अन्याय को समाज आदरपूर्वक ग्रहण करता है। समाज के सज्जन व्यक्ति चरम और परम निष्ठा के साथ सारी धार्मिक बर्बरता का पालन भी करते हैं। हदीस में लिखा है कि यदि स्त्री पति की बात तुरत नहीं मानती है तो ऐसी स्त्री की सामान्य तौर पर पिटाई करो।

अभी थोड़े दिनों पहले पाकिस्तान में 12 वर्ष के ईसाई बालक और उसके चाचा को दीवारों पर कुछ इस्लाम विरोधी लिखने पर फांसी की सजा सुनाई गई थी। इस मुकदमे में बचाव पक्ष की वकील अस्मा जहांगीर, जिन्हें हाल ही में मैगसेसे अवार्ड मिला है, कहती हैं— स्त्रियों या अल्पसंख्यकों को पाकिस्तान में जानवरों से बदतर जीवन जीना पड़ रहा है। एमनेस्टी इंटरनेशनल ने भी तमाम उदाहरणों और तथ्यों के आधार पर अपनी एक रिपोर्ट में कहा है कि इस्लाम धर्म हिंसा को बढ़ावा देता है और क्रूरता इसके मूल में है। बी बी सी ने थोड़े दिन पहले पाकिस्तान के मदरसों के बारे में एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म दिखाई थी, जिसमें बच्चों के पैरों में बेड़ियां पड़ी थीं। पूछने पर बच्चों के अभिभावकों ने बताया कि हमने बच्चों को मदरसे में इसलिए डाला है कि कुरान सीख जाएगा तो कहीं सौ-डेढ़ सौ रुपये का मौलवी हो जाएगा। सोचने की बात तो यह है कि जो बच्चा बचपन में बेड़ी डालकर पढ़ाया-लिखाया गया है, वह दया और करुणा की शिक्षा खाक देगा! किसी फैसले में हम उस मौलवी से विवेकपूर्ण न्याय की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं?

महिलाओं के खिलाफ यह हिंसा भारत में भी लगातार बढ़ रही है। कई ग्राम पंचायतों में प्रेम-विवाह के मामले में सार्वजनिक तौर पर प्रेमी जोड़े को फांसी पर लटका दिया। कोई ऐसा दिन नहीं बीतता जब देश में कहीं न कहीं किसी औरत को नंगा करके घुमाया जाता हो। बल्कि यहां तो हम अंगूठाछाप को भी दोष नहीं दे सकते। सांसद, मजिस्ट्रेट, प्रिंसिपल आदि इसमें शामिल हैं। यह एक सच है कि युद्ध या अराजकता का पहला शिकार महिला ही होती है। लेकिन आजाद लोकतांत्रिक व्यवस्था में ऐसी स्थिति क्यों है?

जाने-माने लेखक और आलोचक सुधीश पचौरी ने अपने एक लेख में लिखा है कि तंदूर कांड एक तरह का हत्या कर्म नहीं बल्कि कला कर्म बन गया

हे। अखबारों में खबर है कि तंदूर कांड का अभियुक्त सुशील शर्मा अदालत में हँसता-मुसकराता रहा।

लेनिन ने कहा था— ममतामयी माताओं की तरह दबी आवाज में कहने से बात नहीं बनेगी। ऊँची आवाज में बात करनी होगी, योद्धाओं की तरह साफ-साफ कहो, दिखा दो कि आप लोग भी लड़ सकती हैं।

लेकिन कब?

औरतों के दर्द पर खामोश संस्थाएं

औरतों के प्रति चला आ रहा भेदभावपूर्ण रवैया और उनके प्रति की जाने वाली हिंसा के बीच जबरदस्ती संबंध है। सारी दुनिया में महिलाओं के प्रति दूसरे दर्जे के नागरिक की तरह किया जाने वाला बर्ताव ही उनके प्रति होने वाली हिंसा को बढ़ावा देता है और इस हिंसा ने उन्हें इतना लाचार बना दिया है कि वे अपने प्रति होने वाले इस दुर्व्यवहार का विरोध भी नहीं कर पातीं। यदि इस घृणित परंपरा को अब भी जड़ से उखाड़ फेंकने की कोशिश न की गई तो संभवतः कभी न खत्म होने वाली यह शृंखला यूँ ही रह जाएगी।

‘ह्यूमन राइट्स वाच’ के एक अग ‘वूमेस राइट्स प्रोजेक्ट’ के कार्यकारी सह-निदेशक रीगेन राल्फ ने अपने हालिया निष्कर्षों के दौरान बहुत दुःखी मन से यह स्वीकार किया। जैसा कि पिछले कई सालों से यह उम्मीद की जा रही थी कि सामाजिक प्रगति के समानांतर महिलाओं के विकास में भी तेजी आएगी, वह अब मृतप्राय जान पड़ती है। खोखले विचारों, रूढ़िवादी परंपराओं और सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर लगातार सैकड़ों वर्षों से महिलाओं का शारीरिक, मानसिक और अब आर्थिक शोषण भी चालू है, तमाम सरकारी दावों, अंतरराष्ट्रीय घोषणाओं और बड़े-बड़े संगठनों की योजनाओं के बावजूद महिलाओं के प्रति हिंसा में दिनोंदिन बढ़ोत्तरी होती जा रही है।

औरतों के प्रति यह बर्बर व्यवहार दुनिया के कुछेक देशों में ही नहीं, बल्कि 100 प्रतिशत यानी सभी देशों में बच्चियों और महिलाओं के प्रति पाशविक और जघन्य व्यवहार हर दिन किया जाता है, वह भी सिर्फ इसलिए कि वे मादा हैं। थाईलैंड जैसे देश में मां-बाप हजारों की संख्या में अपनी 10-12 साल की बच्चियां बैंकाक के वेश्यालयों में बंध देते हैं। कुछ संवेदनशील मां-बाप यदि सामाजिक दबावों या प्रेमवश बच्चियों को बेचने से कतराते हैं तो उनके साथ इससे भी भयानक हादसे हो जाया करते हैं, भारी तादाद में यहां की लड़कियां फैलती ‘सेक्स इंडस्ट्री’ के लिए अगवा कर ली जाती हैं। इनमें प्रायः सेक्स का मजा लूटने के लिए लड़कियां खासतौर से बनाए गए बिस्तरों पर

बधक बना दी जाती है, कुछेक को तो वर्षों तक तालों में तब तक बद करके रखा जाता है जब तक वे शारीरिक रूप से प्रयोग के काबिल ही न रह जाए या बहुत बीमार व जर्जर न हो जाएं। लड़कियों को पकड़कर जबरदस्ती वेश्यावृत्ति का धधा करवाने वाले हजारों दलाल इन बच्चियों की जिंदगी तो तबाह कर रहे हैं, साथ ही ये एड्स जैसे भयानक रोग भी तेजी से फैला रहे हैं। थाई महिलाओं के लिए काम करने वाली एक अमरीकन स्वयंसेवी संस्था ने अपने सर्वेक्षण के दौरान पाया— 70 प्रतिशत यौन व्यापार में लिप्त महिलाएं एच आई वी वायरस से प्रभावित थीं। इन औरतों के लिए अब तक तो वहां कोई भी गंभीर कदम उठाया गया है और न ही महिलाओं के लिए चीखने-चिल्लाने वाली अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं ही मुंह खोल रही हैं।

महिलाओं और पुरुषों के बीच गड़बड़ाते अनुपात ने निःसंदेह महिलाओं की स्थिति और बदतर कर दी है। जन्म से पहले ही मादा भ्रूण पर आक्रमण हमारे देश में ही नहीं, बल्कि तमाम इस्लामी देशों में छाया हुआ है। कराची की एक स्वयंसेवी संस्था 'ईदी फाउंडेशन' के अनुसार, पाकिस्तान में किए जाने वाले गर्भपातों में 99 प्रतिशत मादा भ्रूण होते हैं। महिला-पुरुष के इस असंतुलित अनुपात का ही कारण है महिलाओं का शारीरिक शोषण। चीन जैसे देश में प्रति तीन पुरुष मात्र दो स्त्रियां ही आती हैं, इसी का नतीजा है कि वहां नवयौवनाओं के अपहरण तेजी से बढ़े हैं। इनमें से कुछ तो सेक्स इंडस्ट्री के लिए ले जायी जाती हैं, जबकि कुछ लड़कियां हमारे यहां बिहार की तरह 'पकड़उआ विवाह' की त्रासदी झेलने को मजबूर की जाती हैं। विज्ञान और तकनीक में अव्वल जापान महिलाओं के उत्पीड़न में भी अव्वल है। जापानी लड़कियों के साथ खासतौर पर कामकाजी लड़कियों के साथ उनके कामवाली जगह पर पाशविक बरताव किया जाना आम हो चला है। जापानी समाज ने इस सेक्सुअल उत्पीड़न को 'शेकूहारा' नाम तक दे दिया है। इसका एक नमूना है वहां के बार में लड़कियों को अर्धनग्न कपड़े पहनने पर मजबूर करना। 'शेकूहारा' को कंपनी मालिक यह कहकर विज्ञापित करते हैं— 'जो आप दफ्तर में नहीं कर सकते, वह यहां करें' आर्थिक रूप से तंग महिलाओं के पास मजबूरन शेकूहारा बनने के लिए सिवा कोई चारा ही नहीं है, जरा भी ना-नुकुर करने पर उन्हें तुरंत नौकरी से हाथ धोना पड़ता है।

चीन, जापान, थाईलैंड, बैंकाक, पाकिस्तान समेत हमारे देश में भी औरतों का यौन शोषण रबड़ की तरह खिंचता जा रहा है। कभी-कभार इनके विरोध के स्वर गूंज जाते हैं, तो कभी कोई अखबार या पत्रिका अपनी कवर स्टोरी बना लेती

है। ज्यादा हुआ तो इन पर एकाध डाक्यूमेट्री या आर्ट फिल्म टाइप की चीजें बन जाती हैं। चर्चाएं होती हैं, परंतु केवल एकाध दिन या कुछ मिनट बस! जानबूझकर सेक्स इंडस्ट्री में उतरी महिला हो या जबरदस्ती, मजबूरीवश धकियाई गई हो, उसके साथ समाज का सलूक हमेशा एक-सा होता है। कोई उनके दुःख, समस्याओं, आवश्यकताओं और दर्द को समझता नहीं और न समझना ही चाहता है।

औरतों को बंदूकें थमाएंगे क्या?

‘क्या रेल दुर्घटना रोकने के लिए ऐसा कानून बनाया जा सकता है कि अमुक तारीख से देश-भर में सारी रेलगाड़ियां दस किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से सावधानीपूर्वक जाएंगी?’— यह कहना है एक महिला कानूनविद् का सरकार के उस संशोधित कानून पर, जिसे महिलाओं के साथ अत्याचार रोकने की दृष्टि से तैयार किया गया है। महिलाओं के साथ अपराध रोकने के नए विधेयक में सरकार ने प्रावधान किया है कि अब सूरज डूबने के बाद से लेकर सूरज उगने तक के बीच में किसी महिला को थाने नहीं ले जाया जा सकता।

महिला अधिकारियों की तरफदारी करती कोई संस्था यह कभी नहीं मान कर चलती कि महिलाएं दूध की धोई ही हैं। तमाम तरह के आर्थिक अपराधों, अश्लील विज्ञापनों, अवैध (शारीरिक) धंधों में जुटी महिलाओं ने ही महिलाओं की लड़ाई को सबसे ज्यादा क्षति पहुंचाई है और पहुंचा रही हैं। पुलिस ने बाकायदा इसके लिए अलग से चुने हुए शहरों में महिला पुलिस थाने खोल रखे हैं। तब किसी महिला को महिला थाने में पूछताछ के लिए क्यों नहीं ले जाया जा सकता?

महाराष्ट्र की राज्य सरकार इसी तरह के एक कानून पर विचार कर रही है जिसका मुंबई के महिला संगठनों ने विरोध किया है। महाराष्ट्र सरकार चाहती है कि रात में 8 बजे के बाद महिलाएं काम न करें और घरों में कैद हो जाएं। मुंबई को एक जागता शहर माना जाता है और सच तो यह है कि वहां तमाम अंडरवर्ल्ड का जाल हाने के बावजूद महिलाएं अपनी सुरक्षा के लिए चिंतित नहीं हुईं। छेड़खानी की वैसे तो कोई घटना मुंबई में होती ही नहीं और यदि कहीं एकाध ऐसी घटना हुई भी तो जनता ही छेड़ने वाले का हिसाब कर देती है।

दरअसल अंधेरे का डर दिखाकर महिला के हक में (या उसके खिलाफ भी) कोई भी कानून उसके आत्मविश्वास को कमजोर करता है। केंद्रीय सरकार की तमाम सेवाओं में महिलाओं की नियुक्तियां इसीलिए वर्जित हैं कि अधिकांश सरकारी सेवाएं रात-दिन चलती हैं। रेलवे में आज भी ड्राइवर या गार्ड के पद

पर महिलाओं को इसलिए नहीं लिए जाने का बहाना दिखाया जाता है कि नाइट-ड्यूटी में वे सुरक्षित नहीं हैं, जबकि यह सरासर झूठ और आतार्किक है। जिस नाइट ट्रेन में सैकड़ों महिलाएं अकेले सफर करती हैं, उसमें एक महिला गार्ड असुरक्षित कैसे होगी?

यहां माननीय सुप्रीम कोर्ट के उस फैसले का जिक्र अप्रासांगिक न होगा जिसमें योग्य न्यायाधीशों ने दो बलात्कारियों की सजा कम करते हुए तर्क पेश किया था कि 'महिला अकेली होगी तो उसके साथ कामेच्छा का उमड़ आना प्राकृतिक क्रिया है।' सुप्रीम कोर्ट की ही एक महिला वकील ने इसके प्रतिवाद में कहा कि यदि बाप-बेटी एक कमरे में रह रहे हों और यही प्राकृतिक सत्य उन पर लागू हो, तब समाज का क्या होगा? यानी यदि हम अपनी मां-बहन-बेटियों के प्रति सम्मान और आशीर्वाद की भावना नहीं रखते तो इस तरह के कानून महिलाओं को और निर्बल बनाते हैं।

एक सवाल यह उठता है कि क्या घरों में महिलाएं सुरक्षित हैं? संसद में केंद्रीय गृहमंत्री और केंद्रीय गृहराज्य मंत्री के दिए आंकड़ों के अनुसार, महिलाओं के साथ हुए अत्याचारों का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि महिलाओं के साथ 50 प्रतिशत अपराध घरों के भीतर हुए।

मनमोहन सिंह के ग्लोबलाइजेशन ने नारी के सम्मान को सबसे ज्यादा ठेस पहुंचाई। नोएडा में कुछ साल पहले एक लड़की ने अखबारवालों से कहा था कि पिता की अचानक मौत के बाद अपनी और अपने छोटे भाई की शिक्षा जारी रखने के लिए उसने 8-9 महीनों में 67-68 जगह नौकरी ज्वाइन की और ज्वाइन करने के दो दिन से लेकर दस दिन के बीच छोड़ दी। वजह वही कि हर जगह उससे एक ही उम्मीद की गई। लड़की ने बताया था कि वह हरकत या चेष्टा करने वाले लगभग सारे लोग कंपनियों के मालिक या मैनेजर थे। लड़की ने अपना नाम भी सार्वजनिक किया था। एक योग्य, स्वाभिमानी, समस्याग्रस्त लड़की का यह बयान पूरे समाज पर थप्पड़ था, जिसके निशान आज भी मौजूद हैं।

इलाहाबाद के पास गांव में तेरह-चौदह लोगों ने मिलकर कमजोर वर्ग की एक अधेड़ औरत को नंगा करके गांव की गलियों में घुमाया। घुमाते समय वे अत्याचारी एक स्कूल के बगल से भी गुजरे थे। बाद में जब इसी स्कूल में लड़कों को पढ़ा रहे अध्यापक से यह पूछा गया कि आपने ऐसा होते हुए देखा? अध्यापक का जवाब था—हां, देखा था। इस पर जब उससे पूछा गया कि यहां

डेढ़ सौ लडके थे, आपने मिलकर उस औरत की रक्षा क्यों नहीं की? तो अध्यापक का जवाब था—उन गुंडों से सारा गांव थरता है। उनसे मैं भला क्यों उलझता। अध्यापक के इस जवाब से क्या निष्कर्ष निकलता है? यही कि सरकार हर गांव में एक थाना बनाए या हर औरत को एक बंदूक दे! क्या यह संभव है? और क्या भविष्य में ऐसा ही होने वाला है?

।
।
।
।
।
।
।
।
।
।

बलात्कारी को बचाते सांसद

संसद के मई '95 के दो अधिवेशनों में दोनों सदनों में आधा दर्जन से ज्यादा बार एकमत से यह माग उठी कि महिलाओं के साथ हो रहे अत्याचारों, कम से कम बलात्कार के मामलों में सजा को और कड़ा किया जाए। सभी सदस्यों ने एक स्वर में इसका समर्थन भी किया, लेकिन सरकार की प्राथमिकता में यह विषय कहीं नहीं रहा। तब के गृहमंत्री चव्हाण ने बताया कि इस साल के पहले चार महीनों में नाबालिग बच्चियों से बलात्कार के 73 मामले दर्ज हुए, लेकिन इनमें से एक भी मामले में अपराधी को कोई सजा नहीं हुई।

संसद में आने वाले विधेयकों में, गौर करें तो, हम पाते हैं कि सारे विषय वोट बैंक से जुड़े रहते हैं और यह एक कड़ी सच्चाई है कि नाबालिग बच्चियों का कोई मताधिकार नहीं होता। वरना किसी भी प्राथमिकता से देखें तो नाबालिग बच्चियों से बलात्कारी को रोकना सामने लगी आग बुझाने जैसा प्राथमिकता का विषय है। संसद में कई महिला संसदों ने अपने क्षेत्र में ट्रेन रोकने के लिए या अपने ईगो के चलते सदन में धरने, प्रदर्शन तथा इस्तीफे तक दे डाले, लेकिन इस क्रूरतम विषय को चर्चा के स्तर पर इसी तरह उठाया जैसे चीनी के भाव बढ़ जाने के मामले उठाए जाते हैं।

मुंबई की एक संस्था के पास दस ऐसे मामलों का रिकार्ड है जिनमें देश के विभिन्न न्यायालयों में बलात्कार के मामलों में अपराधी की सजा घटा दी गई या उसे इसलिए बाइज्जत बरी कर दिया गया कि बलात्कारी के लिए सजा का वर्तमान कानून इतना ढीला-ढाला है कि डेढ़ दो साल तक चली सुनवाई में भी अपराध सिद्ध नहीं किया जा सका।

ऐसे मामलों में प्रतिवादी अच्छा वकील करके भुक्तभोगी लड़की पर चरित्रहीनता का आरोप मढ़ते हैं और उस पर गंदी जिरह करते हैं। नब्बे प्रतिशत मामलों में परिवारवाले सामाजिक प्रतिष्ठा के चलते टूट जाते हैं। स्वयं माननीय सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक फैसले में दो बलात्कारी युवकों की सजा घटाते हुए कहा कि गलत करने की उनकी नीयत नहीं थी, वे लड़की को देखकर प्राकृतिक

कामेच्छा का शिकार हो गए।

कहने का मतलब यह है कि एक सजा जिससे हजारों गलत करने की इच्छा रखने वाले सहम जाएं, बजाए इसके एक सुनवाई फेल हो जाने पर ऐसे लोगो का हौसला और बढ़ जाता है। सरकारी स्तर पर बलात्कार की शिकार लड़की को कैश मुआवजा दिया जाना तो और भी भयानक है। ऐसी तमाम घटनाएँ हुईं जिनमें पीडित महिला को बतौर राहत मुआवजा दिया गया। इससे भयानक क्या हो सकता है कि मध्य प्रदेश के एक मंत्री ने एक लड़की के बारे में यह बयान दे डाला कि यदि उसके साथ दो बार बलात्कार हुआ है तो हम दो बार मुआवजा देंगे।

यह दुःखद है कि बलात्कार के कानूनों में ढिलाई के चलते सरकार से अब माग की गई है कि वह नाबालिग बच्चियों के साथ बलात्कार के कानून को कड़ा करे। बलात्कार में नाबालिग या बालिग का मतलब है—यह मान लिया गया कि नाबालिग बच्ची के साथ ऐसे हादसे के लिए बच्ची को दोषी नहीं ठहराया जा सकता (अर्थ यह है कि बालिग स्त्री के बलात्कार में महिला का भी हाथ होता है)?

वर्ष 1993 में 224 और 1992 में 181 नाबालिग बच्चियों के साथ कुकर्म के मामले पुलिस ने दर्ज किए। पिछले 4 साल के ऐसी 703 बर्बरताओं में ज्यादातर बच्चियाँ जान से गईं। बाकी सभी मामले डॉक्टरों की जांच में सिद्ध हो गए, लेकिन यदि याद किया जाए कि कोई ऐसी खबर छपी हो कि किसी अपराधी को आजीवन कारावास हुआ हो?

अभी हमारे यहां बलात्कार की अधिकतम सजा 7 साल है। महिला शरीर से छेड़छाड़, गुप्तांग में सरिया, लाठी आदि डाल देना भारतीय अपराध दंड संहिता में बलात्कार नहीं माना जाता है।

कोई आपको चाय में नींद की एक गोली दे दे तो हत्या का मामला दर्ज हो सकता है, लेकिन महिला के साथ ऐसी जघन्य हरकतें इस श्रेणी में नहीं दर्ज हो सकती। रहे-सहे कानून का दुरुपयोग स्वार्थी महिलाओं ने अपने हितों के लिए भी किया। इससे भी समाज का भरोसा उठा।

किसी को व्यक्तिगत रूप से न्याय दिलाने की अपेक्षा कोई फैसला समाज के लिए नज़ीर बनता है। इसी को ध्यान में रखकर रस्में प्रमुख महिला संगठनों, महिला आयोग, महिला न्यायविदों, बुद्धिजीवियों, मानवाधिकार आयोग और पुराने फैसलों में कानूनी कोताहियों के सहारे बच निकले अपराधियों के मामलों का

रिकार्ड इकट्ठा कर सरकार सभी राजनीतिक दलों की एक बैठक शीघ्र बुलाए, उसका एजेन्डा वितरित करे, ताकि अगले मानसून सत्र तक इस पर संसद में बहस शुरू हो जाए। जरूरी हो तो ऐसे अपराधों में खुली सुनवाई के लिए विशेष अदालतें बनवानी पड़े तो बनवाई जाएं। भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी जैसी विकृतियों से एक बार लंबे समय तक लड़ा जा सकता है, लेकिन भेड़ियों से नहीं। भेड़ियों से हमें आर-पार की लड़ाई ही लड़नी होगी।

सैवी और मधु सप्रे

महिलाओं के अधिकारों की सबसे ज्यादा वकालत करने वाली पत्रिका 'सैवी' ने अपने अगस्त '95 अंक में मधु सप्रे और मिलिंद सोमन का वह अश्लील चित्र फिर से छापा, जिसमें एक अंतरराष्ट्रीय फेम की जूता कंपनी के विज्ञापन के लिए दोनों ने न सिर्फ अपने नंगे फोटो खिंचवाए हैं, बल्कि वे बेहद अश्लील मुद्रा में एक दूसरे से चिपटे खड़े हैं।

चित्र के साथ छोटा-सा कैप्शन भी है, जो एक तरह की मीठी चुटकी है, जिससे कहीं नहीं लगता कि पत्रिका इस अश्लील और समाज पर बेहद बुरा असर डालने वाले विज्ञापन के खिलाफ है। यह परिपाटी इंग्लैंड के मीडिया की देन है जिसमें 'च्च्-च्च् इतना गंदा', 'इतना भयानक', 'शेम-शेम' लिखते और कहते हुए प्रतिबंधित चित्रों या पत्रों को बार-बार छापा जाता है। इससे आलोचना के बहाने गंदी चीजें लगातार बाजार का फायदा उठाती रहती हैं। उम्मीद की जा रही थी कि नए अंक में शायद यह पत्रिका इस विज्ञापनी अश्लीलता को मुद्दा बनाकर देश की जानी-मानी महिलाओं के साथ इस पर चर्चा करेगी, लेकिन वह स्वयं इस विज्ञापन की चस्केबाजी में शामिल हो गई है।

संसद में और तमाम मंचों से महिलाओं के लिए बड़ी-बड़ी बातें करने वाली सुषमा स्वराज इस अंक की कवर स्टोरी में हैं और उन्होंने भी इस पर कोई आपत्ति नहीं की। विश्वसुंदरी प्रतियोगिता में पहले और दूसरे स्थान के लिए सिर्फ दो लड़कियों के बीच सवाल सेशन हुआ था। उनमें एक मधु सप्रे थी। दूसरी कोलंबिया की लड़की थी। सवाल था कि यदि आपको एक दिन के लिए आपके देश का प्रधानमंत्री बना दिया जाए तो आप क्या करेगी। वैसे इस समय पूछे जाने वाले सवाल व उनके जवाब दोनों ही डिप्लोमेटिक होते हैं, लेकिन मधु सप्रे ने लीक से हटकर चौकाने वाला जवाब दिया था। सप्रे का जवाब था—यदि मैं देश की प्रधानमंत्री बना दी जाऊँ तो अपने देश में स्टेडियमों का निर्माण करवाऊंगी, खेलों और खिलाड़ियों के लिए नई योजनाएं बनाऊंगी, क्योंकि मेरा देश बाकी क्षेत्रों में तरक्की कर रहा है, पर खेलों में दुनिया में बहुत पीछे है। मधु सप्रे का

जवाब इतना अजीब था कि वहा बैठे लोग हँसने लगे। एक मिनट बाद नतीजा सामने आया और जीतते-जीतते मधु सप्रे मिस यूनिवर्स रनर-अप होकर रह गई। भारत लौटने पर भी मधु का जवाब मीडिया में चर्चा का विषय बना रहा। बहुत सारे लोगो का कहना था कि मधु को ऐसा बचकाना जवाब नहीं देना था। यह मजाक ही है कि आपको देश का प्रधानमंत्री बना दिया जाए और आप सिर्फ खेलों पर ध्यान दें। लेकिन बहुत सारे अन्य लोगो का यह भी मानना था कि मधु का जवाब दिमाग से नहीं, दिल से था। उसने इस बात की परवाह किए बिना कि जूरी के सदस्य उसके जवाब की क्या रैंकिंग करेंगे, सचमुच देश से प्यार करने और देश का मान बढ़ाने वाला जवाब दिया। यह सही बात है कि तमाम तरक्की के बावजूद हमारा देश खेलों में बहुत पिछड़ा है। मधु का जवाब तात्कालिक तौर पर भले ही बचकाना या सतही रहा हो, लेकिन वास्तव में वह मिस यूनिवर्स के ताज के स्वार्थ से नहीं जुड़ा था।

इस दौरान सौंदर्य प्रतियोगिताओं में बहुत कुछ हुआ। सुष्मिता सेन से लेकर ऐश्वर्या राय तक बनावटी जवाब देकर देश-दुनिया में छा गई, लेकिन मधु के साथ ढेरो लोगों की सहानुभूति बनी रही। उसी मधु सप्रे ने निर्लज्जता से स्वार्थ के लिए वह सब कर डाला जो आज तक किसी स्वाभिमानी, सम्मानित और समझदार लड़की ने कभी नहीं किया। अश्लील चित्र खिंचवाने के बारे में सप्रे के दुधमुंहे तर्क सामने आ चुके हैं। एक बड़ा पश्चिम-परस्त खोखला आधुनिक वर्ग उसके साथ भी हो गया है जो यह कहता है कि मधु के साथ उस लड़के की शादी होने वाली है।

इस अपराध की सीधी सजा तो यह है कि दोनों का मुंह काला करके गधे पर बैठाकर उसी हालत में सड़कों पर घुमाया जाए, लेकिन ऐसा होगा नहीं, क्योंकि ऐसी सजा गांव या कस्बों में पुलिस जाहिल अपराधियों को देती है! मधु और सोमन पढ़े-लिखे हैं, इसलिए वे पुलिस पूछताछ के दौरान भी अपने माता-पिता के साथ आए थे और गलबहियां डाले थे। अश्लील विज्ञापन छापने वाली पत्रिकाएं भी सिर्फ मुंबई में जप्त की गई, दिल्ली और बाकी शहरों में ये पत्रिकाएं खुलेआम और ब्लैक में बिकीं।

‘फेंटेसी’ और ‘डेवोनियर’ पत्रिका के मालिक-संपादक जेल भेजे गए, लेकिन विज्ञापन तैयार करने वाली विज्ञापन एजेंसी का मालिक पूरी शान से बाहर है और अपनी इस अश्लील कारस्तानी के पक्ष में सबूत जुटा रहा है। विधानसभा में भारतीय संस्कृति के मूल्यों की रक्षा करने वाली भाजपा, शिवसेना सरकार के

मंत्री ने उत्तेजित सदस्यों को आश्वासन दिया था कि दोषी व्यक्तियों के खिलाफ कड़ी से कड़ी कार्यवाही की जाएगी, लेकिन हुआ क्या? जगह-जगह यह विज्ञापन फिर से छपा। 'सैवी' पत्रिका भी मुंबई से निकलती है। उसमें वह विज्ञापन दोबारा छपा तो फिर मुंबई में ये अश्लील विज्ञापन छापने वाली पत्रिकाएँ सील करने का क्या मतलब था?

।
प्र
ह
प्र
र
।
ह
न

प्र

।

क्यों 'जायज' है यह सजा?

बिहार के नवादा जिले के एक गांव सिंधाना में एक औरत के साथ तीन मुस्टंडो ने बलात्कार किया और अपना गुनाह ढांपने के लिए उस औरत को गंडासे से काटकर फेंक दिया। ऐसी घटनाएं चूँकि हमारे समाज में आम हो चुकी हैं, इसलिए अब इनसे जल्दी कोई सिहरन नहीं पैदा होती। लेकिन सिंधाना गांववालों ने शिकार बनाई गई इस औरत के अपमान का जबरदस्त बदला लेकर अपना क्रोध जताया। बताया जाता है कि नाराज गांववालों ने बलात्कारियों के घर पर हमला कर, तीनों को घसीटकर बाहर निकाला और पीट-पीटकर अधमरा कर दिया। उत्तेजित भीड़ ने तीनों बलात्कारियों की आखें तक निकाल ली। बाद में इनमें से एक बलात्कारी की मौत भी हो गई। यह सच है कि यह घटना वीथत्स है व गांववालों के बदले के इस तरीके से रोंगटे खड़े हो गए। लेकिन ऐसा क्यों होता है कि कोई भी अकेली औरत इस सभ्य समाज में सुरक्षित जीवन की उम्मीद नहीं रख सकती। औरत चाहे महानगरीय जीवन जी रही हो या बीहड़ गांव में घास छील रही हो, उसे हमेशा मर्दाने आक्रमण के प्रति सतर्क रहना पड़ता है।

मनोज, मणिकांत, मृत्युंजय (तीनों चौधरी) चुन्नी देवी को खेत में अकेला काम करते देख क्यों अपनी वासना का शिकार बनाने की हिम्मत जुटा पाए? इसका एकमात्र उत्तर है कि इस समाज, परिवार, आस-पड़ोस किसी के प्रति वे स्वयं को जिम्मेदार नहीं समझते और उनके लिए एक अकेली औरत केवल देह है। संस्कार, परंपराओं और झूठी मान-मर्यादा के नाम का चोला ओढ़े यही असामाजिक लोग अपने कुकृत्यों को छिपाने के लिए—पहले बलात्कार करते हैं उसके बाद घबराहट में शिकार औरत को जान से मार डालते हैं।

हालांकि प्रशासन का दावा है कि ग्रामीणों का गुस्सा केवल औरत पर किए गए प्रतिघात का नहीं था, बल्कि यह जातीय कारणों से भड़का। चूँकि बलात्कारी अनुसूचित जाति के थे व पीड़ित औरत यादव परिवार से आती थी, इसीलिए यादवबहुल ग्रामवासी भड़क गए और बलात्कारियों पर बरस पड़े। गांव-कस्बों और कुछ निचली जातियों में तो बदले की भावना से एक-दूसरे की औरतों को

बलात्कार का शिकार बनाया जाना परंपरा की तरह पनपा है। जब दो समुदाय या दो जातियाँ एक-दूसरे को नीचा दिखाने में लगभग हताश हो चुकती हैं तो वे बाहुबल से औरत की अस्मिता से खिलवाड़ करने में उतर आती हैं, क्योंकि उनके लिए यह आसान और सुलभ तरीका है।

बलात्कारियों से बदला लेने के इस तरीके का स्वागत करना हालांकि असभ्यता कहलाया जाना चाहिए मगर, क्या बलात्कार को सभ्यता के दायरे में रखा जा सकता है? बलात्कारी जिस तरह खुलेआम सीना फुलाए घूमते-फिरते हैं उससे यह कल्पना तो नहीं की जा सकती थी कि उक्त तीनों दरिदों को तुरत-फुरत पकड़कर सजा दिलवाई जा सकेगी। लंबी न्यायिक प्रक्रिया से ऊबे लोगों की भावनाओं को काबू करना अब कठिन होता जा रहा है। यही नहीं, न्याय-प्रक्रिया की जटिलता भी आम आदमी के दिमाग में उदासीनता पैठाती जा रही है। अगर कोई औरत अकेले में, सुनसान इलाके में या ऐसी जगह जहाँ से औरत की चीखे भी किसी कान तक न पहुँच पाएँ, मर्दानगी का शिकार बनाई जाती है तो उसे यह प्रमाणित करने के लिए भी बार-बार मानसिक बलात्कार से गुजरना पड़ता है। कभी पुलिस, तो कभी वकील या अदालत द्वारा पूछे गए अनाप-शनाप सवाल उस पीड़ित औरत को मानसिक रूप से दिवालिया तक कर डालते हैं। उस पर भी न्याय मिलने में 5-7-10 साल लगना मामूली बात है। यानी 15 साल की औरत के साथ यदि यह भयानक क्षुद्रता की गई तो न्याय पाते-पाते वह 30-35 की हो जाती है। उस पर हो सकता है, माननीय न्यायाधीश महोदय बलात्कारी के पक्ष में फैसला दे दे तो उस औरत का जीवन कितना नीरस, भयाक्रांत और एकाकी हो जाता है, इसकी कल्पना कर पाना भी कठिन है।

यह एक बड़ा अभियान बनाया जाना चाहिए, जिससे आम लोगो द्वारा बलात्कारी, दहेज हत्यारों, व्यभिचारियों, भ्रष्टाचारियों, भ्रूण-हत्यारों जैसे अपराधियों को सामाजिक स्वीकृति न दी जाए। परिवारों से इन्हें बहिष्कृत रखा जाए, और जब तक ये अपराधी ग्लानि और पश्चात्ताप द्वारा अपनी गलती न स्वीकार ले, इन्हें अपनाए जाने की प्रवृत्ति रोकी जाए। औरतों के प्रति हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति का एक बड़ा कारण है, सामाजिक बेरुखी व उसकी मूक स्वीकृति। यदि अपराधियों को सामाजिक स्वीकृति न मिले तो अपराधियों के हौसले इतने बुलंद न होते, न तो अपराध करने के बाद वे इतने बेखौफ घूमने का साहस जुटा पाते। यही कारण है कि अपराधी न सिर्फ छुट्टा घूमते-फिरते हैं, बल्कि भाषणबाजी और नैतिकता बघारने में भी आगे-आगे फुदकते दिखते हैं। ऐसे कामांधों को यदि कुछ लोग

जबरदस्त पटखनी देते हैं तो उसे गलत क्यों ठहराया जाना चाहिए? इस सभ्य समाज में यदि औरत निश्चितता में जी नहीं सकती तो इसे सभ्य कहना कहां तक उचित होगा। सभ्य कहलाने के लिए सभ्यता सीखना पहली शर्त है।

सामाजिक विकृति की एक झलक भूकंप की त्रासदी से जूझ रहे सौराष्ट्र के जीवापुर गांव में दिखी। वहां एक औरत, जिसका मकान मलबा बन चुका था, मजबूरन सड़क के किनारे सो रही थी। हवस के अंधे तीन युवकों ने सारी मानवता को भुलाकर उसे अपनी कामुकता का शिकार बनाया। इस तरह की घटनाएँ ही हैं जो यह स्पष्ट करती हैं कि कई दफा कुछ मर्दों को कामांधता के सिवा कुछ नहीं सूझता, चाहे वह किसी त्रासदी से ही क्यों न गुजर रहे हों? औरत की देह पर आक्रमणकारी की तरह बरताव करके मर्द केवल अपनी शारीरिक भूख ही नहीं बुझाने की कोशिश करता, बल्कि वह अपने झूठे अहम् और विजेता की छवि को अखंडित रखने का घटिया प्रयास भी करता है।

ऐसे में यदि एक गांव के कुछ लोग आक्रामक हो जाते हैं, तो उन्हें क्रूर, आक्रमणकारी, पाशविक माना जाए या बलात्कारी को? यदि कामांधों के साथ एकजुटता से निपटने का यह तरीका, असामाजिक होने के बावजूद, प्रभावकारी होता है तो इसे नकारा जाना या इस पर बहस करना कितना उचित होगा? सामाजिक भय से बड़ा कोई उपाय नहीं है, जो इस तरह की अमानुषिक बर्बरता पर अंकुश लगा सके। हालांकि इस बात से मुकरा नहीं जा सकता कि यदि कानून-व्यवस्था सुधारी जाए, औरत को यौन हिंसा से बचाने के कड़े प्रयास किए जाएं तो न्याय अपने हाथ में लेने का सवाल ही नहीं पैदा होता। वरना बेखौफ शिकार की तलाश में घूमते इन खतरनाक मुस्टंडों से औरतों को बचाना नामुमकिन ही होता जाएगा। औरत की देह को नैपकिन की तरह जब मरजी इस्तेमाल कर, मसलकर फेंकने की इस प्रवृत्ति पर जबरन ही सही, रोक लगानी जरूरी है।

कानून की आड़ में धुलती जमात

‘मेरे ससुरालवालों ने कहा, मैं उनके परिवार के लायक नहीं हूँ और घर से निकाल दिया। वो मेरी मेहर की रकम लौटा दें बस।’

— अजमीरा (20)

‘जब मैं 7 माह की गर्भवती थी तो मेरा पति मुझे मायके छोड़ गया और अब तक अपने बच्चे का मुंह देखने नहीं लौटा। मुझे केवल गुजारा भत्ता दिलाया जाए।’

— मुमताज

‘मेरा पति मायके वालों से 20,000 रुपये मांग रहा था, नहीं मिलने पर मुझे घर से निकाल दिया और दूसरी शादी कर ली। वह मेरे दहेज की रकम लौटाए।’

— जाहिदा

‘मैं केवल 15 दिन अपने पति के साथ रही, अब दो साल से अलग हूँ, वह मुझसे तलाक चाहता है।’

— आयशा खातून (18)

‘डेढ़ साल अपने साथ रखने के बाद मेरे पति ने दूसरी शादी के लिए मुझे छोड़ दिया।’

— नूरी बेगम (15)

‘मैं अपने पति की दूसरी बीवी थी, वह मुझे लगातार मारता और सताता था।’

— हजीरा (15)

‘मेरे पति ने शादी के तीन महीने बाद ही मुझे छोड़ दिया।’

— कमला बेगम (15)

‘मैं 14 सालों से अपने पति की दूसरी बीवी हूँ, वह रोज मुझे पीटता और सताता है। मुझे मदद चाहिए।’

— अजूबा खातून

‘9 साल की उम्र में मैं ब्याह दी गई, मेरे पति ने 6 दफा ब्याह किया, पर

मुझे अब तक तलाक नहीं दिया।’

— फूलबानो बेगम (40)

‘मेरे पति ने दूसरी शादी इसलिए की, क्योंकि मेरी कोख से 4 लड़किया पैदा हुई थीं।’

— फिरोजा बेगम (25)

‘शादी के दस साल बाद मेरे पति ने मुझे मायके भेजकर खुद दूसरी शादी कर ली। मुझे पति नहीं चाहिए, मुझे गुजारा भत्ता चाहिए।’

— नजरून (22)

अपने पतियों द्वारा सताई जाने वाली ये कुछ मुसलमान औरतें हैं, जिनसे महिला आयोग की सदस्या सईदा सैय्यदन हामिद ने बातचीत करके एक दिल दहला देने वाली रपट तैयार की थी। देश-भर के विभिन्न क्षेत्रों की इन तमाम औरतों की पीड़ा और स्थिति लगभग समान है। ये सभी बहुत कम उम्र में ब्याह दी गयी और जल्दी ही पति द्वारा घर से धकेल भी दी गई, जबकि इनमें से अधिकतर की कोई पुख्ता गलती भी नहीं थी। जैसा कि इनके वक्तव्य का अंश पढ़कर साफ है—किसी औरत को लड़कियां जनने के जुर्म में तो किसी को दूसरी शादी करने की चाह में निकाल बाहर किया गया। 15-20 या 25 साल की उम्र की ये लड़कियां अभी तक जीवन को समझी भी नहीं हैं कि उन पर यह कहर बरपा हुआ। इन औरतों को न तो मेहर की रकम ही मिली और न ही कानूनी रूप से तलाक ही। आज तक मझधार में अटकी ये औरतें प्रायः अनपढ़ हैं या शब्दज्ञान भर है इनके पास, क्योंकि इनकी बचपने में ही अपनी उम्र से दोगुनी उम्र के पुरुष से शादी कर दी जाती है। बच्चों के साथ यौनानंद लूटने वाले ये कामुक या काम दीवाने पुरुष कुछ ही समय में इनसे ऊब जाते हैं और कुछ न कुछ बहाना बनाकर इन्हें मायके में वापस पटक जाते हैं। अपने जने बच्चों के साथ दो वक्त की रोटी की मोहताज ये औरतें पढ़ी-लिखी न होने के बावजूद, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक लगती हैं। दुर्भाग्य से, बल्कि कहे, सरकारी लापरवाही के चलते इन्हें अधिकार प्राप्त करने के जरिये नहीं पता है। ये सब पति से बदला लेने पर उतारू हैं। बदले का मतलब यहा फतवा या हत्या नहीं है, बल्कि इन्हें अपना हिस्सा चाहिए, गुजारा-भत्ता चाहिए, संपत्ति का अधिकार चाहिए, कानूनन तलाक चाहिए।

औरतों को सामान समझने वालों को यदि हम जेहनी तौर पर दीवालिया कहे तो शायद गलत न होगा। इस तरह रोती-बिलखिती औरतों की भीड़ के लिए ‘दो लफ्ज’ बोलने वाले भी नहीं हैं इस समाज में। गरीबी व अशिक्षा की शिकार ये

तमाम औरते मुल्ला-भौलवियों के फैलाए आतंक में खुद को इतने दबाव में पाती है कि उनके खिलाफ एक लफ्ज बोलना भी संभव नहीं होता।

कानूनन भारतीय मुसलमान एक साथ चार बीवियां रखने को तो स्वतंत्र है ही, यह सब जानते हैं, मगर वह यदि पाचवीं शादी भी कर ले तो भी उसे कोई सजा नहीं होती। जबकि औरत यदि पति के रहते हुए ही, उसे बिना तलाक दिए दूसरी शादी करती है तो वह भा.दं.सं की धारा 494 के अंतर्गत दोषी मानी जाती है। ठीक यही हाल तलाक का भी है। पुरुष कभी भी कही, तलाक का उच्चारण करने को स्वतंत्र है, यहां तक कि पत्नी की गैर-मौजूदगी में भी। जबकि औरत को पति से तलाक मांगने के लिए कोर्ट जाना होता है, जहां मुस्लिम मैरिज एक्ट, 1939 के अंतर्गत उसे पति से तलाक मिल सकता है। कुछेक मामलात में, हालांकि यह संभव नहीं होता, 'तलाक-ए-तफवीद' के द्वारा बिना कोर्ट गए ही तलाक मिल सकता है, लेकिन इसमें मां-बाप की मरजी शामिल होनी जरूरी है। गुजारा-भत्ता मिलने की स्थिति तो और भी गई, गुजरी है। कानूनन 'मुस्लिम वूमेन प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स' (डिवोर्स) के एक्ट (1986) के अनुसार तलाकशुदा औरत गुजारा-भत्ता माग सकती है, पर यदि पति उसे चुकाने की स्थिति में नहीं है तो यह जिम्मेदारी वक्फ बोर्ड के हिस्से आती है। दरअसल कड़े निर्देशों के अभाव का फायदा उठाते हुए बोर्ड और पति दोनों अपनी जिम्मेदारी से मुकर जाते हैं। बच्चों की जिम्मेदारी से लेकर गुजारा-भत्ता पाने तक औरतों को न तो पुख्ता जानकारी ही मिल पाती है और न ही जरिया ही। अपना बाकी का जीवन आंसुओं, अभावों, गरीबी, भूख और लाचारी के बीच काटती इन औरतों में हिम्मत अब तक बाकी है। यह मुस्लिम समाज के लिए चुनौती है, इसे बर्दाश्त करने के लिए उलेमाओं और कट्टरपंथियों को हिम्मत बटोरनी चाहिए। राजनीति के लिए मुद्दे तलाशने वाले नेताओं और मौलानाओं को चाहिए कि वे मुंह सिए, आसू बहाती इन औरतों की तरफ एक बार संवेदनशील होकर देखें और अपनी बेरुखी भुलाकर उन्हें वो हक दिलवाएं, जिनकी उन्हें बेहद जरूरत है।

इन औरतों की दुर्दशा की असल जिम्मेदार सरकार है। क्योंकि वोट बैंक बिगड़ने के लालच में वह मुस्लिम लॉ छूना नहीं चाहती। इन सुस्त, निकम्मे लोगों की आंखें खोलने के लिए यह जान लेना काफी होगा कि तुर्की, मिस्र, लेबनान, सूडान, इंडोनेशिया, मलेशिया, ईरान, इराक समेत पाकिस्तान जैसे कट्टर इस्लामिक देश अपनी औरतों के हित में कानून बना चुके हैं। इन देशों में बहुविवाह प्रथा पर कड़ी पाबंदी लगाने का अधिकार कोर्ट या प्रशासन के पास है। तुर्की और ईरान

जैसे देशों ने औरतों को पुरुषों के बराबर ही तलाक के अधिकार दिए हैं, यहाँ तक कि कुछेक देश महिला अधिकारों के दबाव में दहेज व गुजारा भत्ता को संबद्ध करने लगे हैं। तुर्की तो पारंपरिक मुस्लिम कानून को आधुनिक सिविल कोड में तेजी से बदलता जा रहा है और इंडोनेशिया, मलेशिया व ब्रूनई में बहु-विवाह पर पाबंदी लग चुकी है।

हम सब कब तक निष्ठुर बने तमाम मुसलमान औरतों को आंसुओं में सराबोर रहने देंगे। हम सबका फर्ज है कि उन तमाम कट्टर देशों से एक सीख लें और सोचें कि भारत में ही मुसलमान औरतें इतनी बुरी गत को क्यों प्राप्त हैं? सरकारी और गैरसरकारी संगठन, मीडिया, लेखक, मौलाना व पढ़ी-लिखी मुसलमान औरतें सरकार पर यदि लगातार दबाव बनाएं तो इन कानूनों को सुधारा जा सकता है क्योंकि कानूनी मदद ही इन तमाम औरतों के आंसू पोंछने का बीड़ा उठा सकती है।



अवर्णों से कुछ सीखें सवर्ण

यह सच है कि समाज में औरतों की स्थिति दलितों से भी बदतर है, मगर उससे भी बड़ा व्यावहारिक सच यह है कि दलित औरतें आम मध्यम व उच्चवर्गीय उच्च जातीय औरतों की अपेक्षा ज्यादा खुशहाल हैं। दलित वर्ग में औरतों को वह पीड़ा, छटपटाहट, तिरस्कार और असंवेदनशीलता नहीं बरदाश्त करनी पड़ती है, जिसके लिए सवर्णों की औरतें सदियों से अभिशप्त हैं।

दलित समाज में औरतों को मर्द से तुच्छ समझे जाने की परंपरा सवर्णों की नकल के आधार पर ही घुस रही है, वरना वहां औरत-मर्द के बीच बराबरी का एक अनकहा-सा समझौता है। कई दलित औरतों से बातचीत के दौरान मैंने महसूस किया कि वहां मर्दों द्वारा शोषित औरतों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। जैसे जमादारनी का काम करने वाली रामवती बताती है कि शुरू में जब उसके मर्द ने उसे पीटा तो वह खूब रोई-चिल्लाई, मगर अब पिछले 14 सालों से जब भी वह हाथ उठाता है, रामवती उसका मुकाबला करती है और दो थप्पड़ के एक्ज में एक तो रसीद कर ही देती है। इसी रामवती ने स्वीकारा कि उसका बेटा एक बूढ़ी औरत के बहकावे में आकर उसकी बेटी के साथ बैठ गया तो उसने अपनी 24 वर्षीया बहू की एक विधुर रिश्तेदार से शादी करवा दी। बेटे-बहू से जन्मे दोनों बच्चों को आज वह स्वयं पाल रही है। क्या सवर्णों में ऐसे उदाहरण ढूंढने से भी मिलेंगे? शायद कभी नहीं। यहां औरतें मुंह सिए वर्षों कुटती रहती हैं, पर पति परमेश्वर पर हाथ उठाने की बात तो दूर विरोध करने की भी हिम्मत नहीं कर सकतीं।

रामवती ने अपनी युवा बहू की पीड़ा किसी संभ्रांत परिवार की अपेक्षा भली प्रकार समझी, तभी उसकी शादी बिना हील-हुज्जत के कर दी और उसके मासूम बच्चों को अपने पास रखने की जिम्मेदारी निभाई। आखें खोलकर (बिना किसी दुर्भावना के) यदि दलित समाज के इन रिवाजों को देखा जाए तो वहां औरत की अपनी जगह है। दलितों में पुनर्विवाह, विधवाविवाह आदि प्रचलन में है, वहां यह

औरत के विवेक पर छोड़ दिया जाता है कि वह वैधव्य का जीवन पसंद करती है या पुनर्विवाह करना चाहती है। सवर्णों वाली संकीर्णताएं, परंपराओं के नाम पर शोषण, औरत के साथ दोयम दर्जे के व्यवहार से अछूते हैं, मगर पढ़े-लिखे समझदार दलितों में सवर्णों के इन दुर्गुणों को तेजी से अपनाने की होड़ लगी हुई है। दलितों को दोयम मानने का हक हमें किसने दिया है? किसी ने नहीं, यह तो हमने खुद गढ़ा है। सीधी-सी बात है अपनी गढ़ी किसी चीज के सकारात्मक पक्ष को क्यों अपनाएंगे हम? घृणा और उपहास द्वारा उसे तिरस्कृत ही कर सकते हैं हम। औरत के क्षणिक सुख के लिए भी यदि उम्मीद की किरणें नजर आ जाएं तो खूंखार-सा यह मर्दवादी समाज उसे कुचल देना चाहता है। सुंदर, गोरी, कान्वेंट-एजूकेटेड बहू की मांग करने वाले जाहिलों से कोई उम्मीद करना ही मूर्खता है।

खुद को चमार बताने वाली बिट्टा ने एक दफा बताया कि उसकी दादी दादा से उम्र में काफी बड़ी थी, इसलिए समझदार भी ज्यादा थी। अपनी बेटी यानी बिट्टा की मा की शादी एक होनहार युवक से करके दोनों खुश थे। मगर वह युवक मुर्बई ऐसा भागा कि लौटकर न आया। कुछ साल इंतजार करने के बाद बिट्टा की मा की शादी एक स्वजातीय अनाथ युवक से करके उसे घर-जमाई बना लिया, परंतु बिट्टा और उसके भाई के जन्म के बाद उसका पिता तपेदिक से मर गया। बिट्टा बताती है कि जब वह 6 साल की थी तो उसकी नानी ने मा की शादी एक अपाहिज युवक से कर दी। आज मा वहां खुश है और बिट्टा और उसका भाई यहां नानी के पास पलकर अपने-अपने परिवार में। क्या कोई सवर्ण अपनी बेटी के सुखी-संतुष्ट जीवन के लिए इतने जानदार निर्णय ले सकता है? शायद आधुनिक युग में भी नहीं।

सवर्णों में तो इसका उलटा है : पुरुष दो-चार शादियां करें तो स्वागत है, पर औरत निकम्मे, नपुंसक या शराबी पति को छोड़ने की बात भी जुंबा पर ले आए तो पतिता। समाज का हर दूसरा विधुर मुंह बाए नई शादी को तैयार दिखता है, चाहे खुद कब्र में पांव लटके हैं पर एक औरत की जीवन तबाह होता हो तो हो जाए, उनकी बला से।

मेरे एक दलित मित्र मानते हैं कि उनके परिवारों में घरेलू मारपीट में काफी बराबरी का स्तर रहता है। यदि मर्द गाली-गलौज करता है तो औरत भी उसे पलटकर उतनी ही वजनदार गाली देती है। मजेदार व स्वागतेय यह है कि

परिवार उसका बुरा नहीं मानता, न ही उस औरत को तिरस्कार या अपमान की नजर से देखा जाता है। जबकि सवर्णों में इसका उलट है। यहाँ मर्द गाली-गलौज करने को स्वतंत्र है, जबकि औरत के मुँह से निकली गाली अशोभनीय और अभद्रता मानी जाती है।

मेरे घर में काम करनेवाली बाई भी इसी वर्ग से आती है। वह कहती है कि चूँकि वह परिवार का खर्च उठाती है, इसलिए उसका मर्द, जो निकम्मा है, घर में बच्चे संभालता है और बासन मंजता है। दरअसल तो यही है असली प्रगतिशीलता, जहाँ न दावे हैं, न दावों की बू है। जहाँ बेहद ईमानदारी से सच्चाई स्वीकार करने की क्षमता है। यह सच है कि वहाँ भी मर्दवाद हावी होता है, वहाँ भी मर्द को अहम् टूटता या मसलता प्रतीत होता है, मगर अपने समाज की बंदिशों और पारिवारिक परंपराओं के आगे वे मजबूर हैं।

औरत को बेइज्जत करने से पहले ही वे जानते हैं कि हमारा यह प्रयास बेकार होगा। दलितों में आज भी बेटियों को जलील नहीं किया जाता, दहेज हत्याएं कम हैं, तलाक तक बात मुश्किल से पहुँचती है। गरीबी होने के बावजूद मध्यवर्ग जैसी क्षुद्रता नहीं है उनमें, औरत और मर्द आज भी एक चारपाई पर बैठकर बीड़ी का सुट्टा लेते हैं या थैली लाकर बराबर ठर्रा बाटते हैं। औरत के लिए 'निषेध' वहाँ कोई नहीं है। दरअसल तो लोकतंत्र वहाँ ही है, जिसे सवर्णों के असर में आकर वे भी भुलाते जा रहे हैं खुद को प्रगतिशील बनाने के चक्कर में उनकी ओरीजनलिटी पीछे छूटती ही जा रही है। उसे जब तक वे समझेगे, शायद देर हो जाए।

दुर्भाग्य से दलित समाज में औरतों को जितना सताया या तिरस्कृत नहीं किया जा रहा है, सवर्ण उतना ही उन पर गिद्ध दृष्टि रखते हैं। अवर्णों की औरतों के साथ किए जाने वाले अपराधों में सवर्णों की भूमिका इसका उदाहरण है। मौका पाते ही बदले की भावना से, अपनी कुठाओं के चलते, उनकी गरीबी या लाचारगी का फायदा उठाने के लिए या झूठमूठ अपनी मर्दानगी का झंडा गाड़ने के लिए वे दलित औरतों को अपना निशाना बनाते हैं। कभी बलात्कार करके, कभी उन्हें नंगा घुमाकर या कभी उनके साथ असामाजिक कुकर्म करके उन्हें अपमानित किया जाता है। देखने में आया है—जहाँ-जहाँ दलित एकजुट हुए हैं, सवर्णों के खिलाफ लामबंद हुए हैं या अपने अपमान का बदला लेने पर उतारू हो चुके हैं, वहाँ उनकी औरतें सुरक्षित होती जा रही हैं।

सवर्णों के इस तथाकथित समाज में अवर्णों ने सदियों उपेक्षा सही है, इसके बावजूद उनमें औरत की इच्छाओं, उसके सपनों, उसके मान-अपमान व उसकी स्थिति को जो जगह दी गई है, वह सवर्ण अपनी औरतों को कभी न दे पाए हैं और न देने के प्रति उत्सुक दिखते हैं। दलितों को दुत्कारने व उनको दोयम दर्जे पर ढकेलने की साजिश करने वाले सवर्णों को उनसे एक सीख तो ले लेनी चाहिए।



चर्चित होने का फूहड़ तरीका

परिपक्व सोच, दमदार विचारों और ठोस बातें करने के लिए एक समय में चर्चित रही एक पत्रिका का स्तर इतना गिर जाएगा, किसी पाठक ने यह सोचा भी न होगा। एक जर्मन कार्टूनिस्ट टॉमी अंग्र ने न्यूक्लियर वॉर पर व्यंग्य करने के लिहाज से एक बेहद अश्लील किस्म का कार्टून बनाया है, जिसे इस अंग्रेजीछाप पत्रिका ने अपने एक अंक में न मालूम क्यों छपा है। यही नहीं, बल्कि यह भौंड़े किस्म का कार्टून टी-शर्ट और कार्डों पर भी छपा गया है।

इस कार्टून में दो पुरुष एक-दूसरे को अपना पायजामा खोलकर दिखा रहे हैं और वे जिस स्तर के व्यंग्य कर रहे हैं, उसे यहां प्रकाशित करना हालांकि अभद्रता के दायरे में आता है, मगर जरूरी भी है। मर्दानगी के प्रतीक को यहां न्यूक्लियर बम से जोड़कर कटाक्ष किया गया, दिखाया गया है। चूंकि पश्चिमी समाज में नंगापन या यौन संबंध इतने खुले माहौल में हैं कि उनके लिए इस तरह के कार्टून चित्र, फोटो आदि आम हैं। हमारा समाज चाहे जितना भी आधुनिक हो चुका हो, मगर उसमें श्लील और अश्लील के बीच की दीवार अभी भी कायम है। क्योंकि इसे किसी प्रकाशक ने बिकाऊ बनाने के लिए नहीं बेचा, बल्कि औरतों के हक के लिए लड़ने का दावा करने वाली प्रबुद्ध किस्म की एक विदुषी ने इसे छपा है, इस पत्रिका की संपादक की औरतों के प्रति जिम्मेदारी को अजरंदाज नहीं किया जा सकता। यह बात अलग है कि अंग्रेजी दां टाइप पत्रकार आम भारतीय औरत के दर्द, उसकी समस्याओं पर मुंह बिचकाकर किनारा कर लेते हैं। उनकी दिमागी उपज है कि 'न्यूक' प्रतियोगिता पर इससे (इस अश्लील कार्टून से) बढ़िया बयान कोई नहीं हो सकता। यह सच है कि पश्चिमी समाज में गंभीर से गंभीर मुद्दे पर भोड़े किस्म के फूहड़ मजाक या चुटकुले तेजी से फैलते हैं, जबकि हमारे यहां आज भी चोरी-चुपके से सुनने-सुनाने पर विश्वास किया जाता है। समझने वाली बात तो यह है कि इस तरह के प्रचार जनता में समझ कम, उन्माद अधिक पैदा करते हैं। अशिक्षितों की फौज से भरा हमारा देश अभी अपने ज्ञानी पुरुषों के साथ नहीं है कि इस तरह के

विज्ञापनो का मर्म समझ सके उनके लिए तो यह उत्तेजना का कारण बन सकता है, जिसे भोगना पड़ेगा एक मासूम औरत को। औरतो को इम छुछुआएषन से बचाने के बजाए और ढकेल देना कौन-सी समझदारी मानी जा सकती है।

अभी लोग भुला नहीं पाए होंगे जब 'रीबक' जूते के एक विज्ञापन पर बवेला मचा था, जिसमें मधु सप्रे और मिलिंद सोमन एकदम नंगे बदन एक-दूसरे से लिपटे हुए थे। कंपनी को अपना यह विज्ञापन वापस लेना पड़ा तथा मिलिंद और मधु पर मुसीबतें टूट पड़ी थीं। इसी रीबक कंपनी के ताजा विज्ञापन में एक दाढ़ी वाला तकरीबन नंगा बुढ़ा मगरमच्छ जैसे किसी जीव को अपने बदन से चिपकाए है। शायद कंपनी अपने जूते की नंगेपन से तुलना करना चाहती है या कुछ इसी तरह का मैसेज समाज को देना चाहती है। फिल्मों और टेलीविजन की बजाए विज्ञापन कंपनियां निहायत भोंडे तरीके से पाठकों को आकर्षित करने की दौड़ में शामिल हैं। इनका एकमात्र मकसद अपना प्रोडक्ट बेचना है, इन्हे समाज या इसकी औरतों से कुछ लेना-देना नहीं है। ठीक इसके विपरीत जब कोई औरत समझदार मानी जाती है तो उससे तमाम दबी-कुचली औरते सहयोगात्मक रवैये की कल्पना करती हैं यदि वे भी इस अश्लीलता और नंगेपन की दौड़ में शामिल हो जाएंगी तो उनकी बुद्धि पर तरस खाने के सिवा क्या किया जा सकता है। क्योंकि वर्तमान में दूर-दूर तक कहीं न्यूक्लियर वार का खौफ नहीं है, हर राष्ट्र इससे होने वाले विनाश से वाकिफ है। राजनीतिक दबाव के लिए छोटे-मोटे झगड़े, बयानबाजी चलते रहते हैं, उसके लिए हमारे बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ ही काफी हैं, क्योंकि उनके लिए भी औरतो या उनकी गिरती हुई स्थिति कोई मायने नहीं रखती। औरत को नंगा करके घुमाया जाए या जिंदा जला दिया जाए, कभी कोई नेता इस मामले में मुंह खोलता है? न्यूक्लियर वार को पुरुष अंग से जोड़ने के पीछे की मानसिकता ने जता दिया है कि केवल चर्चा के लिए ये घटिया हथकंडे अपनाए गए हैं। यौनांगों को हथियारों से जोड़ने की पीछे की मंशा कभी सकारात्मक नहीं मानी जा सकती, खासकर उन समाजों में जहां यौन अपराध चरम पर हों।

आज छोटी बच्ची से लेकर प्रौढ़ा तक पुरुष की कुदृष्टि से बची नहीं है, रोज अखबारों तक बलात्कार या उसके प्रयास की दो-चार खबरें छपना आम हैं। ऐसे में लड़ाई औरत के हक के लिए लड़ी जानी ज्यादा जरूरी है या हथियारों की होड़ के लिए? औरतों के खिलाफ होने वाली हिंसा इस हथियारों की लड़ाई से ज्यादा भयानक है, क्योंकि एक औरत को इससे पूरा जीवन जूझना पड़ता है।

बलात्कार की शिकार किसी बच्ची की पीड़ा गोली खाए या तोप से उड़ाए गए व्यक्ति से कहीं ज्यादा होती है। औरत के विकास के नाम पर पैसा कूट-कूटकर तमाम लोगों ने खुद को आम औरत से इतना काट लिया है कि अब उसके दर्द, समस्याएं और बिखरे हुए सपने उन्हें कचोटते नहीं।

सड़क पर चलती कोई लड़की हो या बस में सवार, कॉलेज कैम्पस में हो या अपने पुरुष मित्र के साथ घूमती, उसकी टी-शर्ट पर दोयम दर्जे के प्रिंट आपको जरूर दिखते होंगे। विदेशी कंपनियों की आई बाढ़ ने ऐसी टी-शर्टों से बाजार ढांप दिया है। मुझे टबोचो, गले लगाओ, चूमो, मेरे पास आओ, कुचल दो, दे दो जैसे अंग्रेजी में छपे शब्द अनायास अपनी तरफ आकृष्ट करते हैं। अब तक गनीमत यही है कि किसी कंपनी ने अपने यह उन्मुक्त विचार हिंदी या अन्य किसी क्षेत्रीय भाषा में नहीं छापे, वरना सड़कछाप मजनुओं पर इसका कितना घटिया प्रभाव पड़ता, यह शोचनीय है। दुर्भाग्य से कोई महिला संगठन इसका विरोध नहीं करते। भारतीय परिधानों में खुद को लपेटकर टिकुली-चूड़ियां पहनने वाली पश्चिमी विचारों की औरतों के लिए यह सब बिलकुल साधारण हो सकता है, पर देश की आम औरत के लिए नहीं। ये चर्चा के लिए, प्रसिद्धि के लिए कहीं भी, कुछ भी कर डालते हैं। इन्हें कभी महसूस नहीं होता कि शिवलिंग की पूजा करने वाली हमारी औरतें उत्पत्ति पर विश्वास करती हैं, भावनाओं और प्रेम को पूजती हैं। उन्हें नरक से निकालने या उचित माहौल देने के प्रयास की बजाए, उपहास उड़ाने के लिए किए गए ये बचकाना प्रयास कुछ सकारात्मक तो नहीं कर सकते—बस, खीझ ही पैदा करते रहेंगे।

।
न
ह
र
।
ह
न

थ

।

गाली नहीं है 'खांटी घरेलू औरत'

साहित्य जगत के चुनिंदा सितारों में से एक, प्रखर वक्ता और कभी-कभार औरतों के पक्ष में बढ़िया बोलने वाले राजेंद्र यादव अचानक एक घरेलू बुढ़े की तरह बक-झक करने लगेंगे, इसकी उम्मीद न थी। स्वयं को चर्चित रखने के नुस्खे से लबालब रहने वाले यादव ने इस बार निशाना बनाया है अपनी पत्नी (मन्नू भंडारी) को। 'कथादेश' के एक अंक में ओमा शर्मा को दिए अपने लंबे इंटरव्यू में श्रीयादव ने अपने जीवन के कुछ नितांत व्यक्तिगत वाक्यात पर बाहियात टिप्पणी की। यही नहीं, उन्होंने हिंदी लेखिकाओं पर भी व्यंग्य करते हुए अनर्गल प्रलाप किया। उनके इस भाषण से स्पष्ट है कि वे औरत के हितों की बात कभी दिल से नहीं करते रहे हैं, उनके लिए यह मात्र लेखन का विषय रहा है, वरना 'सारा आकाश' जैसी कालजयी रचना का रचनाकार औरतों की रचनाशीलता या कार्यशीलता के समक्ष आने वाली सामाजिक, पारिवारिक व नैतिक कशमकश की पीड़ा समझता, उस पर व्यंग्य-बाण तो न ही कसता, खैर।

राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी लंबे समय से इसी दिल्ली शहर में अलग-अलग रह रहे हैं। मन्नूजी की साहित्य जगत में राजेंद्रजी से कतई कम हैसियत नहीं है। उनके मुरीद भले ही राजेंद्रजी की तुलना में कम हों, मगर जो या जितने हैं वो उन्हें इज्जत की नजर से देखते हैं। यहां स्पष्ट कर दिया जाना जरूरी है कि साहित्यकार तो पति-पत्नी दोनों हैं, परंतु यादवजी 'हंस' के द्वारा पाठकों तक प्रतिमाह पहुंचने का मौका पा लेते हैं। हो सकता है, एक साहित्यिक पत्रिका का मालिकाना हक रखने के एवज में वे अपना पलड़ा थोड़ा भारी मानते हों, परंतु तमाम अन्य पुरुषों की तरह राजेंद्रजी के सामने हमेशा मन्नूजी से अधिक अवसर रहे होंगे। पुरुष होने-भर से मिलने वाली मानसिक और सामाजिक स्वतंत्रता के अलावा घरेलू और पारिवारिक जिम्मेदारियों से सृजन के नाम पर मुक्ति पाने के अवसर भी राजेंद्रजी के पास रहे होंगे। राजेंद्र यादव का मन्नूजी को भाजपाई मानसिकता वाली परंपरावादी, सरकारी, खांटी घरेलू औरत कहकर अपमानित करने का प्रयास बिला वजह ही नहीं, बचकाना भी है। यह यादवजी के संकीर्ण

सोच, रूढ़िग्रस्त मानसिकता और पिछड़ेपन का द्योतक है। लबी-लबी छोड़ने वाले यादव यह आरोप अपनी पत्नी पर लगाने से पहले यह क्यों भूल गए कि जिस माँ की कोख से वे जन्मे होंगे, वे भी परंपरावादी घरेलू औरत रही होगी। परंपरावादी, घरेलू औरत होना कोई पाप तो नहीं होता? न ही इसका रचनाशीलता से कोई संबंध है। औरत को इस साँचे में ढाला किसने है? औरत को मात्र घरेलू, परंपरावादी और वंशबेल सवारने वाली तो पुरुषों ने बनाया है। वरना जानवरों में ऐसे रिवाज क्यों नहीं हैं? जानवरों की कई नस्लें तो मादा की इतना सेवा-सुश्रूषा करती हैं कि तमाम मर्दों को उनसे सीख लेनी चाहिए। क्यों हमेशा गौरैया और चिड़ा मिलकर घोंसला बनाते हैं? क्यों दोनों मिलकर अपने बच्चों का भोजन तलाशते हैं? वहाँ तो टांग-पर-टांग चढ़ाए मर्द अखबार नहीं बाँचा करते? मगर हमारे समाज के ये खाटी मर्दवादी मानसिकता के लोग हमेशा औरत को पीछे ढकेलने में जुटे रहते हैं—चाहे वह परिवार हो या साहित्य जगत या फिर राजनीतिक लड़ाई। मर्द तो औरत को अपनी बराबरी पर खड़ा देखने का साहस अब तक नहीं जुटा पाया है, फिर उसके आगे निकलने की कौन कहे।

हजारों रचनाशील, कर्मठ, विचारवान औरतें अपना परिवार, घर, बच्चों आदि के लिए अपना पूरा कैरियर दांव पर लगा देती हैं और इसका शिकवा भी नहीं करतीं। तो क्या उन्हें हम गालियाँ देने लग जाएँ? जिस समाज में हम रहते हैं, वहाँ आज भी औरत चौतरफा लड़ाई लड़ती है। वह बेटी, बीवी, माँ, बहू, रिश्तेदार सभी की भूमिकाओं के बीच अपने कैरियर, अपनी प्रोफेशनल लाइफ का सामंजस्य बिठाने का प्रयास करती है। वह अपने लिए गढ़े गए साँचे को तोड़ने के लिए हर सुबह एक नए सिरे से लड़ती है। दोस्तबाजी-यारबाजी में मशगूल रहने वाले मर्द के लिए 'खाँटी घरेलू औरत' दोयम दर्जे की व्यक्ति इसलिए हो जाती है कि उनकी इस यारबाजी को सुबह-शाम के खानों और नाश्तों की उम्दा वैरायटियों को पेश करते-करते ऊबकर वह अपनी रचनाशीलता के प्रति समर्पित हो जाती है। अपने समाज में हजारों ऐसे घर हैं, जहाँ मर्द अपनी शामें दारू में डुबाकर दुनिया-जहान की समस्याओं से खुद को ऊपर उठा लेते हैं, जब वे दफ्तर के टेंशन में होते हैं तो सिगरेटें फूँकते हैं, प्रेम में विकल हो जाएँ तो दाढ़ी कटवाना छोड़ देते हैं।

मगर औरत! औरत कैसे अपना गम दूर करे? औरत किस नशे को अपनाए कि समाज उसे ताने न मारे?

दरअसल यही मर्दवादी मानसिकता है जो मानती है कि औरत कभी दुःखी

नहीं हांती, वह हर स्थिति में खुद को ढाल लेती है, उसे किसी तरह के गम गलत की जरूरत नहीं। और यदि फिर भी उसे कोई दुःख या पीडा है तो वह शौक से जल मरे, कुए में छलांग लगा दे, रेल की पटरी पर लेट जाए। हो गये सब गम खत्म

चितनशील, विवेकी राजेद्रजी की एक अन्य टिप्पणी हास्यास्पद ही नहीं आपत्तिजनक भी है, जिस पर कोई भी सृजनशील औरत आक्रोश से भर उठेगी। अपने विवाहेतर संबंधों को ढांपने के लिहाज से ठेठ मर्दवादी, कहें तो खांटी मर्दवादी विचारधारा द्वारा यादवजी ने फरमाया है कि रचनात्मकता और सेक्स का गहरा संबंध है। हे, विचारवान राजेद्रजी! क्या आप अपनी पत्नी, बहन, बेटी को सेक्स के कंधों पर सवार होकर रचनाशील बनने देते। (क्षमा करें) औरत की रचनात्मकता से डरे हुए तमाम मर्दवादियों का यही दावा रहा है, राजेद्रजी उनसे कतई अलग नहीं है। औरत यदि अपनी रचनात्मकता को धारदार बनाने के लिए उन्मुक्त सेक्स का सहारा लेती हैं तो वह कुलटा, कलंकिनी, बेहया हो जाती है। वहशी की तरह सेक्स के पीछे भागने वाले चरित्रवानों को यादवजी किस पंक्ति में रखते हैं, यह तो वही जानें। कोई भी संवेदनशील मर्द औरत की देह कभी इसलिए नहीं नोचेगा कि वह रचनाकर्म से जुड़ा है। सेक्स आनंद को रचनाधर्मिता से जोड़कर राजेद्रजी ने अपनी कुंठित पाशविकता को भी उधाड़कर, अनजाने में ही सही, सामने रख दिया है। धन्य हैं, औरत के प्रति श्रीयादव के ये उच्च विचार।

हिम्मती मर्द को दाद दो

औरतों के लिए बल्लियों उछलने वाली एक खबर दुनिया-भर के पुरुषों के लिए चुनौती बन सकती है। खबर है कि ली मिंगवी पेट से हैं। ली मिंगवी का गर्भ ठहरना इसलिए एक बड़ी खबर है क्योंकि वे पुरुष हैं! पुरुष हैं, पर गर्भ भी ग्रहण किया है और जल्दी ही वे एक स्वस्थ बच्चे के पिता बनकर दुनिया-भर में छा जाएंगे। कोई मजाक उड़ाए या अविश्वास करे पर, यह सौ प्रतिशत सच है—ली दुनिया के पहले गर्भिणी होने का ताज पहन चुके हैं। वह खुश हैं और उत्सुकता से कहते हैं कि यह गर्भ ग्रहण करने से उन्हें अद्भुत अनुभूति हो रही है और इस अनुभूति से अभिभूत वे मानते हैं कि सभी पुरुषों व औरतों को मरने से पहले इस अनुभूति से जरूर गुजरना चाहिए। दुनिया के इस बच्चा जनने वाले पहले पुरुष को 24 घंटों तक लगातार चिकित्सा-व्यवस्था से घिरे रहना पड़ता है।

दुनिया-भर को रामोचित कर, प्रकृति को मुंह चिढ़ाने वाले ली बेहद सौम्यता से स्वीकारते हैं—‘मेरे नजरिये से, चाहे जैसे भी हो, मैं इस बच्चे को दुनिया में लाने का साधारण-सा काम कर रहा हूं, क्योंकि दुनिया में इससे ज्यादा प्राकृतिक और खूबसूरत कुछ भी नहीं है।’ ली के ये विचार सौ प्रतिशत सच हैं कि मां बनने की अनुभूति वाकई इतनी जबरदस्त है कि उसे केवल महसूस ही जा सकता है। परंतु दुर्भाग्य से अपने देश की हजारों-लाखों मांएं बच्चा जनने के दौरान इतना तिरस्कार, कुपोषण, अव्यवस्था और अभाव झेलती हैं कि उनके लिए यह अभिशाप बन जाता है। हमारी लाखों प्रसूताएं आज भी उचित चिकित्सक के अभाव में अप्रशिक्षित दाइयो या बड़ी-बूढ़ियों के निर्देशों पर बच्चा जनने को मजबूर होती हैं। इन प्रसूतियों से इस अनुभूति की आप कल्पना भी नहीं कर सकते। इसका यह मतलब न निकाला जाए कि उन्हें बच्चा जनने का आनंद नहीं होता, होता तो है, मगर वह बहुत पीड़ादायक और रोंगटे खड़ा कर देने वाला होता है। आज भी देश के हजारों कस्बे व गांव ऐसे हैं, जहां उचित चिकित्सा-व्यवस्था तो क्या, ढग का एक डॉक्टर तक मौजूद नहीं होता। प्रसव-पीड़ा से छटपटाती प्रसूताएं अनुभवी दाई या नर्स के अभाव में या तो जान से जाती हैं या

फिर नवजात की बेवजह मौत हो जाती है। यही नहीं, स्थिति इतनी खराब है कि कई-कई दिनों तक प्रसूताओं को भयानक दर्द से छटपटाते तक देखा जा सकता है।

देश की हजारों खेतिहर मजदूरिनें या श्रमिक, दिहाड़ी पर काम करने वाली औरतें तब तक काम करती रहती हैं जब तक असहनीय प्रसव-पीड़ा न शुरू हो जाए। इनमें से हजारों अपने कार्य-क्षेत्र के आस-पास ही किसी आड़ में या साथी श्रमिकों द्वारा ली गई चादर आदि की आड़ में बच्चा जनने को मजबूर हैं।

आप शायद ही भुला पाए हों कि जम्मू के एक जच्चा-बच्चा अस्पताल में अप्रशिक्षित डॉक्टर ने एक प्रसव-पीड़ा से छटपटाती औरत के बच्चे को खींचकर निकालने का प्रयास किया, चूंकि बच्चा उलटा था इसलिए इस बेहूदा हरकत से नवजात का सिर उसके पेट में ही रह गया। घबराहट में अस्पताल कर्मि नवजात के गरदन के नीचे का धड़ छोड़कर प्रसूता को भी मरने के लिए छोड़ भाग खड़े हुए।

खैर, हिंदुओं की सीता देवी हो या ईसाइयों की मदर मेरी या भगवान कृष्ण की जननी—सभी को विषम परिस्थितियों में बच्चा जनना पड़ा था। पर लाखों लोगों के सौभाग्य से, जब पुरुष स्वयं प्रसव-पीड़ा से गुजरेगे और बच्चा जनने की जटिल प्रक्रिया भोगेंगे तो शायद औरतों के प्रति उनकी सोच में कुछ तब्दीली आ सके। औरत को कमजोर और नाजुक बताने वाले पुरुष जब स्वयं प्रसव-वेदना सहेंगे व बच्चे को गर्भ में रखने का सुख भोगेंगे, तब शायद उनके पल्ले पड़ सके कि औरत दरअसल कितनी मजबूत और हिम्मत वाली होती है। स्वयं ली का मानना है कि 'इस विचार-भर से (गर्भ ग्रहण करने के) ही पुरुष स्वयं को सकट में समझने लगता है,' लेकिन अब सच में एक पुरुष गर्भ ग्रहण कर चुका है, इसलिए इस पर हँसने या व्यंग्य करने की आवश्यकता नहीं है।

ली जितने स्वाभाविक ढंग से बच्चा जनने की इस प्रक्रिया को स्वीकार रहे है, दुनिया-भर के लाखों मर्दवादी सोच से ऐंठे फिरने वालों के लिए यह उतनी ही पीड़ादायी खबर भी होगी। इन लोगों के नजरिये में औरत का काम केवल घरेलू व्यवस्था देखना और बच्चे जनना है। औरत यदि बच्चे जनने में भी बराबरी का हक मांगने लगे या यह काम पुरुष के सुपुर्द करने का निर्णय ले ले तो मर्दवादियों को तो मारे शर्म के अपने चेहरे पर कालिख पोत लेनी पड़ेगी। ली जैसे कुछ और मर्द यदि इस प्रक्रिया में अपनी रुचि रखते हैं तो औरतों का भी दायित्व काफी कुछ बट सकेगा। कैरियर की दीवानी हजारों या अन्य किसी

कारण से बच्चा जनन में सफल न होने वाली औरतों के लिए यह खबर आशा जगाने वाली है, तो मर्दों को भयातुर करने के लिए भी काफी है।

खा-खाकर अघाए, तोंदियल मर्दों को अब केवल चर्बी का बोझ उठाने से शायद निजात मिल जाए और वे इस बेवजह के वजन के बजाए अपने फूले हुए पेटों में एक खूबसूरत बच्चा पलने की जगह पा सकें। कुतर्कियों तथा अविश्वास करने वालों के लिए जरूरी है, इस प्रक्रिया को संक्षिप्त में समझा देना। मर्द को गर्भ ठहराने के लिए जनाना हार्मोस की कुछ खुराकें दिए जाने के बाद, चिकित्सक एक विशेष तकनीक, जिसे आईवीएफ के नाम से जाना जाता है, द्वारा पेट के खाली भाग में भ्रूण और अपरा (प्लेसेंटा) प्रत्यारोपित करते हैं। यह प्रक्रिया बिल्कुल भीतरी सतह से लगी होती है। गर्भ ठहराने की यही प्रक्रिया अब तक सबसे जटिल है, क्योंकि इससे हैमरेज की आशंका बढ़ जाती है। इस प्रत्यारोपण के बाद भ्रूण के विकास की प्रक्रिया चालू रखने के लिए हार्मोस देने की विशेष प्रक्रिया होती है, फिर भ्रूण की हृदयगति के साथ ही अल्ट्रासाउंड द्वारा उसकी बारीकी से जांच चालू रहती है। ली के पेट की लगातार जांच चालू है और आपरेशन द्वारा बच्चा पैदा करने के साथ ही चिकित्सक अपरा भी निकालने की बात कर रहे हैं।

ली द्वारा लिया गया यह निर्णय वाकई हिम्मत की मिसाल है। हम उनके सफल प्रसव की कामना करते हैं। साथ ही दुनिया के तमाम मर्दों को सचेत हो जाने की भी जरूरत है, क्योंकि अधिकारों की लड़ाई लड़ रही जुझारू औरतों के लिए यह उम्मीद जागी है कि कोख व मातृत्व के नाम पर अब तक उन्होंने जो जलालत भोगी, जो पीडा सही, अब मर्द भी उसमें हिस्सेदार होगा। दूसरे, निःसंतान औरतों से उनके पति तलाक नहीं ले पाएंगे या दूसरी शादी के सुख से वंचित रह जाएंगे, क्योंकि उन्हें अपनी पत्नी का ताना सुनने के लिए एकदम तैयार रहना पड़ेगा—‘तो खुद क्यों नहीं जन लेते एक बच्चा।’

ताकि मर्दानगी का गुमान न रह पाए

मदिरो के शहर जम्मू में अमरनाथ यात्रा पर गई एक 25 वर्षीया युवती के साथ दो दिन तक चार आदमी लगातार बलात्कार करते रहे। यात्रा के दौरान दिल्ली की यह युवती गुमर के त्रिकुटा होटल में ठहरी थी, जहां दो युवकों सुनील नंदा और सुदर्शन कुमार भी ठहरे थे। अपनी पूर्वयोजना के तहत इन दोनों बददिभाग वहशियो ने युवती को बातों-बातों में चाय पर न्योता दिया, फिर युवती की चाय में कोई नशीला पदार्थ डालकर इन दोनों भद्र पुरुषों ने उसके साथ बारी-बारी से बलात्कार किया। होटल मालिक सुनील गुप्ता को जब इस भयंकर घटना की भनक लगी तो युवती के प्रति सहानुभूति जागने की बजाए, उसके भीतर की मर्दानगी फूट पड़ी और वह अपने एक मित्र संजीव चिब के साथ इस कुकर्म में शरीक हो गया। एक युवती के शरीर को ये चार मुस्टंडे दो दिन तक नोचते-खसोटते रहे।

ऐसी ही एक अन्य घटना में, राजस्थान के प्रसिद्ध तीर्थ भर्तृहरि में अपने रिश्तेदारों के साथ गई एक 17 वर्षीय लड़की के साथ ग्यारह भद्र पुरुषों ने अपनी मर्दानगी का कई-कई दफा प्रदर्शन किया।

हिंदू धर्म के तमाम तथाकथित रक्षकों को शर्म में डूब मरना चाहिए, क्योंकि भर्तृहरि के मंदिर परिसर में हुए इस सामूहिक बलात्कार कांड में मंदिर के श्रद्धेय-पूज्य पुजारीजी भी शामिल हैं। प्रभु की सेवा में लिप्त इन पुजारी महाराज ने 200 रुपये लेकर दुष्कर्मियों को कमरा मुहैया कराया, जहां लड़की के रिश्तेदारों ने उसके साथ अभद्रता की। बहती गंगा में हाथ धोने को उतावले पुजारी ने न सिर्फ उन्हें अपराध-स्थली मुहैया करवाई, बल्कि वह खुद भी वासना में डूब गया।

इसी बीच चमोली के कर्णप्रयाग की दो लड़कियां लक्ष्मण झूला पर आईं तो जैगो, जुगल और सुशील उन्हें फुसलाकर एक होटल में ले गए। जहां रात-भर इनके साथ पांच युवकों ने मिलकर व्यभिचार किया।

कुछ दिनों के अखबार पलटें तो हर दिन दो-चार बलात्कार या सामूहिक दुष्कर्म की घटनाएं प्रमुखता से छपी मिल जाएंगी। कहीं तीर्थस्थली में औरत से

जबरन देह सुख लिया जा रहा है, कहीं अपनी वासनापूर्ति के लिए बच्चिया बरगलाई जा रही है। जम्मू यदि मंदिरों का शहर है तो वहां देखें या भर्तृहरि जैसी तीर्थस्थली को—सब जगह औरत को उसकी देह के रूप में आका जा रहा है। होटल मालिक, जिसका काम है अपने ग्राहक को सतुष्ट करना, हैवान बन गया, पुजारी जो भक्त और प्रभु के बीच की कड़ी है, पूजनीय है, औरत की अस्मिता की चिता किए बगैर भोग में डूब जाता है। मर्दानगी से ओत-प्रोत इन तमाम दरिंदो को यूं छुट्टा घूमने देने के मायने क्या है? एक-एक औरत के शरीर को नोचते यह सब मर्द किसी न किसी रूप में समाज के प्रति उत्तरदायी हैं, परंतु देह के प्रति अपनी भूख को ये शांत नहीं रख पाते।

सड़क पर छुट्टा घूमते इन सांडो से औरत का बचना नाभुमकिन होता जा रहा है। कानून-व्यवस्था की बात करना अब केवल मन बहलाने-भर की बातें रह गई हैं। यह साफ हो चुका है कि औरत जब तक स्वयं जोरदार तरीकों से इनके विरोध में नहीं आएगी तब तक ये हैवान इसी तरह मौके-बेमौके टूट पड़ते रहेंगे। व्यवस्था यदि औरतों की सुरक्षा के प्रति जरा भी जागरूक होती तो आतंकवाद की चपेट में रहने वाला जम्मू क्षेत्र कैसे इस घटना को मूछ के नीचे झेल सकता था, क्योंकि इस घटना से कुछ ही दिनों पहले इसी क्षेत्र के एक अन्य होटल में एक तीर्थयात्री औरत के साथ चार दिन तक व्यभिचार होता रहा था।

इन घटनाओं का सीधा अर्थ तो यही हुआ कि औरत किसी होटल के कमरे से लेकर तीर्थस्थली तक अकेली न जाए, उसके साथ चार सुरक्षा गार्ड हो। हालांकि भर्तृहरि वाली घटना में ये सुरक्षाकर्मी रिश्तेदार ही लड़की को अपना शिकार बना बैठे। कुल मिलाकर आज जो स्थिति है, यही कहा जा सकता है कि औरतों को अपनी शारीरिक सुरक्षा करनी है तो उन्हें हथियारबंद होना होगा। हथियारों के आगे किसी की मर्दानगी यूं भी नहीं टिक सकती। यह सच है कि हथियारों द्वारा समस्याएं नहीं सुलझाई जा सकती, परंतु खुद को इन वहशी दरिंदो से बचाने के लिए उसे स्वयं ही कोई कदम उठाने होंगे। प्राकृतिक रूप से यदि मर्द ताकतवर है तो सुरक्षा के लिए औरत को कोई तो कानूनी मदद मिलनी ही चाहिए। इस तरह के व्याभिचारों को रोकने के लिए यदि जल्दी कड़े कानून नहीं बनते तो तमाम महिला संगठनों व समाजवादियों को यह तय करना होगा कि इन छुट्टों को सजा कैसे दी जाए, ताकि ये जीवन में दोबारा ऐसी गुस्ताखी करने के लायक भी न बचें। इनके घरों की औरतों तक समझ लें कि उनका पति-परमेश्वर कैसा दुराचारी है।

औरत शिक्षित हो या अशिक्षित, गरीब हो या अमीर, गांव की हो या शहर की, मर्दों की इस दुनिया में अपनी जगह बनाने के लिए उसे कई मोर्चों पर जूझना पड़ता है। खासकर जब उसे सरकार व व्यवस्था से कोई उम्मीद न हो। हजारों खबरें छपती हैं, पुलिस द्वारा सालाना (खौफनाक) आंकड़े पेश किए जाते हैं, कुछ लोग गिरफ्तार होकर छूट जाते हैं पर सताई गई औरत न्याय के अभाव में ही इस भीड़ में गुम हो जाती है। कुछ हिम्मतवाली औरतें यदि जूझकर बलात्कारी को जेल के सीखचों के पीछे भिजवाने में कामयाब भी होती हैं, तो उनका अपना भविष्य चौपट हो चुका होता है। उन पर एक बदनुमा धब्बा होता है, जिसे समाज कभी नहीं स्वीकारता, पर जब बलात्कारी लौटता है तो यही समाज उसे सांत्वना देता घूमता है और गलबहियां तक कर डालता है।

इसका ताजा उदाहरण है 4 जुलाई को सामूहिक बलात्कार की शिकार हुई दिल्ली के सुलतानपुरी इलाके की 14 वर्षीय बच्ची, जिसकी निठारी सर्वोदय कन्या विद्यालय ने (घटना के बाद) उपस्थिति तक नहीं दर्ज की। मायूस, डरी हुई बच्ची ने आत्महत्या कर ली और इस निष्ठुर समाज के मुंह पर अपराधियों के नाम की पर्ची लिखकर करारा तमाचा लगा गई। बलात्कारी तो कभी शर्म या खौफ से मरते नहीं सुना गया होगा, जबकि प्रायः औरतें/लड़कियां बदनामी, बेइज्जती, समाज की चुभती नजरों और अनुत्तरित सवाल के डर से मौत के मुंह में जा समाती हैं। इसीलिए केवल कानूनी न्याय ही नहीं, सामाजिक न्याय की गुहार भी लगाई जानी आवश्यक है। यहां तो शिकार ही अपराधी हो जाता है, जबकि शिकारी अपने पैने पंजों के साथ बेखौफ घूमता फिरता है।

हिंदूवादियों का तालिबान बनने का शौक

उत्तर प्रदेश के एक सम्मानित डिग्री कालेज (कानपुर शहर) में लड़कियों के साथ जैसा व्यवहार हुआ, वह तमाम प्रगतिशील महिलाओं व उनके संगठनों के गाल पर करारा तमाचा है। एस.एन. सेन बालिका डिग्री कॉलेज के नाम से मशहूर इस वर्षों पुराने कॉलेज में हुआ बवाल उन तमाम शिक्षिकाओं के मानसिक दिवालियेपन का नमूना बना, जो आज भी औरत को मर्यादा, शालीनता व शुचिता के नाम पर शोषित, दमित और उत्पीड़ित करता है। विद्यार्थी परिषद के वेलेंटाइन डे पर किये गए उपद्रव से प्रेरित भाजपाई मानसिकता वाले कॉलेज प्रबंधन ने कुछ ही दिनों पूर्व एक आदेश लागू किया था। जिसके अनुसार, कॉलेज परिसर में जींस पहनने पर मनाही थी। घटना वाले दिन यानी एक मार्च को कॉलेज में कोई जलसा आदि था, जिसमें कॉलेज की दो छात्राओं को जींस पहनकर आने के अपराध में गेट से अंदर नहीं घुसने दिया जा रहा था। उक्त दोनों छात्राएं-चेतना भरतिया और हिना कौसर चपरासी व छात्रसंघ की अध्यक्ष से भिड़ गईं। बहस अंततः मार-कूट में बदल गई और प्राचार्या मधुलेखा विद्यार्थी को बीच-बचाव के लिए आना पड़ा।

यह लड़ाई दो विचारधाराओं की नहीं, बल्कि औरत के वजूद की, उसके स्वतंत्र अस्तित्व की और आत्म-निर्णय की थी। दूसरे दिन शहर से छपने वाले तमाम अखबारों में यह घटना प्रमुखता से तो छपी, किंतु दुर्भाग्य से सभी खबरकारों की सवेदनाएं कॉलेज प्रबंधन की तरफ साफ थी, किसी ने उन दो साहसी, अपने अधिकार के लिए भिड़ने वाली बालाओं की तस्वीर नहीं छापी थी। क्यों? क्योंकि ये तमाम लोग दोनों को बहादुर मानने की बजाय उद्दंड, बेवकूफ और उपद्रवी मानते हैं।

औरतें क्या पहनें, इसका निर्धारण हमेशा से पुरुष ही करते हैं चाहे वह विद्यार्थी परिषद् हो, संघ हो या अन्य कट्टरपंथी ताकतें। ये कभी लड़कियों को स्कूल सलवार-कमीज पहनकर आने का नियम बनाते हैं, तो कभी जींस को भारतीय परिधानों से बाहर कर देते हैं। पंजाब में उग्रवाद के दौरान स्कूली लड़कियों के लिए ऐसी ही आदेश दोगे गए थे कि सलवार-कमीज के सिवा वे कोई और ड्रेस न पहनें। ठीक यही तरीका है तालिबानों का। वे भी औरतों को

जब देखें बुरका ओढ़ने, सिर से पाव तक नकाब के भीतर रहने और सिर उधारा न रखने जैसी नमीहतें देकर सता रहे हैं। ये मर्दवादी ताकते अपने लिए कोई ड्रेस कोड क्यों नहीं बनाती? इनमें से किसी भी कट्टर संस्था ने आज तक यह रूल क्यों नहीं लागू किया कि मर्द केवल भारतीय पोशाकें ही पहनेंगे। पैट पहनने वालों को छाट-छांटकर मारा जाएगा, या सरेआम बेइज्जत किया जाएगा।

कुछ ही समय पहले दिल्ली तथा मध्य प्रदेश के कुछ कॉलेजों में भी इसी तरह के बेतुके कानून बनाए गए थे, कि लड़कियां कॉलेज परिसर में जींस आदि परिधान न पहने। मगर वहां भी कुछ जागरूक छात्राओं ने विरोध-प्रदर्शन किए। शायद सबसे उग्र विरोध सेन वाला ही है, जहां मार-पीट तक की नौबत आ गई। भरतिया और कौसर द्वारा दिए गए तर्कों का जवाब चूकि कॉलेज प्रबंधन, व प्राचार्या के पास नहीं थे, इसलिए दोनों लड़कियों के खिलाफ नजदीकी थाने में रपट दर्ज की गई और उन्हें कॉलेज से निकालने की धमकी भी दी गई। दोनों लड़कियों ने कहा यहां (कॉलेज में) जींस पहनना मना है तो हमारे घरों में सलवार-कमीज पहनना मना है, हम क्या पहने। उन्होंने प्राचार्या पर दूसरा सवाल दागा—जब कॉलेज की शिक्षिकाएं खूब कसे, नीचे, फैले गले वाले या बिना बाजू के ब्लाउज आदि पहनकर शरीर का प्रदर्शन कर सकती हैं तो वे नियमबद्ध क्यों?

यह तथ्य कतई नकारा नहीं जा सकता था कि रूढ़ियों और परंपराओं से लदी-फटी इन प्रौढ़ शिक्षिकाओं से खुलेपन की उम्मीद बेकार है। परंतु समय और सोसायटी की मांग को समझते हुए उन्हें पहले अपनी मानसिकता बदलनी चाहिए, न कि प्रतिभाशाली, स्वप्निल लड़कियों की संवेदनाओं पर कुठाराघात करने में जुटे रहना चाहिए। प्रतियोगी परीक्षाएं हों या शिक्षा-क्षेत्र, जब लड़कियां सभी जगह लड़कों से बाजी मार रही हैं, ऐसे में तो उनका उत्साहवर्धन किया जाना चाहिए।

अपने समय में दबाकर रखी गई, इस तरह की तमाम पुरातनपंथी, संकीर्ण शिक्षिकाएं अपनी छात्राओं को 'आदर्श पत्नी/बहू बनाने के उपदेश' झाड़ती फिरती हैं, उन्हें भान नहीं कि आधुनिक विकासशील समाज में लड़कियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना कितना जरूरी है। लड़कियों के पहनावे पर बवेला खड़ा करने वाले ये तमाम कुंठित लोग दरअसल इस डरपोक समाज का वह गला हुआ अंग हैं, जिसके संक्रमण का डर हमेशा बना रहेगा। ये लोग भरतिया और कौसर टाइप की साहसी, विद्रोही और अन्याय के खिलाफ लड़ने वाली लड़कियों के भीतर ही भीतर घबराते हैं। निश्चित रूप से उक्त दोनों बहादुर लड़कियां अपने घरवालों से भी बहस में जीती होंगी या इस चर्चित घटना के बाद उन्हें अपने परिवार के सामने लज्जित होना पड़ा होगा। औरत जब तक अपने प्रति

होने वाले अन्याय के खिलाफ आवाज नहीं उठाएंगी, मर्दवादी ताकते हमेशा पीठ पीछे ऐसे ही प्रहार करती रहेंगी। ढेर सारी औरतों की प्रतिनिधि कोई एक औरत ही होती है।

अपने अधिकार के लिए लड़ने वाली औरत कभी उहंड, झगडालू या उपद्रवी नहीं कहला सकती, हालांकि यह डरपोक समाज उसे इन्हीं अलंकारों से महिमामंडित करेगा। संस्कृति और सभ्यता के नाम पर महिलाओं को प्रताड़ित करने वालों को समझ लेना चाहिए कि जींस पहनने का यह अधिकार एक तरह से अंतरराष्ट्रीय लड़ाई का एक हिस्सा है। जिस दिन सेन कॉलेज की ये दो छात्राएं जींस पहनने के कारण बेइज्जत की जा रही थीं, उसी दिन हजारों मील दूर बैठी एक श्वेत कन्या स्कूल प्रबंधन के स्कर्ट पहनने के नियम के खिलाफ जंग जीतकर खुद को गौरवान्वित महसूस कर रही थी। इस छात्रा ने स्कर्ट पहनने के खिलाफ मुकदमा लड़ा और दलील दी कि टांगों में सर्दी लगती है, इसलिए लड़कियों को पैट पहनकर स्कूल आने की इजाजत दी जाए। उसने मुकदमा जीता और अंतरराष्ट्रीय समाचार एजेंसियों ने पैट पहने उस बाला की तसवीर पूरी दुनिया के प्रेस को प्रसारित की।

मगर दुर्भाग्य से यहां भारत में सीन एकदम उलटा है, यहां दोषी छात्राएं हैं, उन्हें मूक रहना चाहिए, अतिवादियों के अव्यावहारिक रूल चुपचाप झेलने को तैयार रहना चाहिए। जब तक औरत जात सामूहिक रूप से इस अव्यवस्था से नहीं भिडती, तब तक मुट्ठी-भर कूढ़मगज अपनी दादागिरी यूं ही दिखाते रहेंगे। तालिबानों और इस्लामिक कट्टरवादिता की खिचाई करने वालों को आईना दिखाना इसलिए जरूरी है कि अपनी इन्हीं ओछी हरकतों से वे खुद को इनसे अलग नहीं रख पाएंगे।

इस तरह की बेहूदा हरकतों की बजाय यदि यह लड़ाई अश्लीलता और अराजकता के लिए हो तो बेहतर। लड़कियों को टाइट करने के बजाए, समाज में फैली अश्लीलता, नग्नता का विरोध करे तो बेहतर समाज तैयार हो सकेगा। ऐसे ही कॉलेजों की कुछ छात्राएं आस-पास के होटलों में जिस्मफरोशी तक करने जाती हैं। घरवालों की समझ में जिस वक़्त उन्हें कॉलेज में होना चाहिए, वे क्लास छोड़कर होटल के कमरों में होती हैं। इस पर कभी कड़ाई क्यों नहीं की गई? प्राचार्या को एल आई.सी. भवन के इर्द-गिर्द प्रेमालाप में मग्न छात्राएं क्यों नहीं दिखती? क्या जितना विद्यार्थी परिषद् टाइप संस्थाएं दिखाएंगी, वही ये समाज-निर्माता देखेंगे .

प्रेम में भी मर्दवादी रवैया

इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के लिए काम करने वाली एक स्मार्ट, समझदार पत्रकार कुछ दिनों डरी-सकुचाई-सी अपने मिलने वालों से मुंह छिपाती फिरती रही। उसका अपराध था—प्रेम। अपने ही एक साथी से उसके काफी समय से प्रेम संबंध थे। जल्दी ही दोनों विवाह-बंधन में बंधने को तैयार थे। अतिमहात्वाकांक्षी व पश्चिमी संस्कृति का लबादा ओढ़े वह युवक, समाज में पनप रहे एक नए तबके की तरह, लड़की के शरीर पर नजर गड़ाने लगा। इतना ही नहीं, लड़की के निर्णयों पर भी वह अपना जबरदस्त हस्तक्षेप करने लगा। उसने तमाम संकेतों से उसे धमकी तक दे डाली कि यदि मेरे बताए रास्ते पर न चली तो मैं तुझे बदनाम कर डालूंगा, (प्रेम)पत्रों को सार्वजनिक कर दूंगा तथा सारे संबंध खत्म कर दूंगा। लड़के के इस तरह के व्यवहार से युवा लड़की इतनी भयभीत थी कि उसका अपने काम, परिवार और संबंधों से मन उचाट हो गया।

दूसरी घटना कानपुर (नवाबगंज) की है, जहाँ एक युवक ने साथ पढ़ने वाली छात्रा पर तेजाब फेंककर उसे मारने की कोशिश की। लड़की का गुनाह था यहाँ—आकर्षक होना। करीब एक वर्ष से उस लड़की का पीछा करने, उसे आकृष्ट करने, बहलाने में फेल हो चुके इस युवक को जब अपनी दाल गलती नहीं लगी तो उस पर तेजाब फेंककर अपनी इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास किया। 80 प्रतिशत जली स्थिति में लड़की कई दिनों तक अस्पताल में मौत से जूझती रही और उसका परिवार गहरे सदमे में आ गया।

इससे कुछ ही दिनों पहले मुंबई में धनाढ्य परिवार एक लड़के ने पड़ोस की एक लड़की के नाम लंबा-सा खत लिखा और कोई जहरीली दवा खा ली। दोनों बचपन के दोस्त थे, पर जब लड़की को लगा कि वह उससे कुछ और चाहता है तो उसने लड़के को झिड़क दिया, जिसके परिणाम में लड़का मरने चल पड़ा, उसके घरवालों ने लड़की को अनाप-शनाप कहा और लांछन लगाए। इधर जनवरी के अंतिम सप्ताह में ओखला (दिल्ली) के आसिम ने अपने ताऊ, भाई, बहन और एक किरायेदार की सामूहिक हत्या कर दी, क्योंकि उसकी प्रेमिका के

साथ शादी के लिए ये लोग तैयार नहीं थे। इस हत्या से पहले एक दफा वह आत्महत्या का प्रयास भी कर चुका था।

ये सिर्फ कुछ ताजा घटनाएं हैं, आज के समय में ऐसी घटनाएं आम हो चुकी हैं। प्रेम करने वाले ये तमाम प्रेमी पुरुष अहम् के चलते ऐसे-ऐसे कारनामे कर डालते हैं जो औरतों को जीवन-भर आत्मग्लानि में कुदने के लिए छोड़ देते हैं। प्रेम की आड़ में लड़की से उमका शरीर मांगना, उसे भावनात्मक रूप से ब्लैकमेल करना, उसे बदनाम करने का भय दिखाना, लड़की का नाम लेकर मरने का प्रयास करना या उस पर घातक प्रहार करना पुरुषवादी मनःस्थिति के प्रमाण हैं। बातों में भले ही औरत को मर्द के बराबरी का व्यक्ति मान लिया जाए, मगर परिस्थितियां अभी भी औरत के विपरीत ही हैं।

प्रेम हो या शारीरिक संबंधों का मामला हो दोनों ही स्थितियों में मर्द-औरत की बराबरी की हिस्सेदारी होती है, पर भुगतना केवल औरत को पड़ता है। मर्द प्रेम पत्र लिखे, फूहड़-भोंडे तरीकों से प्रेम प्रदर्शित करे या कामुक हरकतें करे, उसकी बदनामी कभी नहीं होती। वह हमेशा औरत को अपने अनुरूप ढालने का प्रयास करता है। यह प्रयास वह आग्रह से, मनुहार से, दबाव से करे या धमकाकर, डराकर या क्रोध से करे, यह उसके विवेक पर निर्भर करता है। कभी शरीर न परोसने के लिए, कभी प्रेम न स्वीकारने के लिए या कभी परिस्थितियां अनुकूल न हो पाने के लिए औरत के मत्थे दोष मढ़कर पुरुष उसे उलाहने सहने, बदनाम होने, बेइज्जत होने के लिए छोड़ देता है।

प्रेम हो या विवाह पुरुष हमेशा एकतरफा ही सोचता है। उसका दावा होता है कि यदि वह प्रेम कर रहा है, तो औरत को उसे बदले में प्रेम देना ही चाहिए। अपने प्रेम के एवज में वह औरत से उसका शरीर मांगता है और अपने प्रयास में असफल होने पर वह बदला लेने पर उतारू हो जाता है। यही नहीं, इसका दूसरा पहलू इससे भी जटिल है, जो औरतें प्रेमवश प्रेमी के समक्ष बिछ जाती हैं, उन्हें कुछ समय बाद सुनना पड़ता है कि 'उसकी तो आदत है', 'आसानी से मिल सकती है' या 'संयम नहीं है।' ऐसे वाक्ये क्या समाज में कम हैं, जब प्रेमी सब कुछ कर गुजरने के बावजूद प्रेमिका से मुकर न गए हों? प्रेमिका को बेहाल छोड़ने वाले ये मंजून अपना तबू भले ही कहीं दूसरी जगह गाड़कर निश्चिंत हो जाएं, मगर औरत को ताउम्र उनका नरक भोगने को अभिशप्त रहना पड़ता है। एक औरत को कुछ दिन पहले उसके नवविवाहित पति ने सिर्फ इसलिए घर से निकाल दिया कि शक की वजह से कराए गए मेडिकल परीक्षण में उसे 'सेक्स

का आदी। बताया गया था। दरअसल एक विवाहित पुरुष से लंबे समय तक प्रेमसंबंध रहने के बाद त्यागी उस औरत ने समाज में जीने के लिए विवाह करना उचित समझा था, पर एक पुरुष द्वारा सताई गई औरत, दूसरे पुरुष द्वारा लगभग दुत्कार दी गई।

सेक्स की आदी बिनब्याही औरतें तो इस समाज के लिए त्याज्य हैं, मगर दम जगह मुंह मारने वाले पुरुष के लिए सब क्षम्य हैं। त्याज्य प्रेमिका पर सब उंगली उठाते हैं पर त्याज्य प्रेमी निःसकोच, स्वतंत्र, मस्त घूमता-फिरता है। सारे नियम, अनुशासन, कायदे केवल औरत पर क्यों लागू हों? क्यों सिर्फ औरत को बदनामी के भय के साथ जीना पड़े? क्यों ब्लैकमेल किए जाने से डरी औरत अपने खोल में रहने को मजबूर हो? क्यों मर्दों के अपराधों का बोझ उसे अकेले ढोना पड़े? मर्द के लिए समाज द्वारा सीमाएं तय किए जाने का रिवाज क्यों नहीं शुरू होता है?

ऐसे सैकड़ों सवाल हैं जो मर्दों के खिलाफ खड़े हैं। डरे हुए मर्द हमेशा औरतों की आड़ में कुकर्म करते रहे हैं। उन्हें इस तरह के अपराध करने की स्वतंत्रता देने वाला यह समाज सिर्फ औरत का मुंह काला करता है, मर्दों को उनके किए की सजा दिया जाना आखिर कब शुरू होगा? संबधों के नाम पर औरतों को बदनाम करने की सोचवाले दंभी पुरुषों को समझना चाहिए कि किसी भी रिश्ते में औरत-मर्द दोनों बराबरी के हिस्सेदार होते हैं। खासकर प्रेम के मामले में कुछ भी बलपूर्वक असंभव है। जानवर भी इतना समझते हैं, तभी तो मादा को रिझाने के लिए नर प्रेमानुराग से भरकर लगातार मिन्नतें करता है, वरना वह भी पुरुषों की तरह ताकत का रौब दिखा सकता है। और किसी से न सही, मर्दों को (नर) जानवरों से ही सीख लेनी चाहिए।

अपने भीतर झाँकें मर्द

नाइजीरिया में विवाहपूर्व गर्भवती हुई एक 17 वर्षीय बच्ची को इस्लामी कानून शरियत के तहत 100 कोड़े लगाए जाने की सजा पूरी दुनिया में बहस का विषय बनी। मानवाधिकार उल्लंघन से जुड़ी यह शर्मनाक घटना तमाम दबावों को ठेगा दिखाते हुए दोहराई गई। बलात्कार की शिकार इस बच्ची को गांव के कुछ सम्मानितों द्वारा 180 कोड़ों की सजा सुनाई थी। कनाडा के दबाव के चलते नाजीरियन सरकार के हस्तक्षेप करने के बावजूद, पीड़ित बच्ची को एक हजार की भीड़ के सामने 100 कोड़े मारे गए। इसकी सफाई में कहा गया कि उसे कभी माफ नहीं कीजिए जिसने खुदा का कानून तोड़ा है।

अब इन मुल्ला-मौलवियों या तिलकधारी पंडितों को कौन किस भाषा में समझाए कि खुदा के कानून में केवल औरत ही गुनहगार नहीं है। मर्द की गुस्ताखी को औरत के कंधों पर डालकर यह वहशियाना हरकत क्या धर्मभीरु समाज को शोभा देती है? यह वही नाइजीरिया है जहां पर 1,000 औरतों में से 31 को उनका शौहर जब मरजी तब पीटता है। लेकिन जो समाज बलात्कार की शिकार गर्भवती बच्ची को क्रूरता से सरेआम कोड़ों से मार सकता है, उससे बीवियों की पिटाई का विरोध मुनना ही असंभव है। पुरुषों ने सारे नियम, सारे कानून केवल औरतों के लिए ही बनाए हैं, अपनी गलतियों के लिए वह न केवल औरत को जिम्मेदार ठहराता है, बल्कि उल्टा सीना फुलाकर उसे सजा देने को भी अपना अधिकार समझता है। बेहयाई का चोला पहने फिरने वाले ये मर्द किसी विशेष धर्म में नहीं पाए जाते, बल्कि ये हिंदू, ईसाई, बौद्ध, सिख सभी धर्मों में बराबर फिरते हैं।

एक तरफ तो दुनिया-भर में तरक्की के ढोल पीटे जा रहे हैं, दूसरी तरफ विकसित से लेकर पिछड़े मुल्कों तक में औरतों के साथ जानवरों जैसा सुलूक किए जाने की प्रवृत्ति यथावत है। मर्दों में हिंसा की यह प्रवृत्ति घर से शुरू होती है, उनका सबसे पहला और शायद निरीह शिकार भी उसकी अपनी बीवी ही बनती है और इस घरेलू हिंसा की शिकार बीवियां पूरी दुनिया के सभी मुल्कों में पाई जाती हैं।

दुनिया-भर क मर्द अपनी मर्दानगी दिखाने के लिए औरतों को किस बेदुनी से अपना शिकार बनाते हैं— पिछले दिनों खुलासा किया है 'सेंटर फॉर हेल्थ एंड इक्विटी' द्वारा जारी पापुलेशन रिपोर्ट ने। उसके अनुसार दुनिया की हर चौथी औरत जीवन में एकाध बार जरूर पीटी जाती है। इस हिंसा का औरतों की सेहत पर बहुत खतरनाक असर पड़ता है। मार-पीट का यह असर केवल शारीरिक नहीं होता, बल्कि इसके कारण दर्द, शारीरिक अपंगता व तेज तनाव तक हो जाता है, जिससे उनका जीवन लंबे समय तक प्रभावित रहता है। मार-कूट करने वाले मर्द प्रायः अपने बचाव में कुछ न कुछ अनर्गल तर्क ढूँढ़ ही लेते हैं, पर अपनी गलती मानने में उनका अहम् आड़े आता है, जबकि वे नहीं जानते कि उनके द्वारा की गई ये वहशियाना हरकतें उनकी अगली पीढ़ी तक को प्रभावित करती हैं।

औरत दरअसल तो पुरुषों के लिए महज प्रापटी है, वह उसे जैसे चाहे, जब चाहे इस्तेमाल करने के लिए स्वयंभू मालिक होता है। किसी खुराट कसाई के मानिंद वह औरत का भरपूर इस्तेमाल करने की जुगत में लगा रहता है। पुरुषों के लिए औरत के शरीर पर नौचने-खसोटने व लात-धूँसे चलाने से सुविधाजनक और आसान कुछ और नहीं हो सकता। सर्वेक्षणों में पाया गया कि जिन औरतों के साथ मारकूट या यौन हिंसा होती है, उनमें अनचाहे गर्भ, यौन सक्रमण व अपरिपक्व बच्चे जनने की आशंका बहुत बढ़ जाती है।

अक्सर पिटाई करने वाले पतियों को शायद मालूम न हो कि इस पिटाई के कारण औरतों के अवचेतन में खतरनाक किस्म की निराशा घर कर जाती है, जिसका खामियाजा पूरे परिवार को भुगतना पड़ता है। ये पीड़ित औरतें चिड़चिड़ी, झगड़ालू, असामाजिक, झक्की और शक्की हो जाती हैं। हमारे देश में यूँ भी ऐसी औरतों की समस्याएं सुनने, उन्हें सुलझाने और उनके हिंसक पतियों पर अकुश लगाने के प्रति प्रायः उदासीनता ही बरती जाती है। नशेड़ी, चिड़चिड़े, शक्की और प्रायः असफल मर्द कुठाएं निकालने के लिए जाने-अनजाने अपनी बीवी को ही शिकार बना लेते हैं, परंतु दुर्भाग्य से उन्हें अपनी इस गलती का कभी भान नहीं होता और गाहे-बगाहे वे इसे बिना किसी संकोच या लोकलाज के दुहराते ही रहते हैं। यही नहीं अपने समाज में कुछ खतरनाक किस्म के मर्द ऐसे भी हैं, जो पत्नी की पिटाई को अपना अधिकार समझते हैं।

उत्तर प्रदेश के कुछ इलाकों में ऐसे ही हिंमती मर्दों के बीच किए गए सर्वेक्षणों के आधार पर यह निर्णय लिया जाना शायद स्वाभाविक है। पापुलेशन रिपोर्ट के ही अनुसार—अलीगढ़, बांदा, गोंडा, कानपुर व नैनीताल शहरों में

क्रमशः 15, 50, 27, 11 और 10 प्रतिशत मर्दों ने माना कि पत्नी की पिटाई की जानी चाहिए और इनमे से 17, 33, 20, 10 व 11 प्रतिशत ने यह भी स्वीकारा कि पिछले एक साल के दौरान उन्होंने अपनी पत्नी को पीटा है। इन महानतम पतियों से कैसे यह उम्मीद की जा सकती है कि एक दिन वे अपनी पत्नियों को सम्मानित जगह देने को राजी हो जाएंगे! दुर्भाग्य से ऐसे कोई सामाजिक या पारिवारिक दबाव भी नहीं है, जिनके चलते पुरुषों को डर हो कि यदि बीवी पर हाथ उठाया तो उन्हें इसका फल भुगतने को तैयार रहना पड़ेगा। यह बेहयाई बढ़ती जाती है और अपनी मर्दानगी दिखाने का अवसर वे चूकना नहीं चाहते। परिवारों में भी पत्नी पर हाथ उठाने वाला पति कभी दुत्कारा नहीं जाता, घर के बड़े कभी उसके इस धिनौने बरताव के लिए लताड़ते नहीं, इसलिए पीढ़ी दर पीढ़ी यह प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है।

दुनिया के तमाम विकसित व विकासशील देश भी इस मामले में कतई पीछे नहीं हैं। कोलंबिया में किए गए एक अध्ययन 15 से 49 वर्षीय औरतों पर किया गया, जिनमें से 19 प्रतिशत इस हिंसा का शिकार थीं। निकारागुआ और उरुग्वे के केवल एक-एक शहर में पाया गया कि वहां 10 से 33 प्रतिशत औरतों को यह हिंसा झेलनी पड़ती है। कनाडा (अकेले टोरंटो) में 29 प्रतिशत औरतों को पति या प्रेमी की मारपीट बरदाश्त करनी पड़ती है। अमेरिका की 22 प्रतिशत, स्विटजरलैंड की 21 प्रतिशत, तुर्की की 58 प्रतिशत, उतरी लंदन की 30 प्रतिशत, फिलिपींस की 26 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया की 47 प्रतिशत औरतें अपने पति या प्रेमी द्वारा शारीरिक, मानसिक व यौन रूप से सताई जाती हैं। अलग-अलग सर्वेक्षणों के आधार पर जुटाए गए ये आंकड़े औरतों के हकों के लिए लड़ रहे संगठनों व महिलावादियों के लिए शर्मनाक हैं। केवल झंडे गाड़ने, भाषणबाजी व सम्मेलन करवाने से ये अपराध थमते नहीं नजर आते। पूरी दुनिया की औरतें जब तक इस अपराध के विरुद्ध एकजुट होकर अपना जोरदार विरोध नहीं दर्ज करवाती तब तक पति के आवरण में छुपे ये अपराधी उत्पात मचाते ही रहेंगे।

पति बनने-भर से किसी को यह हक नहीं मिल जाता कि वह अपनी पत्नी के साथ पालतुओं जैसा बरताव करने लगे। जब मरजी हो पुचकार लिया और जब जी चाहा, दुत्कार दिया।

औरतों की बराबरी की मांग को मसखरी में उड़ाने वाले मर्दों की भीड़ दरअसल दुस्साहस से भरी होती है, जो अपने अपराध स्वीकारने को कतई तैयार नहीं होती। पढ़े-लिखे, सम्मानित ऊंचे ओहदों पर बैठकर समाज को सही दिशा

देने वाले मर्द हो या टेली-खोंमचा लगाने वाले, मजदूर, गरीब व अनपढ़ हो, अपने इस गुनाह को स्वीकारने को तैयार नहीं दिखते, बल्कि उनकी नजर में तो पत्नी को पीटना उनके अधिकारों में आता है। जो पत्नियां इसका विरोध करती हैं, उन्हें ये लोग खूबार, झगडालू, अपगधी प्रवृत्ति की औरतों में शामिल कर देते हैं, जबकि उन्हें समझना चाहिए कि जिस दिन भी वे मर्दों के ये हथकंडे अपनाने पर उतारू हो जाएंगी, उस दिन उनका घर में ही नहीं, समाज में इज्जत का लबादा ओढ़कर फिरना उड़न छू हो जाएगा।

केवल विरोध या कानूनों से यह भयावह मारपीट नहीं थमनी है, क्योंकि विकसित देशों की पारंगत, कमाऊ और दक्ष औरतों को जब यह हिंसा अब तक सहनी पड़ रही है तो हमारी घरेलू-मूक, सहमी-सी रहने की आदी औरतें कैसे कर पाएंगी विरोध? दरअसल मर्दों को बचपन से ही यदि औरतों की इज्जत करनी और बराबरी का हक देने की सीख दी जाए तभी स्थिति बदल सकती है क्योंकि आखिर कितनी पीढ़ियों तक ये जुल्म सहेंगी, कभी न कभी तो लगाम कसनी ही होगी।

कट्टरवादी पाकिस्तानी मर्दों की घटिया करतूतें

मोहम्मद साहब ने जब इस्लाम की नींव रखी होगी तक उन्हें जरा भी इल्म न होगा कि कट्टरवादी मुसलमान इतने क्रूर हो जाएंगे कि वे झूठी शान-बान के लिए अपनी औरतों को खौफनाक जीवन जीने के लिए मजबूर कर देंगे। राजनीतिक बवेला मचाने वाले पाकिस्तान में ढेरों मुसलमान मर्द अपनी औरतों को इज्जत के नाम पर मार डालते हैं या उनसे इतना क्रूर बरताव करते हैं कि वे किसी को अपना चेहरा दिखाने लायक नहीं बचतीं। 32 साला जाहिदा परवीन रावलपिंडी से 20 कि मी. दूर गुजरखान नामक इलाके में रहती है। उसके पति महमूद इकबाल ने करीबन डेढ़ साल पहले उसकी नाक एक उस्तरे से ताराश दी थी।

उसका आरोप था कि जाहिदा के उसके बहनोई के साथ अवैध संबंध है। रोज मारपीट करने वाला यह क्रूर शख्स एक दिन जब मस्जिद से लौटा तो उसके हाथ में उस्तरा था। उसने जाहिदा के हाथ-पांव बांधकर उसकी नाक (हड्डी के पास से) ताराश दी और भाग गया। यह घटना सिर्फ एक उदाहरण है, क्योंकि ऐसी घटनाएं वहां चोरी-छिपे प्रतिदिन घटती रहती हैं। एक अन्य घटना में 37 साल की परवीन अख्तर पर उसके पति ने इतना तेज एसिड फेंका कि उसका चेहरा, छाती और पिछला हिस्सा बुरी तरह झुलस गया। उसका पति अपनी पहली बीवी के पास लौटना चाहता था, इसलिए काफी सोच-समझकर उसने यह वहशियाना कदम उठाया। परवीन जब पुलिस में रपट लिखाने गई तो वहां उसके पति ने पहले ही घूस दे दी, जिससे कोई पड़ताल तक नहीं की गई। 40 साल की जरीना को घर से इसलिए निकाल दिया गया कि वह अपनी बेटी की उसकी पसंद के लड़के से शादी करने के पक्ष में थी, जबकि उसका सौतेला बेटा इस बात से नाराज था। गुस्से में उसने जरीना को पीटा और जब उसने पति से तलाक मागा तो उसकी दो साल की बच्ची को मार डाला।

ये कुछ ऐसी वहशियाना हरकतें हैं जिनके प्रति सारी दुनिया बेरुखी-भरा नजरिया रखती है। बेखौफ पाकिस्तानी मर्द अपनी औरतों को कसाइयों की तरह कुचल रहे हैं, मगर धर्म की आड में कहकर ढाने वालों के खिलाफ कहीं से भी

एक लफ्ज नहीं सुनाई देता। दुनिया का कोई धर्म इतना क्रूर तो नहीं हो सकता कि वह अपनी औरतों को ऐसे अमानवीय संबंध होने को मजबूर करे। लेकिन सदियों से ऐसा सिर्फ इसलिए होता आ रहा है, क्योंकि कोई इसका विरोध नहीं करता। मानवता के नाम पर दुनिया में करोड़ रुपया फूंकने वालों का सबसे ज्यादा इसका जवाबदेह होना चाहिए। क्यों वे इस पीड़ा को हाशिये में सरका देते हैं? क्यों नहीं उनका दिल इस अमानवीय बरताव पर पिघलता?

एमनेस्टी इंटरनेशनल की ताजा रिपोर्ट-2000 में माना गया है कि दक्षिण एशियाई औरतों की स्थिति दयनीय है, परंतु सरकारें इन्हें रोक पाने में नाकाम हैं। रिपोर्ट में साफ उल्लेख है कि पाकिस्तान में मान-मर्यादा के नाम पर हर वर्ष हजारों औरतें मार डाली जाती हैं। यह रिपोर्ट निश्चित रूप से पूरी दुनिया में जारी की गई होगी, कुछेक अखबारों में इसके अंश छपेंगे और (इसी तरह) कुछ लेख भी लिखे जाएंगे। लेकिन प्रति वर्ष की तरह इस वर्ष भी उतनी ही औरतें मारी या प्रताड़ित की जाएंगी, यही दुर्भाग्य है, औरतों का। उन्हें कभी इज्जत के नाम पर तो कभी मान-मर्यादा बचाने के लिए, कभी बदला लेने या दुश्मनी निभाने के लिए हमेशा ही सताया जाता है। पाकिस्तान में धर्म के नाम पर कट्टर मुसलमानों द्वारा हजारों औरतें या लड़कियां जला डाली जाती हैं या छुरा आदि भोंककर घायल कर दी जाती हैं या उनका अंग-भंग कर दिया जाता है, वे सारी जिंदगी अपाहिज बनकर बिताती हैं। ऐसा क्रूर हैवानियत-भरा बरताव करने वाले ये मर्द रिश्ते में औरतों के पति, भाई, पिता, चाचा, मामा कुछ भी हो सकते हैं। रिश्ता चाहे फर्क हो, मगर सीने में पत्थर और दिमाग में कचरा भरे ये सब मर्द एक-सा सोचते हैं। वहां चरित्र पर लांछन लगाए जाने पर, तलाक मांगने पर, पुरुष मित्र बनाने पर या परिवार द्वारा निश्चित रिश्ता न मानने पर औरतों को प्रताड़ित होना पड़ता है। चूंकि वहां पुलिस भी मर्दवादी रवैये का शिकार है, इसलिए प्रायः वे औरतों द्वारा की गई शिकायतें दर्ज ही नहीं करते। यदि दर्ज भी कर ली तो पतिपक्ष द्वारा मोटी घूस वसूलने के बाद मामला दबा दिया जाता है या घरेलू दुर्घटना कहकर टाल दिया जाता है। कुछ ऊंचे दर्जे के अधिकारी व मजिस्ट्रेट आदि यदि औरतों के पक्ष में कुछ करना भी चाहें तो गवाहों के अभाव में मामला टल जाता है। सामाजिक दबाव व कटमुल्लापने के चलते इस तरह की घटनाओं के खिलाफ गवाह इकट्ठा करना वहां आज भी नामुमकिन है।

मर्द जो कुछ करते हैं वह उनका अधिकार होता है पर औरतों के लिए यहा कोई अधिकार तय नहीं हैं। वे बस बरदाश्त करने के लिए शापित हैं।

इन पुरातनपंथी कट्टर मुसलमानों ने जिस संस्कृति को पोसा है, उसके अनुसार, यदि सताई जाने वाली औरत इस क्रूरतापूर्ण रवैये के कारण मर भी जाए तो इसे बाइज्जत मौत कहकर पल्ला झाड़ लिया जाता है। यही नहीं बल्कि 'कयाम' और 'दियात' जैसे इस्लामी कानूनों के जरिये पीड़िता का कोई भी रिश्तेदार अपने अपराध पर कुछ धन चुकाकर व माफी मांगकर खुद को पाक-साफ जता सकता है। औरत के शरीर के हर टूटे-क्षतिग्रस्त भाग के लिए अलग-अलग रकम निश्चित की गई है मानो वह कोई इमारत हो जिसे जब चाहा गिरा दिया, जब जरूरत पड़ी दोबारा ईंट-रोड़ी से बना लिया।

जाहिदा की नाक तराशकर उसे ताउम्र कुरूप बनाने वाला इकबाल अपना जुर्म कुबूलते हुए बेशर्मी से कहता है—'जो मैंने किया वह गलत है पर मैं अब संतुष्ट हूँ क्योंकि यह मैंने अपनी इज्जत और प्रतिष्ठा के लिए किया।' यही असलियत है मुसलमान मर्दों के सोच की। अधी-लूली-लंगड़ी, बेसहारा औरत यदि तलाक भी मांगती है तो उसे जेल में डाल दिया जाता है। चार शादियाँ करने को स्वतंत्र मर्दों की इस दुनिया में औरत के लिए दूसरी शादी के बाबत सोचना भी पाप है। पैगंबर द्वारा औरतों को तमाम अधिकार दिए जाने के बावजूद मुल्लाओं-मौलवियों द्वारा पुरातनपंथी, परंपराओं को लादकर औरतें सताई जा रही हैं। पाकिस्तान के मानवाधिकार आयोग के अनुसार, अकेले '98-99 में 850 औरतें मारी गईं। वहीं के प्रगतिशील महिला संगठन ने '94 से '99 के बीच साढ़े तीन हजार औरतों को बचाया। इन पर इनके संबंधी मर्दों ने पेट्रोल, किरोसिन या एसिड डालकर जलाने का या किसी धारदार हथियार से मारने का प्रयास किया था।

मगर ऐसी किस्मत वाली कितनी औरतें होती हैं जो इस तरह के क्रूरतम प्रहार से बच पाती होंगी। पति द्वारा सतायी जाने वाली औरतों के मां-बाप भी उन्हें वहां पनाह देना अपनी बेइज्जती समझते हैं। ऐसे में औरत मार खाती-कुटती, दुर्व्यवहार सहती चुपचाप शौहर के घर सड़ती रहती है।

केवल मानवाधिकार आयोग या महिलाओं के संगठनों द्वारा छिटपुट आवाज उठाने से वहां कोई सुधार नहीं आना है, यह सत्य है। इसे धिनौना कहा जाना शायद ज्यादाती न हो। शरीर के अंगों का भाव तय करके मुल्ला-मौलवियों ने दिखा दिया कि वे औरत को जानवर से भी नीचे के पायदान पर रखते हैं। खुदा ने शायद कहीं भी यह मशविरा नहीं दिया होगा कि अपनी औरतों अंगों का भाव तय करो और सुविधानुसार उन्हें काट-पीटकर तबाह करो। खुदा के लिए उसके

बदे औरत-मर्द में नहीं बंटे हैं, लेकिन बाहियात कट्टरपंथियों ने तमाम भ्रम फैलाकर सुविधानुसार नियम गढ़ लिए हैं।

साथ ही कट्टर मुसलमानों और मौलानाओं-मौलवियों को खुश रखने वाली वहा की सरकारें औरतों के हित में कदम उठाने वाली नहीं हैं। सैनिक शासक मुशरफ तक का कहना है कि ये मामले घरेलू हैं, इसलिए इनमें हस्तक्षेप करना लाजमी नहीं है। ऐसे में मुसलमान औरतें यह घटिया बरताव मुंह सिए सहते जाने को बेबस रहने के सिवा क्या कर सकती हैं!

विश्व-मंच पर स्थापा

दुनिया-भर की औरतों की दुर्दशा पर स्थापा करने के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा की न्यूयॉर्क में चल रही बैठक में जब औरतों को बराबरी पर लाने के लिए बहस चल रही थी, तभी यहां—हमारी जन्मभूमि भारत में—औरतों को नंगा करके सड़कों-गलियों में घुमाया जा रहा था। बैतूल (मध्यप्रदेश) की महिला पंच की वही के एक युवक वासुदेव कुनबी ने पूरी रात और दूसरे दिन इज्जत लूटी। पंच को दिलासा देने या हिम्मत बांधने की बजाए गांव-भर ने मिलकर उसके हाथ-पीछे बांधकर उसे जूतों की माला-पहनवाई और सारे कपड़े उतारकर गांव-भर में घुमाया। पंच के साथ यह अभद्र व्यवहार करने वालों में उसका पति और भाई भी शामिल थे। उनका आरोप था कि उसने खुद को अपवित्र कर लिया और परिवार को बदनामी का दाग लगाया।

औरत के साथ इससे ज्यादा वहशियाना हरकत और क्या हो सकती है? इस लिजलिजे समाज में औरत के प्रति तनिक भी लिहाज, व्यावहारिकता की उम्मीद बेमानी है। इस पंच के साथ जो कुछ भी हुआ उसका विरोध घर के मर्दों ने इसीलिए नहीं किया होगा, क्योंकि पूरे गांव से पंगा लेने से तो अच्छा है कि वे एक औरत से छुटकारा पा लें। क्योंकि औरत तो कभी भी, कहीं भी फिर पाई जा सकती है, पूरा समाज नहीं!

दुर्भाग्य से हमारे समाज में सारे दोष औरत के ही मत्थे मढ़ दिए जाते हैं। ऐसा पहली बार नहीं हुआ है कि बलात्कार के लिए दोषी बलात्कारी नहीं है। तिरस्कार, अपराधबोध केवल औरत को ही भोगना होता है। बलात्कार की शिकार औरत को कई दफा कानून की नजर में भी दोषी बताकर बलात्कारी को बाइज्जत बरी कर दिए जाने के सैकड़ों उदाहरण हमारे सामने हैं। जब विद्वान कानून विशेषज्ञ इस तरह के अव्यावहारिक निर्णय सुना सकते हैं तो एक पिछड़े इलाके के पुरुषों ने सामूहिक रूप से जो वहशियाना कृत्य किया, उसकी निंदा कौन करे?

ऐसे समय में जब महिलाओं के साथ भेदभाव वाले कानूनों को खत्म करने के लिए चीखा-चिल्लाया जा रहा है, इस तरह की घटनाएं हमारी असलियत खोल

ग़ही है। अपनी औरतो की दुर्दशा को रंगीन पन्नी में लपेटकर अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सामने पेश करने से या विकासवादी रवेया अपनाने का ढोंग-भर कर लेने से जमीनी स्तर पर सुधार की कतई गुजाइश नहीं रह जाती है। 1995 में हुए बीजिंग सम्मेलन में बनी कार्ययोजना लागू करने संबंधी दबावों के बावजूद सरकारी उदासीनता और प्रशासनिक लापरवाही का नतीजा है कि हमारी औरते आज भी जिंदा जलाई, मताई या बहशियाना तरीकों से मारी जा रही हैं। पिछले पांच सालों में ही अपने देश में औरतों को लिंग के आधार पर सताए जाने के 40 प्रतिशत मामले बढ़े हैं। बदले की भावना से या परिवार को नीचा दिखाने के लिए औरतो को सरेआम कपड़े उतारकर घुमाया जाता है या उनके साथ दुराचार किया जाता है।

स्थिति इतनी ज्यादा बिगड़ चुकी है कि औरतें अब इन स्थितियों का विरोध तो क्या चर्चा तक नहीं करना चाहतीं। वे जानती हैं कि मुंह सिए रखकर सब कुछ बरदाश्त करने में उनकी ज्यादा भलाई है। कई दफा जरा-सा भी विरोध उन्हें भारी कीमत चुकाने पर मजबूर कर सकता है। सामाजिक ताने-बाने से हारी ये औरते इन बेढब चर्चाओं से खुद को इसलिए नहीं बचातीं कि वे चर्चा नहीं करना चाहतीं, बल्कि उन्हें भय रहता है कि कहीं इसका खामियाजा जीवन-भर न भोगना पड़ जाए, क्योंकि मौत से भी भयानक यातनाएं देने वालों से यह समाज तुंसा पड़ा है।

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष द्वारा आयोजित एक कार्यशाला में सामने आया है कि देश की तकरीबन 5 करोड़ औरतें लापता हैं, जिनकी न पुलिस-प्रशासन को खबर है, न सरकार को उन्हें खोज निकालने की फिक्र। क्या दुनिया में ऐसा कोई समाज होगा जहां औरतों के खो जाने या लापता होने के प्रति इस तरह की असंवेदनशीलता बरती जाती है? हमारे यहां देहरी लांघी औरत को अपवित्र समझने वालों की कमी नहीं है। मानसिक रूप से अस्वस्थ औरतों को इलाज के नाम पर अस्पताल या मनोपचार केंद्र में छोड़ गए अमूमन लोग उन्हें वापस लेने कभी नहीं लौटते, क्योंकि पागलपन या विधवा हो जाने की आड़ में वे इनसे छुटकारा पा जाना चाहते हैं। औरतों की बदतर स्थिति के जिम्मेदार लोग तब भी अपनी सोई संवेदनाएं नहीं जागने देते, जबकि राष्ट्रीय क्राइम रिकार्ड ब्यूरो ने अपनी रपट में स्वीकार किया है कि पिछले 5 सालों में दहेज हत्या के मामलों में 15 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। 41 हजार से ज्यादा औरतें सताई जाती हैं, तो 16 हजार के करीब औरतो का प्रतिवर्ष अपहरण कर लिया जाता है। हजारों की संख्या में

प्रतिवर्ष बलात्कार होते हैं तो 15 साल की उम्र से पहले ही हर चौथी बच्ची मोत के मुंह में चली जाती है।

हमारे समाज में औरतों का शारीरिक-मानसिक दोनों तरफ से शोषण होता है, यह शोषण प्रायः परिवार द्वारा ही किया जाता है। लेकिन परंपराओं और नैतिकता का चोला ओढ़े हम दुनिया के सामने सीना ताने खड़े रहना चाहते हैं। हमारे यहां मध्यप्रदेश के कुछ इलाकों तथा दक्षिणी बिहार में औरतों को डायन बताकर, पत्थरों या अन्य औजारों से सार्वजनिक रूप से मार डाला जाता है। बेटी जनने वाली औरत को जुए में बैल के साथ जोतकर खेत जुतवाया जाता है, या दहेज की मांग पूरी न होने पर बहु को दो साल तक एक कमरे में कैद रखा जाता है (ज्योति धवन)। जिस समाज में आईएएस अधिकारी 15 से 25 लाख, डॉक्टर-इंजीनियर 8 से 14 लाख और सरकारी नौकरी में चतुर्थ श्रेणी कर्मी 2-4 लाख दहेज के नाम पर विकते हो, जहां औरतों की खरीद-फरोख्त के लिए मड़ियां हों, जहां बेटी जन्मने की आशंका से गर्भ गिराया जाता है, और तो और, जहां नवजात बच्चियों को 50 से 200 रुपये में गला दबाकर मरवा दिया जाता हो, पति हिंसक रूप से शारीरिक संपर्क करने को स्वतंत्र हो, उस समाज को सुधारने के लिए सिर्फ कागजाती कानून क्या कर पाएंगे?

सरकार व उसके पैसों पर चलने वाले तमाम संगठनों तथा विदेशी मदद के लिए मुंह बाए फिरते गैरसरकारी संगठनों की बढ़ती भीड़ विश्व-मंच पर अपनी फजीहत होने से बचाने के लिए उत्सुक क्यों नहीं हैं—अभी तो यही अनसुलझी गुथी मुंह बाए खड़ी है। औरतों के साथ होने वाली शृंखलाबद्ध घटनाएं, सरकारी आकड़े, रोजाना अखबारी कागज पर पसरने वाली बलात्कार, दहेज हत्या, व्यभिचार की खबरें इन समाज-सुधारकों का खून क्यों नहीं खौलातीं? औरतों के खिलाफ होने वाले हर तरह के अपराधों से निपटने के लिए सरकार पर महिला सांसदों द्वारा कड़े-कानून, दंड विधान लागू करने के लिए दबाव क्यों नहीं दिया जाता?

इतनी खौफनाक स्थिति को कालीन के नीचे छिपाकर, विश्व मंच पर खड़ी हमारी महिला एवं बाल विकास राज्यमंत्री सुमित्रा महाजन दावा करती हैं कि वह बीजिंग दस्तावेजों के अनुपालन में किसी प्रकार की ढील नहीं आने देंगी। उन्होंने यह भी माना की बीजिंग में लिए गए निर्णयों और तय प्रावधानों का भारत पूरी तरह समर्थन करता है व उनका अनुपालन कर रहा है। अपनी आंखों पर पट्टी बांधे, कानों में रुई ठूसे बैठी गूंगी सरकार के बिनब्याहे प्रधानमंत्री यदि इस तरह के

दावे-पेश करते तो उतना कष्ट नहीं होता मगर महाजन ने औरत होने के बावजूद जैसी दिखावटी बातें और दावे पेश किए, वे हैरतंगेज हैं। हो सकता है, सरकारी प्रतिनिधि होने के कारण उन्हें दबाव के चलते अपनी जुबान रटतू की माफिक चलानी पड़ी हो, मगर यह करोड़ों भारतीय औरतों के प्रति किया गया क्रूर अपराध है। इस सरकारी दौरे पर गई 18 प्रतिनिधियों का क्या यह नैतिक दायित्व नहीं बनता था कि वे अपने यहां की औरतों की स्थिति को महसूस, उनकी पीड़ा को समझें, उनसे मिलें, उनके दुःख-दर्द को अखबारों, मैगजीनो, टीवी या कंप्यूटर स्क्रीन पर देखने-पढ़ने की बजाए अपनी आंखों-कानों से देखें-सुनें? क्या उनका फर्ज नहीं बनता था कि वे यहां से खाना होने से पहले धरातली असलियत से जूझती औरतों की पीड़ा से निपटने के उपायों पर देसी मंच पर बहसें? क्या वे सरकारी प्रतिनिधि बनने से वंचित रह जाने के लालच में मुंह सिए रखकर करोड़ों औरतों के साथ अन्याय नहीं कर गईं? यदि बीजिंग सम्मेलन के बाद भी हमारी औरतों की दुर्दशा में रत्ती-भर फर्क नहीं आया तो हम बार-बार विश्व-मंच पर स्थापा क्यों करें?

उत्सवमग्न मर्दों होश में आओ

हिंदू समुदाय को उत्सवप्रिय माना जाता है। सदियों से वह विभिन्न ऋतुओं में पारंपरिक त्योहार मनाता आ रहा है। वैश्वीकरण, बाजारवाद और अर्थ की बढ़ती महत्ता भी इस समुदाय से उत्सवों को अलग नहीं कर पाई है। आधुनिकीकरण, शहरी चकाचौंध और विदेशी संस्कृति के प्रचलन ने इन त्योहारों के पारंपरिक रूप में भले ही परिवर्तन ला दिया हो, मगर सदियों से औरत और मर्द के बीच का जो भेद इन त्योहारों और पर्वों में था, वह आज भी ज्यों का त्यों है। औरत को भुलावे में रखकर, उसकी भावनाओं के साथ छल करते हुए इन उत्सवों का मजा दरअसल हमेशा मर्दों ने ही लिया है।

आज भी यही परंपरा कमोबेश कायम है। कार्तिक का पूरा महीना पर्वों से भरा होता है, मगर इसमें पति के नाम पर पूजा, बेटों के लिए व्रत, परिवार की समृद्धि और सुख की उपासना होती है। यहां एक भी त्योहार औरत के सुख, उसकी शांति, उसकी समृद्धि के लिए नहीं है। यह सच है कि परिवार के सुख में औरत का सुख समाहित होता है, फिर मर्द के लिए अलग और बेटों के लिए अलग से पर्व क्यों हैं?

दीपावली सुख-समृद्धि की कामना का त्योहार है, मगर इसमें लक्ष्मी के साथ पहले गणेशपूजा का प्रावधान जुड़ा होना बताता है कि पुजारियों-पुरोहितों ने इस भय से यह परंपरा बनाई होगी कि अकेली लक्ष्मी क्यों पूजी जाए। यह ठीक है कि गणेश प्रथम पूजनीय देवता हैं, मगर गणेशोत्सव (गणेश चतुर्थी) के दौरान तो उन्हें अकेले पूजे जाने का प्रावधान है। खैर, पंडे-पुजारियों को यह तर्क बुरे लग सकते हैं, वे इन अतार्किक प्रथाओं पर उंगली उठाने-भर से ही रूठ जाया करते हैं। इसी से जुड़ा एक अन्य मुद्दा है पूजा का।

पूजा-अर्चना करना मुखिया के क्षेत्राधिकार ही हुआ करते है। यह सच है कि उसकी पत्नी को बाएं बाजू में बैठने का प्रावधान है, मगर सर्वाधिकार तो मर्द के खाते में सुरक्षित हैं। दीपावली हो या होली इन त्योहारों में आनंद, मस्ती और उल्लास तो मर्दों की झोली में आता है। चलिए, एक पटाखा चलाने को ही उदाहरण मान लीजिए। पटाखे कितनी औरतें चलाती दिखती हैं?

इस मामले में दिमाग पर ज्यादा जोर नहीं डालना पड़ेगा। पटाखा जलाकर मौज मारने वाले मर्दों ने कभी पलटकर यह सोचा है कि औरत का उत्साह-उल्लास कहाँ है? होली के रंगों में डूबे, पटाखे और रेशमियों से आनंदित तमाम मर्दों के दिमाग में क्या कभी ये सवाल नहीं कौंधते कि उनके और औरतों के उत्सव मनाने में इतना अंतर क्यों है? कि औरतें हमेशा उनकी और परिवार की खुशियों और सुखों से सतुष्ट क्यों हैं? कि औरते भी उनकी तरह आनंदित और उल्लसित जीवन जी सकें? कि औरते भी उनके पेट और जीभ के अलावा कुछ सोचने को स्वतंत्र हो सकें? कि औरतें भी उनकी तरह खुलकर मौज-मस्ती को भोग सकें? जिस दिन मर्दों के दिमाग में ये सवाल कौंधने लगेंगे, उस दिन से ही औरतों के पर्वों और त्योहारों को मनाने के तौर-तरीके बदल जाएंगे।

हर उत्सव, हर पर्व में औरत तो मर्द की खुशी का केवल आधार ही बनकर रह जाती है। वह तो रोजमर्रा की तरह चौंके में ही खटने को मजबूर होती है, बल्कि कहिए तो रोज से भी ज्यादा। पकवान-मिठाइयाँ और भी जाने क्या-क्या पकाकर घर के मर्दों और उनके मित्रों-रिश्तेदारों की आवभगत में उसे खुद का खयाल ही नहीं रह पाता है। अक्सर देखने में आता है कि समाज की चिंता में घुलने वाले बाजारीकरण के विरोध में गाते धूमते हैं कि अब तो घरों में पकवान बनाने की बजाय बाजार से खरीदने के प्रचलन ने परंपराओं पर प्रहार किया है।

उनके अनुसार तो एक सुगढ़ औरत का दायित्व है कि वह घर-परिवार के मर्दों के मोटी तोर्दे और चमड़े की जीभ के रसास्वादन के लिए दिन-रात हाडतोड़ मेहनत करे। उस पर भी यह उम्मीद 100 प्रतिशत रहेगी ही एक मेहमान के आने पर उसके होंठ मुसकराते मिलें, पकवान लज्जतदार दिखें और पूरी चुस्ती-फुर्ती से वह अपनी सारी ऊर्जा का उम्दा प्रयोग करती दिखे।

दरअसल यह औरत विरोधी प्रवृत्ति है, वे नहीं चाहते कि औरत चूल्हे से छुट्टी पाए। वे नहीं चाहते कि औरत को अपने बारे में सोचने की फुरसत मिले वरना यह न कहते कि तीज-त्योहारों के मौके पर नई परंपरा के अंतर्गत मर्द कुछ नया कर दिखाएं, कुछ पकाएं, साज-सज्जा करें, क्योंकि केवल रंग-बिरंगे कपड़े और गहने लाद लेने से औरत के उत्सवमय हो जाने पर विश्वास करने वाले यह स्पष्ट रूप से जान लें कि जब तक औरत अपनी भावनाओं पर रिश्तों और अपनत्व के दबाव में यह सब बरदाश्त कर रही है, तभी तक मर्दों की मौज-मस्ती कायम है। जिस दिन उसे अपने इस दोगम दर्जे का अहसास हो जाएगा, वह मर्दों के द्वारा सुखी, खुशी और उल्लसित होना छोड़ देगी।

होली पर भी मर्द दारू, गांजा, अफीम में डूबकर सड़कों पर हल्ला करते

हे, उत्पात मचाते हैं, छेड़खानी करते हैं और औरतें घरों में दुबकी उनके लिए पकवानों की झड़ी लगा रही होती हैं, घर सजा रही होती हैं और उन्हें खुश करने के लिए बन-संवर रही होती हैं। होली को औरतों का त्योहार तो बिल्कुल ही नहीं माना जा सकता। उल्लास, उमंग, मजा शब्द तो औरतों से बचपन में ही छिन जाते हैं। उसके हिम्मे तो केवल घर सवारना, पकवान बनाना और मर्दों की सेवा में तत्पर रहना ही आता है।

पीढ़ियों से बनी इस संरचना को जीते हुए औरत इससे बाहर प्रायः सोच भी नहीं पाती। हुल्लड़ मचाते मर्द छेड़छाड़, भद्दी बातों, मजाक, फूहड़ मुहावरों या गानों के मार्फत अपनी कुंठाएँ तक निकाल लेते हैं पर औरतों के लिए यह सब भी निषिद्ध है। यहां तक की जरा घरवालों की नजर पड़ी तो लड़ाई-झगड़ों की नौबत आते भी देर नहीं लगती।

यही नहीं हमारे समाज में भाषा का स्तर भी बंट चुका है। मर्दों की भाषा औरत की भाषा से बहुत अलग है। मर्द आपसी बोलचाल में गाली-गलौच, घटिया शब्द, छींटकशी करने को स्वतंत्र है, जबकि औरत पर जबरदस्त पाबंदी कायम है।

जहां तक संभव है मर्द उत्साह, उमंग का चरम भोग लेता है, तो अपने अदर की खटास इस भाषाजन्य क्षुद्रता के साथ निकाल लेता है। लेकिन औरत कहां जाए, उसके लिए तो न तो खुलकर हँसने का मौका है, न ही अपनी पीड़ा व्यक्त करने की छूट ही। उसे तो बस मर्दों द्वारा, मर्दों के लिए गढ़ दिया गया है। एक पारंपरिक सोच में ढाल कर, उसे न बोलने की छूट दी गई है, न सोचने-समझने की। पति, भाइयों और बेटों के सुफल जीवन, उनकी लंबी उम्र और उनकी समृद्धि के लिए करवाचौथ, भैया दूज और अहोई-आठे या छठ मनाने वाली यह तथाकथित आधुनिक औरतों की भीड़ यह नहीं सोच पाती कि उसे माध्यम बनाया जाता रहा है।

परंपराओं और रूढ़ियों को भोगती इन औरतों को जिस दिन अपनी स्थिति का भान हो जाएगा, उस दिन मर्दों के हाथ से सत्ता स्वयं ही खिसक जाएगी। औरत को पग-पग पर ठगने वाले ये भद्र मर्द भूल चुके हैं कि औरत की खोपड़ी में भी वैसा ही दिमाग है, जैसा उनकी खोपड़ी में है, वैज्ञानिक रूप से थोड़ा छोटा ही सही (वे न भूलें कि मोटा दिमाग क्या होता है) उसकी कपाल की भीतरी जगह खाली नहीं है, जैसा वे अब तक समझते आए हैं।

बीना रमानियों से 'लड़कियाँ' बचाइए

बीना रमानी के रेस्तरां में पूर्व मॉडल जेसिका लाल की 35-40 लोगों की मौजूदगी में आधी रात को गोली मारकर की गई हत्या, महीनों चर्चा का विषय रही। इस एक घटना से केवल उच्च वर्ग के तमाम गोरखधंधे ही नहीं उजागर होते हैं, बल्कि मध्यमवर्गीय अति महत्वाकांक्षी लड़कियों के रातोंरात स्टार बनने के चस्के के पीछे की असलियत भी फूट गई है। हजारों-लाखों लड़कियों को इस चंगुल से बचाया जाना बहुत जरूरी है। सिर्फ मॉडलिंग ही नहीं, बल्कि छोटा परदा-बड़ा परदा सब जगह रमानी जैसियों के मजबूत हाथों की जकडन हैं। इस स्थिति को तोड़ना तो आज की व्यवस्था में नामुमकिन है, मगर हम अपनी लड़कियों को यदि इनसे बचाकर लें तो यही हमारी जीत होगी और हमारी बच्ची की जीवन-रक्षा भी।

56 वर्षीय रमानी देशी खाल में विशुद्ध रूप से एक विदेशी महिला है। वह, उसका कनाडाई पति और अमेरिकी पासपोर्टधारी उसकी बिटिया मालिनी रमानी, रेस्तरां तो अवैध रूप से चलाती ही थीं, उसी से जुड़े उनके बाकी सारे धंधे भी अवैध और अनैतिक आचार की जद में हैं। अब जब पूर्व मॉडल की मौत ने इनके गोरखधंधों की परतें उधेड़नी शुरू कर ही दी है तो पुलिस के आला अधिकारी यह भी बयां कर रहे हैं कि रमानी पर मात्र अवैध रूप से शराबखाना चलाने का आरोप नहीं है, बल्कि विदेशी नागरिक होकर भारतीय कानून तोड़ने की जांच भी की जाएगी। रमानी का बीजा काफी समय पहले ही समाप्त हो चुका था। (रमानी) बीना वल्द तीरथ सिंह ललवानी ने अपना उपनाम (सरनेम) अपने पूर्व पति एन डी. रमानी से लिया है, हालांकि उससे संबंध विच्छेद हुए लगभग पंद्रह साल हो चुके हैं। शरीर, विचार और जन्म से विदेशी मूल की रमानी से भारतीय समाज, संस्कृति, मूल्यों और सस्कारों की समझ होने की उम्मीद रखना बेवकूफी है। विदेशी रंग में रंगी इस अधेड़ उम्र की महिला के लिए औरत के शरीर का इससे अच्छा इस्तेमाल और क्या हो सकता है कि उसे बदनउघाड़ू लिबास में दारू समेत परोसा जाए। रमानी सपरिवार शराब-शबाब के इस धंधे में न मालूम कब से लिप्त है, यह न तो अब खुला है और न ही भविष्य में खुलेगा, क्योंकि ऐसी जगहों

पर इज्जाय करने जाने वालों के पास रुतबा, पहुँच, पैसा सब कुछ है। यदि रमानी की पोल खुली तो वहाँ लुत्फ उठाने वालों की भी लिस्ट सामने आ जाएगी और ऐसा कौन चाहेगा कि उसके मुँह पर सरेआम कीचड़ पड़े।

शायद ही किसी में इतनी क्षमता होगी कि वह तदूर में फूँकी जाने वाली खूबसूरत औरत नैना साहनी को भुला पाया हो। रोएं खड़ी कर देने वाली यह घटना शायद वीभत्सता का चरम रही होगी। औरतों के जिदा जलाने का रिवाज तो अपने समाज में खूब है, मगर नैना की तरह टुकड़े-टुकड़े काटकर बटर के साथ तंदूर में फूँकने का प्रचलन नहीं हो पाया है। सुशील शर्मा भी कोई कम पहुँच वाला आदमी नहीं रहा, कांग्रेस पार्टी और वरिष्ठ राजनीतिज्ञों तक उसकी खासी पहुँच रही है। यही कारण है कि खौफनाक कारनामों के बावजूद उसके चेहरे पर कभी शिकन नहीं दिखी। सुशील को तो उसकी हिम्मत और मर्दानगी के लिए तमगे दिए जाने चाहिए। पर हुआ क्या? तमाम खबरों-बहसों के बावजूद वह एक मामूली जेबतराश की माफिक जेल के सोखचों के पीछे धकेल दिया गया और कुछ दिनों बाद ढर्रे की जिंदगी अपनाकर फिर सफेदपोशों के बीच अट्टहास करता दिख जाएगा। न तो उसमें स्वयं अपराधबोध पैदा होगा और न ही यह क्रूर समाज उसकी हैवानियत के लिए उसे कोंचेगा।

इस चर्चित और विवादास्पद मामले में शराब, बिगड़ैल रईसजादों, ऊँची पहुँच और व्यवस्था को ठेगा दिखाने वालों से बहुत अलग एक सच्चाई और भी है, जिसे अलग-अलग ढंग से दबा-छिपाकर रखने का प्रयास किया जा रहा है। यह भी असंभव नहीं है कि मामला उधड़कर सामने आए ही। रमानी और मृतका के संबंधी कभी नहीं चाहेंगे कि उनकी दरिंदगी समाज के सामने खुलकर आए। यहाँ मामला शराब परोसने का नहीं, बल्कि शुद्ध रूप से लड़कियाँ परोसने का है। रमानी रेस्तराँ की आड़ में क्या-क्या करती थी इसकी विस्तृत जानकारी तो जाँच से पता चलेगी, पर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि रमानी की ही तर्ज पर उनके स्तर की कई हस्तियाँ, पार्टियों की आड़ में लड़कियाँ परोसने का धंधा करती रही हैं। अब इससे भी मुकरा नहीं जा सकता कि हत्यारे की माग शायद शराब नहीं जिस्म थी, चूँकि मॉडल ने खुसर-फुसर के बाद मना किया था, तो कौन कह सकता है कि सौदा न पटने पर या लड़की के राजी न होने पर लड़के को तैश आ गया और उसने गोली चलाकर उसका अहम् चकनाचूर करने की कोशिश की। एलीट वर्ग की इस तरह की पार्टियों में मध्यम तथा उच्च वर्ग की औसत दिखने वाली अति महत्वाकांक्षी लड़कियों को भड़कीली पोशाकों में

यू ही शराब या कबाब परोसने के नाम पर पेश किया जाता है। यहा खामी मोटी रकम चुकता करके अपनी पसंदीदा लड़की को अपने साथ ले जाने की छूट होती है। घर-परिवार और रिश्तों से ऊबे इन बिगडैल, उफनाते पैसावालों का यह रोजमर्रा का शौक बनता जा रहा है। दरअसल तडक-भड़क और चकाचौंध की आड़ में ये इंस्टेंट चकलाघर चलाने का उदाहरण है। इन पर न तो कोई उंगली उठा सकता है और न ही इनकी परतें खोली जा सकती हैं, क्योंकि इन्हें चलाने और यहां आने वाले दोनों ही ऊंची पहुंच के मालिक होते हैं। डंडा खटखटाता कोई दरोगा इनकी देहरी लांघ नहीं सकता, इसलिए ये बेधडक, सीना फुलाए अपने धंधे चलाने में मशगूल रहते हैं। वरना क्या वजह है कि ऊंची पहुंच वाली जानी-मानी हस्ती होने के बावजूद रमानी ने मीडिया को न तो कोई स्पष्टीकरण दिया और न ही मॉडल के घरवालों ने तमाम आरोपों-प्रत्यारोपों का कोई प्रत्युत्तर दिया या पलटकर जवाबी बयान दिए।

गैरकानूनी रूप से चाहे शराब परोसना हो या जिस्म, दोनों ही काम जिस समाज में घृणित माने जाते हैं, ये लोग उससे बहुत ऊपर हैं। उच्च वर्ग से आने वाले इन तमाम लोगों के लिए यह मात्र लुत्फ उठाने तथा 'फॉर ए चेंज' का मामला है। इनके लिए एक गिलास विदेशी वाइन का हाथ में होना या एक आकर्षक लड़की का बगल में सोना, बराबर ही है। जिस्म का इससे अच्छा और सफाई से चलाया जाने वाला धंधा कोई दूसरा नहीं हो सकता। शार्टकट में पैसा कमाने की चाह में सैकड़ों मध्यवर्गीय आकर्षक लड़कियां रमानी जैसियों की सिरफिरी बातों में आ जाती हैं। यहां शुरू होने वाले चंगुल का कोई अंत नहीं होता, वे पहले लालच फिर ब्लैकमेलिंग के चलते इसमें धंसती ही चली जाती हैं। एक दिन उकता-कर कोई बिगडैल इन्हें मार डालता है या घबराहट में ये खुद ही मौत को गले लगा लेती हैं। ऐसा ही कुछ करने का बीना ने भी प्रयास किया था, फर्श वगैरह धुलवाकर सबूत मिटाए पर बात न बन पाई। शारीरिक आनंद लूटने वाला यह वर्ग पैसा फेंककर सब्जी-तरकारी की माफिक लड़की लाता है, बिना किसी संवेदना या तर्क के उसे इस्तेमाल करता है और फेंक (छोड़) देता है।

सबसे दुर्भाग्यपूर्ण है समाज में इस तरह की लड़कियों के एक पूरे वर्ग का पनपना। ये लड़कियां अति महत्वाकांक्षी हैं, सुविधाभोगी हैं—पैसा, ऐशोआराम, अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त लेबल वाले कपड़े और पांच सितारा होटलों का सुख इनको यह सब करने के लिए विवश कर देता है, जो सामाजिक दृष्टि से हेय है। थोड़े से पैसे और सुख के लिए ये अपना शरीर नुचवाती हैं और बाहर की दुनिया

में खुद की सुखी, ग्लैमरस और आजादखयाल, बिंदास छवि पेश करती हैं। इनमें से कुछ लड़कियां पारिवारिक दबाव या जरूरत के चलते, कुछ अनजाने में तो कुछ ब्लैक मेल किए जाने के डर से इसमें फंसती चली जाती हैं।

रमानी जैसी महिलाएं चमक-दमक और ऐशो-आराम की इस दुनिया के पीछे क्या-क्या गुल खिलाती हैं, इसका खुलासा होना नामुमकिन है। सामाजिक रूप में प्रतिष्ठित ये बिगडैल लोग अपनी इच्छाएं तृप्त करने लालबत्ती इलाको में इसलिए नहीं जा सकते क्योंकि इनकी प्रतिष्ठा को चोट पहुंचती है तथा शरीर की दुकान लगाने को मजबूर वे औरतें इनके स्टैंडर्ड से बहुत पीछे होती हैं। ऐसे में इस तरह के रेस्तरां, मसाज पार्लर और खास पार्टियां इन्हे मनचाही मुद्रा के एवज में वह सब मुहैया कराती हैं, जिसके लिए तमाम मौसियों को पुलिस वाले सरेआम जलील करते हैं और डंडा फटकारते थाने तक घसीट लाते हैं।

संवेदनशील लड़कियां कहां जाएं?

हमारे पड़ोस की एक लड़की ने आत्महत्या कर ली। आत्महत्या करने की वजह कोई मामूली-सी बात बताई गई। कुछ दिन पहले ही अखबारों में खबर थी कि बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले के कुमारी गांव में तीन नाबालिग लड़कियों ने खुदकुशी कर ली थी। पुलिस के अनुसार, उनके मां-बाप गरीब बीड़ी मजदूर थे, जिनके लिए बच्चियों की पढ़ाई बेकार थी। इसलिए वे चाहते थे कि बच्चियों की शादी कर दी जाए। शादी के विरोध में बच्चियों ने खुद को खत्म करने का कड़ा निर्णय ले डाला।

बीते साल कानपुर के पास के एक कस्बे में एक मेधावी युवा लड़की ने भी इस बात पर खुदकुशी की थी कि उसके मां-बाप नहीं चाहते थे कि वह नौकरी की चाह में ज्यादा पढ़े। उन्होंने लड़की पर दबाव बनाया कि वह शादी के लिए हां कर दे, क्योंकि नौकरी मिलना आसान नहीं है। लड़की के दिल को यह बात छू गई। किसी से बिना कुछ बोले उसने खुद को कमरे में बंद कर लिया और पंखे से लटक गई। कुछ दिन पहले ही हरियाणा के एक जाट परिवार की बहू ने जहर इसी विरोध में खाया कि परिवार वाले उसे औरत की तरह रहने पर मजबूर कर रहे थे।

ये या इस तरह की अन्य घटनाएं, जो लगभग हर वर्ष देश के किसी न किसी कोने में दोहराई जाती हैं, सबूत हैं संवेदनशील लड़कियों के समाज में जीने के हक छीनने के। ये समाज किसी लड़की को अधिकार नहीं देता है कि वह अपने दिमाग से कुछ सोचें, सपने देखें और भविष्य की कल्पनाएं करें। लड़की जन्मते ही परिवारवाले एक सांचा बना देते हैं और चाहते हैं कि लड़की उसी सांचे में दुबककर अपना जीवन काट दे। चाहे पढ़ाई का मसला हो या नौकरी चुनने का, गृहस्थी बसानी हो या जीवन साथी का चुनाव करना हो, सब जगह घर-परिवार हावी रहता है। उन्हें लगता है, उनके बनाए रास्तों पर लड़कियां भेड़ों की तरह चलती चली जाएं। कानपुर की तीन लड़कियों द्वारा की गई सामूहिक आत्महत्या का मामला हो या आगरा की दो बहनों का, इन पर लगातार बहम हुई

व लंबे-चौड़े बयान छपे। परंतु अंततः लड़कियों के हिस्से क्या आया। आज भी कानपुर की तीन बहनों की आत्महत्या की कड़ी में लड़कियों द्वारा दहेज के विरुद्ध आत्महत्याएं जारी हैं। दुर्भाग्य से ये खबरें छिट-पुट ही छप पाती हैं, बल्कि कई दफा छापने के लिए इन पर तबज्जो ही नहीं दी जाती।

हजारों संवेदनशील लड़कियों को विवाह की उम्र में आप जबरदस्त डिप्रेशन का शिकार पाएंगे। इसका कारण उनका अविवाहित रह जाना नहीं होता, बल्कि अपने परिवार को दहेज के लिए दर-दर की ठोकरें खाता देख वे स्वयं को अपराधी समझने लगती हैं। हद तब होती है जब तमाम कर्जा लेने, घर गिरवी रखने, सारी जमा-पूंजी लगाने के बावजूद लड़के के घरवाले सतुष्ट नहीं होते और उठते-बैठते लड़की को ताने सुनाते हैं कि वह पूरा दहेज नहीं लाई। हारकर कुठित लड़की मौत को गले लगा लेती है, जिसे बाद में यह कहकर प्रचारित किया जाता है कि वह मानसिक बीमारियों से पीड़ित थी या कहा जाता है कि लड़की गुस्सैल, चिड़चिड़ी और सनकी थी। ऐसा क्यों था, इसके कारणों पर कोई चर्चा नहीं की जाती।

भोपाल के नजदीक एक गांव में एक औरत को उसके पति ने बैलगाड़ी में बैलों की जगह जोतकर खेत में दौड़ाया। उस औरत का जुर्म इतना था कि वह बेटा नहीं जन सकी थी, उसकी सभी औलादें बेटियां थीं। बेटा या बेटी जनना औरत के हाथ नहीं होता, यह कौन समझाएगा पुरुषों को। विज्ञान बार-बार चीख-चीखकर कहता रहे कि आदमी के क्रोमोजोम ही बेटा-बेटी का निर्धारण करते हैं, मगर पुरुष के संकीर्ण मगज में यह तर्क कहां घुसने वाला? चूंकि हमारी परंपरा है कि हर दोष के लिए औरत को लांछित करो, औरत को ताने दो, गालियां दो, पीटो, जबरन घर से निकाल दो या मरने के लिए छोड़ दो। खूटे से बंधी गाय या पिंजरे में कैद तोता और घर की औरत इस समाज में एक ही वर्ग में आते हैं।

तमाम अधिकार और आरक्षण सरीखी बातें करने से पहले हमें चाहिए कि लड़कियों को अपनी तरह से खुलकर सोचने, पंख फैलाने का मौका दें तभी दबू पिछड़ी और कुंठित लड़कियों को नए सिरे से सोचने का मौका मिल सकेगा। बर्दश, दबाव, छींटाकशी और कड़ा अनुशासन लड़की के व्यक्तित्व के विकास में बाधक होते हैं। मनोचिकित्सकों का मानना है कि ऐसी ही संवेदनशील महिलाएं हिस्टीरिया जैसे रोगों की चपेट में आ जाती हैं। पुरुष अपनी इच्छाएं येन-केन-प्रकारेण पूरी करने को स्वतंत्र है तो औरत सीधे और सरल रास्तों से भी क्यों न

आगे बढ़े! बच्चियों की पढ़ाई से लेकर उनके खेलने-कूदने, विषय चुनने यहाँ तक दोस्त बनाने में भी घरवालों का हस्तक्षेप होता है। उसके कपड़े, फ्राक की लंबाई, ब्रा का साइज, बालकनी में खड़े होने के टाइम से लेकर साथी चुनने तक परिवार की घुसपैठ लगातार बनी रहती है।

परिवार का सबसे छोटा मर्द भी उसके उठने-बैठने, मनोरंजन और जाने-आने पर आपत्ति करने को भरपूर स्वतंत्र होता है। अपना समाज लड़की के जन्मते ही उसके इर्द-गिर्द एक तालिबानी शासन-सा गढ़ देता है जिसे पार करना उनके लिए लगभग असंभव हो जाता है।

समानता को ठोकर मारिए, प्रकृति से मिले गुणों को यदि स्वतः प्रवाहित होने दिया जाए तो लड़की किसी से कम नहीं होती—यह संस्कार डालने की बजाए, समाज में उसे डराया जाता है। स्थितियों से लड़ने के बजाय उसे कैद में रहने की नसीहत दी जाती है। छेड़छाड़, छींटकशी, अशोभनीय टिप्पणी, संवेदनशील अंगों पर प्रहार, कामुक निगाह से देखने या घूरने, अभद्रता से पेश आने वालों से मुकाबला करने या आपत्ति दर्ज किए जाने के बजाए उसे ऐसी स्थिति से दुबकने का पाठ पढ़ाया जाना कतई अनुचित है। क्योंकि अभद्र पुरुषों को ऐसे मौकों की तलाश हमेशा ही रहती है, एक लड़की दुबकी तो दूसरी को शिकार बनाया। यदि पहली बार में ही इन्हे करार झटका पड़ जाए तो क्या मजाल कि दोबारा ऐसी हरकत का प्रयास भी किया जाए।

इस सबके लिए जरूरी है कि स्कूली शिक्षा में बदलाव लाया जाए। संवेदनाओं के साथ खिलवाड़ करने वाली स्थितियों से जूझने लायक लड़की को सख्त बनाया जाए। उनकी भावनाओं की कद्र करना समाज और परिवार को सिखाया जाए। सरकारी प्रचार माध्यमों के द्वारा पुरातनपंथी मान्यताओं को तोड़ने का प्रयास हो। उच्च पदों पर बैठे लोगों को संदेश दिया जाए कि लड़की के पंख काटने जैसी स्थिति न आए—इसके लिए हमें उसे खुला, स्वच्छंद और स्वच्छ आकाश देना चाहिए। उसकी प्रतिभा को निखारने देना चाहिए, घर के लड़के की तरह उसे खाने, पहनने, घूमने, सोचने से लेकर अपना भविष्य संवारने का मौका देना चाहिए। उसकी सुरक्षा का कर्तव्य केवल ऐसे ही निभाना चाहिए जिससे उसकी भावनाएं आहत न हों, संवेदनाएं बिखर न जाएं। घुटन और बंदिशें उसे शरीर से मुक्ति पाने के रास्ते पर न धकेल दें। उसे वैचारिक स्वतंत्रता का अधिकार हो।

जीवन की जग में बच्चा भटक न जाए, इतना अनुशासन ही पर्याप्त होता

है। पर जब यह अनुशासन लिंग-भेद पर सिमट आता है तो इसका तात्पर्य बदल जाता है। लड़की के प्रति सामाजिक नजरिये में जबरदस्त बदलाव यदि जल्द से जल्द लाने के प्रयास न हुए तो तमाम संवेदनशील लड़कियां इसी तरह के हादसों का शिकार होती रहेगी या फिर मानसिक रूप से बीमार होकर तिरस्कार सहने को अभिशप्त होगी।

औरत की दुश्मन औरत हो ही नहीं सकती

महिलाओं के विकास से, महिलाओं के स्वभाव से, महिलाओं के प्रभाव से घबराने वाले तमाम उक्त पुरुषवादी सोच वाले पुरुष महिलाओं को आरोपो, प्रलापों और व्यंग्य-बाणों द्वारा भेदने से नहीं चूकते। ऐसे विचारों वाले धुरंधरों का दावा होता है कि महिलाओं की दुश्मन नंबर वन महिलाएं ही होती हैं। अपने कुतर्कों, गढ़े हुए किस्सों और इस्तेमाल किए जा सकने वाले नुक्तों के द्वारा वे लगातार इसे प्रमाणित किए जाने के लिए प्रयासरत रहते हैं। जबकि सत्य तो यह है कि औरत ही औरत का दुःख समझती है, उसमें ही इतनी भावनात्मक गहराई होती है कि वह किसी भी मादा का दर्द महसूस कर सकती है।

औरत जात कहीं एक होकर मर्दों के खिलाफ लामबंद न हो जाए, इसी भय से मर्द इन्हें घर-बाहर सब जगह लडाता रहता है। चूकि आम भारतीय परिवारों में घर का मुखिया मर्द होता है अतः वह औरतों से एक-दूसरे के खिलाफ हमले करवाता है, सिर्फ इसलिए कि उसकी सत्ता कायम रह सके। सुगढ़, नवेली, पढी-लिखी जवान बहू के खौफ से वह सास को हथियार बना लेते हैं।

औरत को औरत के प्रति भडकाने वाले, लड़ाने वाले, उसे इस्तेमाल करने वाले डरे हुए पुरुषों के समूह उसका प्रयोग लोहे से लोहा काटने के फलितार्थ करते फिरते हैं। जहां वे स्वयं को औरत की तुलना में कमजोर पाते हैं, वहीं दूसरी औरत से उसे रेतने का काम शुरू कर देते हैं। मां हो या सास जब वह नवयुवती या नववधू पर व्यंग्य बाण कसती है, उसे टाइट करने का प्रयास करती है, घुडकती है, धमकाती है या कभी धौल भी जमाती है तो उसके पीछे उस औरत के मुह में उसके पुरुष की जुबान काम करती है। पुरुष औरत का इस्तेमाल सिर्फ शारीरिक जरूरतों के लिए नहीं करता—यह हमारा भ्रम है। पुरुष अपने आसपास की औरतों को दिमागी तौर पर लगातार अपाहिज बनाने का प्रयास हरदम, हर वक्त करता रहता है। वह चाहे चेतन रूप में हो या अवचेतन में, जब वह मा और बीबी में संतुलन नहीं बना पाता तो दोनों को लड़वा देता है और खुद बदरवाली जगह बैठ जाता है। उनका झगडा सुलझाने की बजाए वह उसे हर बार

और हवा देता है, क्योंकि उसे इससे संतुष्टि मिलती है। उसके अहम की संतुष्टि उस झगड़े से इसलिए भी होती है, क्योंकि यहाँ वह न्याय की कुर्सी पर बैठा स्वयं को गौरवान्वित समझता है। अपनी महत्ता को इस झगड़े से बढ़ते देख वह चुप कैसे रह सकता है। वह इस घरेलू झगड़े में स्वयं को सिकंदर मान बैठता है।

दूसरे, सास-बहू, की लड़ाई को औरत-औरत की लड़ाई के परिप्रेक्ष्य में देखने वाले निहायत कुंद हैं। यह लड़ाई औरत जात की औरत जात से नहीं है, यह लड़ाई अधिकार और प्राप्ति की है, भावना की है। मनोवैज्ञानिक रूप से देखें तो औरत और आदमी के बीच नर-मादा का ही रिश्ता शाश्वत है, बाकी सारे रिश्ते तो केवल नामकरण मात्र हैं। फ्रायड का मानना था कि माँ का बेटे से जबरदस्त लगाव उसका अपना खून होना नहीं है, बल्कि उन दोनों में विपरीत सेक्स वाला आकर्षण होता है। सीधा-सा मनोवैज्ञानिक तर्क है—अपने द्वारा तैयार किए गए मर्द को झटके से एक अनजान (बहू) औरत के सुपुर्द करने में माँ अचकचाती है और पुरुष इस भावना का लगातार खिलवाड़ करता है। वह कभी माँ तो कभी बीवी के पाले में गेंद-सा लुढ़कता रहता है।

ज्ञानी और समझदार मर्द औरतों को कभी प्यार से तो कभी चतुराई से एक-दूसरे के खिलाफ भड़काकर अपने तमाम काम बना लेते हैं। युवा होती खूबसूरत बेटी के प्रति किसी भी पिता का आकर्षण मर्दाना ही होता है। यही कारण है कि वह बेटी के प्रेमी, सड़क छाप मजनुओं से खौफ खाता है और बीवी के जरिये उन्हें दूर करने का प्रयास करता रहता है।

औरत को स्वजातीय दुश्मन ठहराने वालों का अकेला तर्क होता है—दहेज हत्या। दहेज हत्याकांड की अमूमन घटनाओं में सास, ननद आदि को दोषी पाया जाता है, जिसे देखते हुए यह धारणा बन गई है कि औरत ही औरत को मारती है। सच तो यह है कि इस सारे षड्यंत्र के पीछे भी पुरुष का शैतानी दिमाग काम करता है। बिल्कुल नए और भिन्न वातावरण में स्वभावतः नवविवाहिता समायोजित नहीं कर पाती। एक पलड़े पर पूरा परिवार और दूसरे पर वह अकेली। अगर उससे ब्याहा पुरुष उसके पलड़े में आ जाए तो संतुलन तो स्वतः ही हो जाए, मगर वह तो तराजू का काटा बन जाता है, जिधर भार देखा उधर ही झुक लिया। किसी भी दहेज हत्याकांड के मामले को छानें तो पाएंगे कि मामले को अजाम देने से लेकर भूमिका बनाने तक में पुरुष नेपथ्य में रहने के बाद भी केंद्रबिंदु होता है। माँ को लगातार उकसाना हो या अपनी पत्नी की जड़ों पर तेजाब डालना, यह काम वह

भरपूर बारीकी और सफाई से करने के बावजूद पुलिसिया छानबीन में झट पकड़ लिया जाता है।

कोई भी सास, चाहे वह कितनी ही ताकतवर क्यों न हो, बहू के खिलाफ तभी तक साजिश कर सकती है, जब तक बेटे की शह हो। बेटे के मुंह फेरते ही उसके हाथ खाली हो जाते हैं।

पुरुषवादी सोच के शिकंजे में जकड़े ये तमाम लोग क्या इस बात का कोई जबाब देंगे कि दहेज हत्याएं महिलाओं के कारण होती हैं, तो बलात्कार, छेड़छाड़, व्यभिचार, ईवटीजिंग, पति द्वारा पिटाई या जबरन सेक्स की घटनाओं में दिनोंदिन इजाफा क्यों होता जा रहा है? क्या ये सारी घटनाएं महिलाओं की महिलाएं दुश्मन हैं, इसलिए बढ़ रही हैं? लाखों महिलाओं को प्रतिवर्ष वेश्यावृत्ति जैसे धंधे में झोंकने का काम पुरुषों के महिमामंडित हाथों द्वारा ही होता है। लालबत्ती इलाकों को भोगने वाले पुरुष ही होते हैं। वहां तो औरतें नहीं जातीं और जो पहुंचाई भी जाती हैं, वे समाज को (निश्चित रूप से पुरुषों के इस समाज को) औरत के रूप में स्वीकार्य नहीं होतीं। उन्हें तमाम अलंकरणों से सुशोभित किया जाता है।

खैर, यह अलग बहस का मुद्दा है। ज्यों ही औरत दूसरी औरत के जख्मों पर मरहम पट्टी करना शुरू करती है, पुरुषों के समूह के समूह घबराकर उस पर प्रहार करना चालू कर देते हैं, (इसे 'फायर' के संदर्भ में भी समझा जा सकता है)। औरत कभी औरत की दुश्मन नहीं होती, उसे बनाया जाता है, उसे इस्तेमाल किया जाता है—हथियार की माफिक। अपनी कमजोरियां अपने डर, अपने वहम, अपनी गैर-जिम्मेदाराना हरकतों के बचाव के लिए एक औरत को दूसरी औरत के खिलाफ पुरुष स्वार्थवश इस्तेमाल करता है, वे स्वयं कभी नहीं लड़तीं।

हिंदू धर्म की बेचारी देवियां

प्रतिवर्ष नवरात्रों के दिनों दुर्गा यानी शक्ति की पूजा में हिंदू समाज डूबा रहता है। श्रद्धालुजन कन्याओं की एक दिन (1) पूजा करते हैं, उनके पांव छूते हैं और उन्हें जिमाते हैं। शक्ति यानी देवी की पूजा करने वाला यह समाज निहायत चालाक, धूर्त और पाखंडी है। यह देवी की पूजा करता है पर घर में पत्नी की कुटाई भी करता है, इन्हीं में से कोई बच्ची से बलात्कार करता है या उसे जन्मने से पहले ही गर्भ से गिरवा देता है या जन्म लेते ही उसका टेंटुआ दबा देता है।

कुल मिलाकर इस हिंदू समाज का कोई चरित्र नहीं है, यहां कोई तर्क नहीं चलते। खैर, यहां बहस का विषय यह सब कदापि नहीं है। देवी पूजन करने वालों ने कभी यह सोचा है कि जिन देवियों को पूज रहे हैं उनमें से कोई किसी पुरुष की ब्याहता या बहू नहीं है। दुर्गा, चंडी या काली को लें। मूल रूप से देवियों के नाम पर दुर्गा और काली दो ही देवियों का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है। ये दोनों सेल्फ मेड टाइप देवियां हैं। इनमें भी अकेली काली अवतारी है यानी उनको जन्म देने वाली कोई औरत (देवी) नहीं है और दूसरी हैं दुर्गा, जिन्हे पार्वती के रूप में गिन लिया जाता है।

हिंदू धर्म ने काली और दुर्गा को न किसी की बेटी बनाया, न ब्याहता और न ही बहू। यानी इनका स्वतंत्र अस्तित्व है। इनके ऊपर कोई पुरुष रूपी अंकुश तो नहीं ही है, इसीलिए ये बलशाली हैं। काली ने तमतमाए, गरमाए, हुड़दंग मचाते शिव को अपनी शक्ति के आगे धाराशायी करके जो क्रांति की थी, वह तमाम औरतों के लिए शक्ति का आधार बन सकती है। मगर यहां सबसे बड़ा अंतर्विरोध क्या यही है कि इतनी शक्ति बटोरने के लिए औरत को पुरुष के चंगुल से मुक्त कराना होगा? उन्मुक्त, स्वतंत्र, अंकुशविहीन जीवन ही औरत के अंदर की शक्ति, उसके तेज, उसकी ऊर्जा को पुरुष के मुकाबले खड़ा कर सकता है? पुरुष का दबाव, उसका दंभ, उसकी अधिकार जताने और शोषण करने की प्रवृत्ति इतनी हावी होती है कि उसके सानिध्य में स्त्री-चरित्र का उभर पाना नामुमकिन हो जाता है।

हालांकि आधुनिक समाज स्त्री के मामले में आज भी इतना सकीर्ण है कि वह कभी एकल स्त्री का वजूद खुले मन से नहीं स्वीकारता। वह उसे लांछित करता है, तरह-तरह के आरोप मढ़ता है, हेय नजर से देखता है, समाज में ब्याहता की बराबरी का दर्जा देने में सकुचाता है। हालांकि ब्याहताएँ किसी ऐसे तमगे से नहीं सुशोभित होती जो अप्राप्य हो। पर अपनी सना के प्रदर्शन के लिए पुरुषों ने अपनी ब्याहताओं को अलग कर लिया।

ब्याहता का अपना कितना अस्तित्व होता है यह तो किसी आमंत्रण आदि पर अक्षरित ही रहता है। जहाँ वह सिर्फ श्रीमती रह जाती है, बाकी का परिचय श्री साहब के खाते में ही जाता है। यूँ भी संभ्रांत वर्ग हो या गली-मुहल्लों का प्रतिनिधित्व करने वाला आम भारतीय वर्ग, सभी मिसेज शर्मा, मिसेज अरोड़ा, मिसेज बनर्जी या शर्माइन, अरोड़ाइन, बनर्जीन रह जाती हैं। खासकर कुछ वर्गों में तो लड़कियों का शादी के बाद बाकायदा एक अनुष्ठान में ससुरालियों द्वारा नाम बदले जाने का आज भी रिवाज है। जाति नाम बदलने को स्वाभाविक ढंग से लेने वाला यह समाज कभी इस पर मुंह नहीं बिचकाता कि एक लड़की को उसके जन्मना नाम से ही जाना जाना चाहिए।

देवी यानी दुर्गा और काली के मंदिर को छोड़ दें तो बाकी किसी देवी का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। सीता, राधा, लक्ष्मी, पार्वती आदि के चरित्र में उनका त्याग केवल पतिप्राप्ति के लिए है। उनका प्रेम प्रगाढ़ है, पति के लिए सौ प्रतिशत समर्पित हैं, पर उनकी अपनी कोई विशिष्ट पहचान नहीं है। सीता ने राम के लिए (वनवास) तमाम कष्ट सहे, राजसी ठाठ-बाट छोड़ दिए पर अंततः उन्हें औरत होने की सजा भोगनी पड़ी। राम ने उन्हें घर से निकाल दिया, वह भी मात्र एक लांछन के चलते। दूसरी तरफ राधा का प्रेम है, जबरदस्त, असीम, अनंत। वह कृष्णप्रेम में दीवानी है, मगर कृष्ण 16 हजार रानियों के शौहर, लीलामग्न हैं। राधा उनकी ब्याहता कभी नहीं बनी, इसीलिए राधा को देवी का दर्जा भी नहीं दिया गया। हिंदू धर्म का शायद यह बड़प्पन ही है (या हो सकता है यहाँ कोई चूक हो गई हो) कि मंदिरों में कृष्ण के साथ में राधा भी हैं। मंदिर में आकर वह पूजनीय हो जाती हैं, वरना अकेली, अमहाय, आंसू बहाती वह प्रेम-अग्न में तड़पती रहती। लक्ष्मी—हिंदू समाज की परम पूजनीय देवी, धन बरसाने वाली, किंतु शेषनाग पर पाँव पसारे विष्णु की दासी। धन-धान्य की इस देवी का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, वह कभी विष्णु के साथ तो कभी गणेश, जो उनके दामाद हैं, के साथ पूजी जाती हैं। वहाँ भी गणेशपूजन पहले है, पीछे लक्ष्मीपूजन।

पार्वती का प्रेम भी राधा से कम नहीं है—शिव को पाने के अथक प्रयास, पीडा, पूजन, तप और अततः समर्पण। उनका सारा तप शिव की अर्द्धांगिनी बनने तक सीमित रहा। खैर, इतने के बाद भी पार्वती का कोई मंदिर नहीं है। वह पूजनीय है, मगर शिव की बगल में बैठकर। धन की देवी लक्ष्मी की ही तरह विद्या की देवी सरस्वती है। कुछ जगहों पर बसंत-पंचमी पर उन्हें पूजा भी जाता है, मगर उनके मंदिरों का शायद कहीं अता-पता मिलता है। जबकि धन और विद्या का जीवन में बढ़ता महत्त्व भी इन देवियों को कुछ विशेष नहीं दिलवा सका।

शोभा डे ने एक बार अपने कॉलम में लिखा था कि हिंदू-धर्म में देवियां तो ढेर हैं, मगर उनमें से किसी ने बेटियां क्यों नहीं जनीं। यह सवाल लाजिमी है, हालांकि लक्ष्मी की ऋद्धि-सिद्धि नामक दो पुत्रियों की चर्चा धर्मग्रंथों में है, जिनका विवाह मोदकप्रेमी गणेश से हुआ है, मगर इनकी अपनी कोई पहचान नहीं है यानी इनका महत्त्व कहीं नहीं है। लक्ष्मी के अतिरिक्त शायद ही किसी अन्य देवी ने पुत्रियां जनीं हो—इसका क्या तात्पर्य है? देवियां ही नहीं, हिंदू धर्म में देवताओं को भी प्रायः पुत्र ही प्राप्त हुए हैं, पुत्रियों की चर्चा यदा-कदा ही है।

जिस धर्म में पुत्रियों की इतनी उपेक्षा हो, उसके अनुयायियों से पुत्री की कामना करना या उसे उच्च स्थान देने की कल्पना करना, बुद्धि जैसी बात ही कहलाएगी। धर्मभीरु समाज को समझाने का अकेला जरिया है धर्म, लेकिन उसकी खामियों को कौन चैलेंज करने की हिमाकत कर सकता है?

जहां देवी-देवता तक में लिंगभेद हो, उस समाज से आप क्या आशा रखेंगे कि वह औरत को न्यायोचित और बराबरी का दर्जा देने में कुनमुनाएगा नहीं। यह खुराफा समाज जिसकी रग-रग में पुरुषों के लिए ही जमीन तैयार की गयी है, औरत को बस अपनी सुविधा से बित्ते-भर का स्थान देता है। वह भी कभी भी छीनने का अधिकार वह अपने पास ही सुरक्षित रखता है। इमीलिए शक्तिशाली चंडी या काली जैसी दीप्तिमान औरत पुरुषों के बुने इस समाज में पैदा हो ही नहीं सकती, उसे तो अवतारी ही होना होगा।

मुसलमान क्यों हुई कमलादास?

माधवी कुट्टी उर्फ कमलादास यानी आज की सुरैया अंग्रेजी की सिर्फ चर्चित ही नहीं, बल्कि विवादास्पद लेखिका भी हैं। अपनी लेखनी से उन्होंने अब तक कई बार साहित्यिक जगत में सनसनी पैदा की है। मगर अचानक 67 वर्ष की (सठियाई) उम्र में उन्होंने मुसलमान बनने का एलान कर सबको चकित कर दिया। कमलादास जितनी प्रगतिशील और खुले विचारों वाली महिला के रूप में अपना जीवन बिता चुकी हैं, उसे देखते/जानते हुए यह कल्पना करना लगभग नामुमकिन है कि कमलादास उस धर्म से प्रभावित हो सकती हैं, जिसमें हिंदू धर्म जैसी ही संकीर्णता हो और महिलाओं को दोयम दर्जा दिया जाता हो।

कमलादास अंग्रेजी की बड़ी साहित्यकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं से समाज को झकझोरा है। उनकी प्रतिभा या रचनाशीलता पर शक की कोई गुंजाइश नहीं रही। मगर अचानक लिया गया उनका यह निर्णय न सिर्फ कौतूहल पैदा करता है बल्कि उनके भीतर पल रहे बचपने को भी उकेरता है। ऐसा न होता तो इतनी बड़ी लेखिका स्वयं को सनातन धर्मनिरपेक्षतावादी जताने का प्रयास करती, बजाए इस सनक-भरे-से निर्णय के। वे कहती हैं कि 27 साल पहले ही उन्होंने मुसलमान बनने का निर्णय ले लिया था, लेकिन उनके बच्चे उस समय 'सैटल' नहीं हुए थे या उनके विवाह नहीं हुए थे, इसलिए उन्होंने इतने दिन इंतजार किया। कितनी अजीब बात है एक (अति) प्रगतिशील महिला को अपने अंतर्संबंध लिखने के बारे में तो किसी से सलाह नहीं लेनी पड़ी, अपने उन्मुक्त जीवन को किसी दबाव के कारण टालना नहीं पड़ा, फिर धर्मपरिवर्तन में इतना समय क्यों लग गया। दरअसल, कमलादास टाइप की महिलाएं जिस मुकाम पर पहुंच चुकी हैं, उससे उन्हें ऊब होनी स्वाभाविक है। अपना सारा जीवन स्वतंत्र विचारों, उन्मुक्तता, स्वच्छंदता और खुलेपन के साथ बिताने के बाद एक सम्राज्ञी की तरह यह एलान करना बड़ा सुखद व मनोहारी होता है कि मैं धर्मपरिवर्तन कर रही हूँ या बुढ़ापे में ब्याह कर रही हूँ।

उन्होंने कैसे भुला दिया कि जिस धर्म की वे इतनी तरफदारी करते नहीं

अघा रही हैं वहां औरत की स्थिति हिंदू, ईसाई, सिख या अन्य धर्मों के अपेक्षा बहुत दयनीय है। उन्हें चाहिए था कि एक बार वे मुसलमान औरतों से उनकी मनःस्थिति पूछ लेतीं तो शायद लौट आतीं अपने धर्म में। बिंदास जीवन बिताने के बाद ऊबी हुई कमलादास को इस्लाम की बंदिशें और नियम अचानक इतना लुभा गए कि उन्होंने अपना जन्मना धर्म छोड़ दिया। अद्भुत तर्क है यह।

दास कहती हैं— इस्लाम में उन्हें जो सबसे ज्यादा आकर्षित करता है वह परदा प्रथा। मुसलमान औरतों का बुरके में रहना उन्हें प्रभावित करता है, इसीलिए पिछले 24 सालों से वे स्वयं परदा करने लगी हैं। उनका तर्क है कि उन्हें खुलापन नहीं, सुरक्षा चाहिए। उन्हें एक मालिक चाहिए जो उन्हें सुरक्षा दे। वह ऐसे कपड़े पहनना चाहती हैं कि कोई उन्हें छू तक न सके। सारे कारण जो उन्होंने गिनाए निहायत बचकाने और बेतुके हैं क्योंकि दुनिया का कोई धर्म औरत को खुली छूट नहीं देता। सब धर्मों में औरत के लिए कड़े नियम और सजाएं शामिल हैं। जिस धर्म से कमलादास पीछा छुड़ा रही हैं, जरा उसके भीतर झांकतीं तो वहां भी उन्हें वही संकीर्णताएं और बंदिशें साफ मिलतीं, जो उन्हें मुसलमान बनकर मिलेंगी।

कमलादास टाइप के प्रबुद्ध लोगों को तो इस धर्म, जाति, संप्रदाय से ऊपर उठना चाहिए। हिंदू धर्म में कौन-सा खुलापन दास को चुभ गया, यह तो वही जाने। हिंदू धर्म में परदा प्रथा इस्लाम से ज्यादा ही है, रही सुरक्षा के लिए एक मालिक की जरूरत तो आंख मूंदकर किसी को भी स्वीकारा जा सकता है, क्योंकि भगवान तो केवल आस्था का रूप है, उसे अल्लाह मानो या जीसस। दास ने अपने पूर्ण जीवन में जो कुछ जिया है वह इस्लाम में हराम है। कुरान में साफ लिखा है—“आस्तिक स्त्रियों के लिए निर्देश : आकर्षण से दृष्टि हटाएं और सतीत्व बचाएं, साज-शृंगार रखें ढका, सीने पर ओढ़नी रहे, साज-शृंगार सिर्फ दिखाया जा सकता—पति, पिता, ससुर, पुत्र को।”

लेकिन क्या सब मुसलमान औरतें आज के समय में इसका पालन करती हैं या कर सकती हैं। ये बातें किताबी हो चुकी हैं। संभ्रांत समाज में यह नामुमकिन है। हिंदू धर्म में चाणक्य जैसा नीतिवान भी औरतों के लिए ऐसे ही कठोर नियम बना गया था।

कुरान में एक जगह साफ लिखा है कि “पुरुषों को अधिकार है स्त्रियों पर, एक को बनाया दूसरे से श्रेष्ठ. भली स्त्रियां हैं आज्ञाकारी, जिनसे अवज्ञा का भय उन्हें अलग पलंग पर भेजो और पीटो उन्हें।”

हिंदू धर्म उससे दो कदम आगे है, महाभारत में एक जगह भीष्म पितामह कहते हैं—‘पति को चाहिए वह स्त्री को सपत्ति समझे।’ यही नहीं हिंदुओं के परमप्रिय देवता भगवान रामचंद्र ने रामायण में कहा है—‘मैं अपना समस्त राज्य, उत्तराधिकार, यहां तक कि अपनी पत्नी और सभी मूल्यों को भरत को स्वेच्छा से प्रदान कर सकता हूँ।’

उधर कुरान का कहना है—‘यदि भय हो बेसहारा कन्याओं से उचित व्यवहार में रहने का, जो भली लगें ब्याह लो, इनमे से दो, तीन या चार।’

महाभारत में स्पष्टतः कहा गया है—‘स्त्रियो से अधिक पाप की अन्य कोई वस्तु नहीं, स्त्री सभी बुराइयों की जड़ है, स्त्री प्रज्वलित ज्वाला है, वह माया-रचित भ्रम है, उस्तरे से तेज धार है, वह अग्नि है।’ इन उदाहरणों का मकसद यह साफ करना है कि औरत को धर्मों ने सिवाय एक चीज से ज्यादा कुछ नहीं समझा है। औरतें सिर्फ मर्दों के सुविधानुसार इस्तेमाल की जाने वाली एक चीज हैं। धर्म चाहे कोई भी हो, कभी औरत को मर्द जैसा रुतबा नहीं देता।

दुनिया के हर धर्म में औरत को मर्द से नीचे ही रखा गया है। उसे कभी-कहीं बराबरी का स्तर नहीं दिया गया है। ऐसे में दास को चाहिए था कि वे औरत को उचित स्थान दिलातीं, न कि सकीर्णता की वकालत करती फिरतीं।

इसीलिए कमलादाम जैसी तेज-तर्रार, प्रबुद्ध, खुले विचारे वाली महिला का अतार्किक तरीके से धर्म बदलना अजीब नहीं, घटिया मजाक जैसा लगता है। 1934 में जन्मी कमलादास ने मलयालम में लघुकथाएं और कविताएं लिखने से अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत की, पर ‘द ओल्ड प्ले हाउस’ और ‘अदर पोयम्स’ (1973) ने उन्हें चर्चा में ला दिया। ये कविताएं एक अतृप्त औरत की संवेदनात्मक भूख के इर्द-गिर्द रची गई थीं। इसलिए साहित्य जगत में कमला के खुलेपन—असल मायने में नग्नता—पर जमकर बहस हुई। प्रेम और विवाह के इर्द-गिर्द खूब रस ले-लेकर उन्होंने रचनाएं परोसीं और जबरदस्त चर्चा पाई। 1974 में अपनी आत्मकथा ‘माई स्टोरीज’ से उन्होंने तहलका मचा दिया और स्थापित कर दिया कि वो बोल्ट लेखिका हैं।

खुलेपन की दुनिया में क्रांति लाने वाली यही लेखिका अचानक इतनी रूढ़िग्रस्त और पुरातनप्रेमी कैसे हो सकती है, यह एक गंभीर मुद्दा है। लेखन के लिए ’85 में साहित्य अकादमी के अवार्ड से नवाजी गई दास से दुनिया-जहान यह उम्मीद करता है कि वे महिलाओं के हित में इस शताब्दी की संध्या बेला पर कुछ ठोस करेंगी। अभी भी हमारे समाज में सती, दहेज हत्या, मादा ध्रूण-

हत्या जैसी वीभत्स घटनाएं आम हैं। औरते आज भी दोयम नहीं, बल्कि चतुर्थतम जीवन बताने को अभिशप्त हैं। औरतें अभी भी खरीदी और बेची जाती हैं, ऐसे में दास औरतो के सुफल जीवन की कामना करतीं या इस तरफ दो कदम उठातीं तो अधिक तर्कसंगत होता। एक अंधेरी गली से दूसरी संकरी गली में घुसना कौन-सा दुस्साहसिक कार्य है?

कमलादास तुम सुरैया बनो या सूजन, रहोगी तो औरत ही न।

नारी देह पर पुलिसिया नजर

हिंदू संस्कृति औरत को पूजनीय मानती है और उसे देवीतुल्य समझा जाता है। इसी महान हिंदू संस्कृति में स्वर्ग-नरक की अवधारणा भी है। मृत्योपरांत पापियों को नरक भोगना होता है, जहां उन्हें उनके किए के अनुपात में तरह-तरह की क्रूर यातनाएं दिए जाने का प्रावधान है—ऐसा गरुड़ पुराण में वर्णित है। इतनी सब व्यवस्थाओं (धमकियों) के बावजूद पुरुषों (खासकर पुलिसियों) की यातनाएं इतनी बर्बर और भयानक हैं कि नरक देवता भी दहल जाएं। कानपुर के ककवन थाना क्षेत्र में तमाम कुंवारी लड़कियों और विधवाओं के साथ और इधर उरई में एक दलित महिला के साथ पुलिसियो ने जो क्रूरतम बरताव किया उससे नरक के देवताओं ने भी तौबा करके आंखें मींच ली होंगी।

ककवन की घटना अगस्त 1999 की है, जब पुलिस को एक नवजात शिशु के झाड़ियों में पड़े होने की सूचना दी गई। पुलिसियों ने अपनी दिमागी सोच का इस्तेमाल कैसे किया, इसका गांव की एक-एक कुंवारी लड़की की आंखें बखान कर सकती हैं। पुलिसियों ने सारे गांव के सामने कुंवारी लड़कियों और विधवाओं को एकत्र करवाया और एक दाई को आदेश दिया कि वह उसके स्तन दबाकर दिखाये कि उनसे दूध निकलता है या नहीं। उनकी दलील थी कि ऐसा करने पर लावारिस शिशु को जनने वाली कुलटा का पता आसानी से लग जाएगा। घटना की जानकारी कानपुर से छपने वाले एक साप्ताहिक अखबार 'सोशल ऑडिट' ने प्रमुखता से दी, चूंकि उसका पुलिस द्वारा कोई खंडन या सफाईनामा नहीं आया इसलिए उनकी शर्मनाक हरकत की पुष्टि स्वतः ही हो गई।

यदि किसी गांव में बलात्कार हो जाए तो क्या आज तक के इतिहास में कभी पूरे गांव के मर्दों को इकट्ठा करके उनका वीर्य निकलवाया गया है—इस नाम पर कि शिकार औरत के कपड़ों पर लगे वीर्य से उसका मिलान किया जाएगा? कुटिल, कामी, धिनौने, औरत को भोग का सामान समझने वाले कूढ़मगजों की ही उपज हो सकती है यह।

सैकड़ों गांववालों के सामने लड़कियों के साथ यह कुकर्म उस समाज में

हुआ जहा महिला आयोग और मानवाधिकार आयोग टाइम की सस्थाओं में लोग जनसेवा के नाम पर मोटी-मोटी रकमें वसूल कर रहे हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग को शायद इस वीभत्स घटना की भनक भी न रही हो, क्योंकि वे मीडिया के बवेला करने के बाद ही नींद से उठ पाते हैं। कलफलगी कडक साड़ियां पहनकर ए सी. कमरों में बैठकर औरतो की पीडा नहीं समझ आएगी इन्हें। यह सब उस समाज में हो रहा है जहां वाई2 के, डलब्यू टी.ओ., परमाणु बम की चर्चाएं आम हैं और नई सहस्राब्दी में जाने की जोरदार तैयारियां की गईं। ये आयोग क्या सिर्फ नैना साहनी, जेसिका लाल जैसी नामी-पैसेवाली हस्तियों के लिए ही बवेला मचाते रहेंगे। इनके कानों में गांव-गली में होने वाली ये दर्दनाक घटनाएं क्यों नहीं गूंजतीं? करोड़ों रुपया इन आयोगों पर बरबाद करने वाली सरकार का एक भी सांसद इन विषयों पर सवाल क्यों नहीं उठाता? क्या हम इस तरह की घटनाओं को सामान्य मान चुके हैं या इस तरह के वहशियाना बरताव के लिए स्वयं को मानसिक रूप से तैयार कर चुके हैं? तभी तो ये घटनाएं हमें दहलाती नहीं, हमारे अंदर सिहरन पैदा नहीं कर पातीं।

इस घटना के एक पखवाड़े पहले पुलिस ने एक ऐसी ही घिनौनी करतूत उरई में दोहराई थी। यहां के गांधीनगर इलाके की एक महिला को पुलिस वाले दरिंदों ने कपड़े उतारकर पीटा, इस पर उनकी भड़ास नहीं निकली तो एक पुलिसवाले ने उसके गुप्तांग में रायफल की नाल घुसेड़कर अपनी आत्मा तृप्त की। अवैध शराब बनाने के बारे में छानबीन करने आई पुलिस टीम को जब उस महिला के पति नृपत कोरी के बारे में कोई सुराग नहीं मिला तो खिसियाकर उसने वह कुकर्म किया, जिसके लिए समाज उसके दरवाजे खटखटाने को बेबस है। उक्त औरत के साथ वहशियाना हरकत करने वाला सिपाही सगर्व दलील देता है कि 'साली को मासिक धर्म आ गया और वह झूठ बोल रही है कि रायफल की नाल उसके गुप्तांग में घुसेड़ी गई।' जबकि महिला अस्पताल की डॉक्टर (सुशीला वर्मा) ने अपनी जांच रिपोर्ट में साफ लिखा है कि उसका गुप्तांग कट गया है, उस पर चोट के निशान हैं और उसे रक्तस्राव हो रहा है। खुद को पाक-साफ दिखाने के लिए पीडिता के पति पर डकैती व आगजनी का मामला दर्ज किया है।

औरत के गुप्तांग को लहलुहान करके अपनी घिनौनी करतूतें ढांपने के लिए दी जाने वाली ये दलीलें क्या विश्वास के काबिल हैं? नाजुक अंगों पर हैवान जैसी करतूत किया जाना और मासिक स्राव का खून आना दो अलग-

अलग चीजें हैं, जिन्हें कोई अधा भी महसूस कर सकता है। इसके लिए दीदे फाड़कर भीतर झांकने की जरूरत बिल्कुल नहीं पड़ती।

पुलिस की हैवानियत के इन दोनो मामलों (ककवन और उरई) में अतत क्या होगा? यदि ज्यादा बवाल हुआ या राजनीतिक पार्टियां बीच में कूदीं तो एकाध सिपाही या दरोगा को स्थानांतरित करके हाथ झाड़ लिए जाएंगे। बलात्कारी को फासी की सजा दिए जाने के हिमायती हिंदूवादी नेता लालकृष्ण आडवाणी, जो वर्तमान में देश के गृहमंत्री भी हैं, शायद दोनों घटनाओं से अनजान होंगे। हो सकता है, उनकी नजर में बलात्कार की घटना के सामने ये घटनाएं साधारण और छोटी हों, इसलिए वे इनकी जानबूझकर अनदेखी करते हों।

एक औरत की छातियों के साथ या उसके गुप्तांगों के साथ सरेआम की जाने वाली ये घटनाएं किसी स्वस्थ समाज के मुह पर करारा चाटा हैं। देवियों की पूजा करने वाले इस समाज में जिन पुलिसवालों ने इस तरह का दुर्व्यवहार किया, उनमें से अधिकतर जिस थाने या कोतवाली के अंतर्गत आते हैं, वहां प्रायः रामभक्त हनुमान की मूर्ति गेरुए रंग में पुती प्रतिष्ठित होती है। बाल-ब्रह्मचारी, सात्विक देवता के ये भक्त ऐसा उपद्रव क्यों मचाते हैं? औरत का शरीर उनके लिए जग जीतने का जरिया कैसे बन जाता है?

सहस्राब्दी के अंत में घटने वाली ये केवल दो घटनाएं नहीं हैं, मीडिया के प्रयास से उभरे मात्र दो उदाहरण हैं, क्योंकि गांवों-गलियों के कोने-अंतरों में न जाने कितने वर्दीधारी हमारी रक्षा की एवज में मोटी रकम डकारने के बावजूद सरेआम बैइज्जत करने और औरत को देह का मजा लूटने से ज्यादा कुछ नहीं करना चाहते। पिछले दिनों दिल्ली के पुलिसवालों की डॉक्टरों की जांच में पाया गया कि उनमें से 80 प्रतिशत पुलिसिये मानसिक रोगों से ग्रस्त हैं। देश-भर में यदि इस तरह की जांच कराई जाए तो इससे भी भयानक नतीजे सामने आएंगे, मगर यह हैवानियत के विरुद्ध दिया जा सकने वाला सबसे घटिया तर्क होगा, क्योंकि मानसिक रूप से दुलमुलाए सारे पुरुषों को झेलने का ठेका केवल महिलाओं के हिस्से ही क्यों आता है?

बिनब्याही औरतों की बढ़ती भीड़

बिनब्याही औरतों का जीवन पुरुषों की बेवजह ताक-झांक से हमेशा त्रस्त रहता है। विवाह नितांत व्यक्तिगत मसला होने के बावजूद परिवार व समाज से सीधा जुड़ता है। किसी समाज में यदि बिनब्याही औरतों की संख्या तेजी से बढ़ने लगे तो उसकी गभीरता खंगालनी जरूरी हो जाती है। खासकर हमारे दकियानूस रूढ़िग्रस्त समाज में यह जानना बहुत जरूरी है कि अचानक हमारी औरतों में विवाह के प्रति विरक्ति क्यों पैदा हो रही है, क्योंकि यह समस्या अब तक केवल पश्चिमी देशों तक फैली रही है, एशिया में जापान ऐसा देश है जहां औरतें विवाह के बंधन से भरसक बचती हैं। हमारी संस्कृति में औरतों के जीवन में विवाह और बच्चे जनना सबसे महत्वपूर्ण रहे हैं। ऐसे में यदि अचानक औरतें विवाह-बंधन से अछूती हैं तो हमें सतर्क होना होगा।

फेमिली हेल्थ सर्वे द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि 36 प्रतिशत औरतें बिन-ब्याही रह जाती हैं। यह सर्वेक्षण केंद्रीय स्वास्थ्य और परिवार मंत्रालय की पहल पर कराया गया था। अब तक पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की संख्या कम होने पर चिंता की जा रही थी कि यह चौंकाऊ तथ्य सामने आ गया। खासकर मणिपुर और नगालैंड की 50 प्रतिशत औरतें शादी नहीं करतीं, वहीं पूर्वोत्तर के सात राज्यों की 45 प्रतिशत औरतें कुंवारी रह जाती हैं। सरकारी तौर पर यह स्वीकार किया जाता है कि प्रति हजार पुरुष 73 औरतें कम हैं यानी हर हजार पुरुषों में 73 को तो कुंवारा रहना ही पड़ेगा और अब 36 प्रतिशत औरतों के कुंवारी रह जाने पर ऐसे पुरुषों की संख्या और अधिक हो जाएगी।

औरतों के बिन-ब्याही रह जाने के पीछे तमाम कारण हो सकते हैं, जिनमें सबसे पहला और बड़ा कारण तो अपने समाज में दहेज है। हजारों लड़कियां ब्याह की उम्र में मानसिक अवस्था और पारिवारिक उपेक्षा का शिकार इसीलिए बनती हैं कि उनके मां-बाप लड़केवालों के चौड़े मुंह दहेज से भरने लायक धन नहीं जुटा सकते। कानूनी रूप से दहेज लेना अपराध होने के बावजूद यह विकराल

समस्या लड़कियों का जीना मुहाल किए हुए है। दहेज न लाने वाली बहुए मारी जाती हैं, प्रताडित की जाती हैं, वह तो कानून की नजर में गंभीर मामला बनता है, मगर दहेज की आड में मानसिक रूप से कुंवारी लड़कियों को सताया जाना आम बात होने के बावजूद किसी पर आरोप नहीं मढ़ा जा सकता है। दहेज न जुटा पाने वाले मा-बाप की हताशा देखकर हजारों लड़कियां अब तक मौत के मुह में समा चुकी हैं, मगर इसका जिम्मेदार कौन माना जाए?

कानपुर की तीन बहनों द्वारा की गई आत्महत्या हो या आगरा की तीन बहनों का मामला। मीडिया ने तमाम बवेला मचाया, संपादकीय लिखे गए, टी वी कवरजे हुई मगर स्थितियां कितनी बदली हैं? तीन बहनें दहेज के लिए मर जाती हैं तभी मीडिया का ध्यान उधर जाता है, मगर रोजाना मरने वाली एक अकेली लड़की की मौत की खबर में प्रायः कारण अनजान ही गिन लिए जाते हैं। घरेलू कलह, मां-बाप की परेशानियां, ताने और रोज-रोज की नुमाइश उसे विवाह न करने जैसे निर्णय के लिए बाध्य कर देती है।

समय और विकास की मार ने लड़कियों को सुंदर दिखने, आकर्षक बनने पर मजबूर किया है। हर लड़का रूपवान, गोरी, आकर्षक लड़की चाहता है, ऐसे में औसत या खूबसूरती की कसौटी पर खरी न उतर सकने वाली लड़कियां बिन ब्याही रहने को मजबूर हो जाती हैं। सयुक्त परिवार बिखरने का असर भी लड़कियों के जीवन पर पड़ा है। घर के मुखिया की मृत्यु के बाद तमाम परिवारों में बड़ी बेटी के कंधे भार उठा लेते हैं, मगर जिम्मेदारियों को निभाते हुए वह स्वयं प्रायः विवाह-बंधन से वंचित ही रह जाती है। हमारे यहां यूं भी औरत की विवाह की उम्र सीमा तय है, बच्चा जनने की उम्र तक यदि विवाह न हुआ तो उसे आजीवन अविवाहित रहने को छोड़ दिया जाता है। परिवार बिखरने के कारण उचित वर की तलाश मुश्किल होती ही है, साथ ही जाति, कुल, गोत्र आदि बंधन भी एक सीमा बांध देते हैं। यह भी सच है कि कुछ लड़कियां पढ़-लिख जाने के कारण अति महत्वाकांक्षाएं पाल लेती हैं। उन पर खरा न उतरने के कारण वे बिनब्याही रह जाती हैं।

आधुनिक माहौल में तमाम लड़कियां घर की देहरी फलांगकर स्वावलंबी हो रही हैं, उनके लिए विवाह से कैरियर कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। वे किसी बंधन में बंधकर अपना कैरियर तबाह नहीं करना चाहतीं, बुलंदी पर जाने या प्रतियोगिता में अक्वल रहने के लिए अकेले रहना ज्यादा पसंद करती हैं। बच्चे

है, तब तक अपना हम-उम्र और बराबरी के तबके का पति मिलना मुश्किल हो जाता है। इसके साथ ही एक अहम कारण समाजशास्त्री व सेक्स विशेषज्ञों द्वारा यह भी माना जाता है कि लड़कियों में सेक्स के प्रति अरुचि, बचपन के कटु अनुभव, किसी भी तरह का दुर्व्यवहार उनके मन में पति के प्रति विरक्ति पैदा कर देता है। मां-बाप का असफल दांपत्य या आपसी तनाव लड़कियों के मन में पति के प्रति नैराश्य पैदा कर देता है।

बंधनों वाला हमारा समाज आज भी प्रेम-विवाह की अनुमति नहीं देता। ऐसे में कुछ लड़कियां असफल प्रेम के सदमे में विवाह नहीं करतीं। घरवालों के प्रति विरोध-प्रदर्शन वे बिनब्याही रहकर करती हैं। ऐसी भी औरतें शादी नहीं करती या शादी के प्रति उनका आकर्षण खत्म हो जाता है जिनके समलैंगिक संबंध हो जाते हैं। हालांकि अभी अपने देश में समलैंगिक औरतें ज्यादा मुखर होकर समाज से मोर्चा नहीं ले पाई हैं, इसलिए इनका लुकाछिपी का खेल ही चल रहा है। यही नहीं, बल्कि यदि बचपन में ही लड़की किसी बड़ी बीमारी या अपंगता की शिकार हो जाए तो उसको ब्याहना नामुमकिन हो जाता है, क्योंकि हमारे यहां के बीमार व अपंग मर्द भी सुंदर-आकर्षक बीवी चाहते हैं।

कुछ भी हो, औरतों की यू विवाह संस्था के प्रति निराशा या कटुता दूर की जानी चाहिए, वरना-स्त्री विरोधी अपराधों में तेजी आने को कोई रोक नहीं पाएगा। केरल, दिल्ली और पंजाब जैसे सभ्रान्त व प्रगतिशील राज्यों की 39 प्रतिशत औरतें बिनब्याही रहती हैं तो आंध्र प्रदेश जैसे तकनीक-पसंद राज्य की 32 प्रतिशत औरतें ब्याह नहीं करतीं। मगर वहीं बिहार जैसे पिछड़े राज्य की 37 प्रतिशत औरतें कुंवारी हैं, इसलिए इस समस्या का कोई एक हल नहीं निकला जा सकता, बल्कि सरकार और गैरसरकारी संगठनों को चाहिए कि वे सामाजिक कुरीतियां दूर करने की तरफ पहल करें और औरतों के विकास के रास्ते बिना परिवार तोड़े दुरुस्त बनाएं, क्योंकि अकेली औरतों के दुश्मनों से पटा पड़ा यह समाज उन्हें शिकार बनाता तो देख सकता है, उनके अकेलेपन को और किसी तरह नहीं ढो सकता।

संपत्ति के बंटवारे में भी भेदभाव जारी है

अप्रैल 2000 के दूसरे पखवाड़े में सुप्रीम कोर्ट ने हजारों बेसहारा औरतों के पक्ष में फैसला देकर कट्टर हिंदूवादियों को झकझोर दिया। इस फैसले के अनुसार, बेसहारा विधवा औरत अपने पिता से गुजारा भत्ता मांग सकती है। सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस एस.बी. मजूमदार और जस्टिस एम जे राव की खंडपीठ ने कहा कि पति की मौत के बाद यदि औरत के पास आय के कोई साधन नहीं हैं और मृत पति कोई संपत्ति भी नहीं छोड़ गया है तो वह गुजारे के लिए पिता से दावा करे। सुप्रीम कोर्ट के इस निर्णय से अब तक गुजारे के लिए ससुरालियों की गालिया-तिरस्कार सहती तमाम औरतें सुकून का जीवन जी सकेंगी। बेटी को पराया धन बताकर उसे ढकेलने वालों के लिए भले ही यह गले की घंटी साबित हो, मगर दो वक्ता की रोटी के लिए पिता पर अपना अधिकार जताने में बेटी के लिए यह निर्णय जीवन-यापन का जरिया तो बन ही जाएगा। संविधान में औरत को बराबरी का हक दिए जाने के बावजूद हमारी सामाजिक व्यवस्था उसे उसके अधिकार कभी नहीं देती। इसीलिए बार-बार सुप्रीम कोर्ट को औरत को उसका हिस्सा दिए जाने का निर्णय देना पड़ता है।

संविधान के हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम एक (अनुच्छेद-6) में स्पष्ट व्याख्या है कि संयुक्त परिवार की औरतों को संपत्ति में बराबरी का अधिकार है। हालांकि केंद्र सरकार समय-समय पर राज्य सरकारों पर इसे संशोधित करने के निर्देश देती रही है। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु ही ऐसे राज्य हैं जिन्होंने औरतों को उत्तराधिकार देने वाले इस अधिनियम में समय रहते संशोधन कर लिया है। तमाम कानूनी निर्देशों के बावजूद, हमारी औरतें उत्तराधिकार से वंचित हैं। मां-बाप दहेज चुकाने के बाद बेटी के प्रति अपने उत्तरदायित्व से मुह मोड़ लेते हैं। दूसरे, हमारे समाज में पुत्रमोह इस कदर हावी है कि उसे सिर्फ कानूनों के द्वारा खत्म करना नामुमकिन है। जब तक लड़के-लड़की की समानता का विचार नहीं कौंधेगा, तब तक इस तरह के विभेद जीवित रहेंगे। मां-बाप या भाई-भौजाई से संबंध खराब होने के डर से औरत चाहकर भी संपत्ति में दावे की

बात जवान पर नहीं हिला सकती। बेटी के मा-बाप ही अब तक उसे अपनी संपत्ति में हिस्सा देने को तैयार नहीं दिखते। दक्षिण दिल्ली में एक चालीस लाख की कोठी के मालिक एक बेटे और एक बेटी के पिता हैं। बेटे के खराब बरताव तथा बहू के दिन-रात के नानो के बावजूद किराये के लिए भटकती अपनी बेटी को वह अपनी कोठी में दो कमरे भी नहीं दे सकते? यह कैसा विभेद है? अपने ही बच्चों को लिंग के आधार पर बांटने की यह व्यवस्था आज के समाज में फिट न होने के बावजूद जारी है। पढ़े-लिखे दंपती भी बेटी को संपत्ति में हिस्सा देने से हिचकते हैं, क्योंकि रूढ़िवादी कायदों के अनुसार पिता की संपत्ति का वारिस केवल बेटा है, भले ही वह नालायक हो।

कन्या के जन्म लेने पर सभी हेय दृष्टि से देखते हैं। 'वह अवहेलना की पात्र है, लेकिन पुत्र अवहेलित होने की वस्तु नहीं। इसीलिए कन्या को उत्तराधिकार प्राप्त नहीं है, पुत्र को है'—मैत्रेयिणी संहिता (464) में यह स्पष्ट वर्णित है। चूंकि धर्मपरायण हिंदुओं को बेटी को संपत्ति में अधिकार दिया जाना अजीब लगता है, वह इसे स्वाभाविक नहीं मान पाते, इसीलिए वे इसके विरोध में तर्क प्रस्तुत करते हैं। चूंकि बेटी का विवाह इस दकियानूस समाज में बिना दहेज संभव नहीं है, इसलिए मा-बाप इसे बेटी का हिस्सा मान लेते हैं। शेष अन्य चल व अचल संपत्ति का भागीदार वह बेटा होता है, जिसके विवाह में दहेज की मोटी रकम सूती गई। जब दहेज दो और लो के चक्र का हिस्सा है तो उसे संपत्ति के अधिकार से जोड़ा जाना बचकाना तर्क हुआ न!! रही बात बेटे पर आश्रित होने के चलते उसे संपत्ति देने की, तो यदि आप अपनी बेटी को संपत्ति का अधिकार देंगे तो आपकी बहू को भी तो उसके मायके से संपत्ति मिलेगी।

अभी ज्यादा दिन नहीं हुए हैं, जब कारगिल युद्ध में शहीद हुए सैकड़ों जवानों की (विधवा) पत्नियों को सरकार ने सहायतार्थ कुछ धनराशि दी थी। उस समय ऐसी खबरें गांव-गांव से आ रही थीं कि जवान की विधवा की शादी जबरन छोटे देवर के साथ कर दी गई। उनमें से कुछ औरतों की तसवीरें अपने नए-नवेले शौहरों के साथ छपी भी थीं। दो बच्चों की मां का यह शौहर अभी दाढ़ी-मूंछ का मालिक भी नहीं बना था। बेटे के बदले मिली मोटी धनराशि बहू के हिस्से जाने देने से बचाने के लिए परिवारवालों ने यह दांव चला था। यही है औरत के खिलाफ चलाई जाने वाली मुहिम! पति की मौत पर कोई औरत उत्सव तो नहीं मना सकती। मगर गहरी चाल चलते हुए घर का पैसा घर में रखने की साजिश में छोटे बेटे को खूटा बनाकर अपनी ओछी मानसिकता प्रदर्शित की गई। ऐसे

मामलात में कोई कानून या पाबंदी क्या कर पाए? यह तो परंपराओं के नाम पर औरत से छलावा किए जाने की प्रवृत्ति है।

देश के कुछ क्षेत्रों में सदियों से यह परंपरा लागू है, जहां औरत की उम्र से बहुत छोटे देवर से उसका विवाह सिर्फ इसलिए किया जाता है कि अपने पति के हिस्से की मांग करती हुई वह जमीन-जायदाद पर अपना हक न जता दे। यहाँ भी हक की लड़ाई के लिए औरत की हसरतों, उसके सपनों, उम्मीदों और अधिकारों की बलि चढ़ाकर उसे बरगलाया जाता है।

शहीदों की विधवाओं के साथ भी यही हुआ। बेटियों के साथ भी यही होता है। बेटी को उसके हिस्से की जमीन-जायदाद देने का अर्थ है उसे सुख-चैन-से जीने देने का माहौल तैयार करना। सरकार को चाहिए कि वह ईमानदारी के साथ उत्तराधिकार कानून में तब्दीली लाए और बेटे चाहने वाले इस समाज पर दबाव बनाए, ताकि वे पूरी संपत्ति बेटे-बेटियों में बराबर बांटने को कानूनी रूप से बाध्य हो जाएं। जब तक औरत आर्थिक रूप से पुरुष के बराबर ताकतवर नहीं होगी, तब तक उसे इसी तरह की परंपराओं के नाम पर घुटना पड़ेगा। हारी हुई औरत के पल्ले क्या पड़ता है—खालीपन, उलाहने, तिरस्कार और दो जून की रोटी के लिए खटना।

पाप कैसे है विधवा होना?

इस्लाम को कोसने वाले हजारों-लाखों कट्टर हिंदूवादियों को अपनी आख, नाक, कान खोलकर समझ लेना चाहिए कि कुछ मामलों में उनका धर्म निहायत बचकाना, पुरातनपंथी और अव्यावहारिक है। हिंदू धर्म अपनी विधवाओं के साथ जिस तरह का व्यवहार करता है, वह क्रूर और धृष्ट है। उसकी जितनी निंदा की जाए, कम है। इस्लाम को पिछड़ा, दकियानूस और कट्टर धर्म मानने वालों को समझ लेना चाहिए कि उनकी ये अवधारणाएं अज्ञानता के चलते ही अब तक नहीं टूटी हैं।

कुछ मामलों में इस्लाम औरतों के काफी नजदीक का तथा व्यावहारिक धर्म है। सहिष्णु और उदार हिंदू धर्म विधवाओं को सामाजिक रूप से लगभग बहिष्कृत कर देता है। उन पर तमाम तरह के प्रतिबंध व नियम कस दिए जाते हैं। खाने-पहनने से लेकर रहने-सहने संबंधी पाबंदियां जबरन उन पर लाद दी जाती हैं। इस समाज में विधवा होने का अर्थ है एक जिंदा लाश बन जाना। जहां औरत की भूख, इच्छाएं, सपने सब रौंद दिए जाते हैं। केवल उसका शरीर जिंदा रहता है, पर दिलोदिमाग कुचल दिया जाता है।

हमारे श्रेष्ठ कूटनीतिज्ञ चाणक्य कह ही गए हैं—पति स्त्री का परमदेवता है। इसका सीधा-सा अर्थ हुआ जब देवता ही नहीं है तो स्त्री के जीने का क्या औचित्य! महान हिंदू धर्म विधवाओं को कानूनी रूप से तो नहीं, मगर सामाजिक रूप से घरनिकाला देता है। उसके रहने-पहनने, खाने-पीने, उत्सव मनाने तक कर प्रतिबंध लग जाते हैं।

धर्म सब तय करता है और झिंकाता है उसे जीवन-भर। विधवा होने का अर्थ है—नंगे पांव चलना, एक वक्त रूखा-सूखा खाना खाना, प्रभु भजन करना, मैले कपड़े पहनना, आभूषण या सौंदर्य संबंधी चीजों से दूर रहना, केश-सज्जा न करना, उत्सव आदि से दूर रहना, मंगल कार्यों में न शरीक होना आदि। ऐसी हजारों पाबंदियां उस पर लाद दी जाती हैं। इतना ही नहीं, हजारों परिवार अपने घर की विधवा स्त्रियों को काशी, वृंदावन, मथुरा या हरिद्वार तक जो धकिया आते हैं, तो

पलटकर कभी झांकते नहीं। इन शहरों में विषम स्थितियों में जीवन काटने को अभिशप्त ये विधवाएँ मौत के इंतजार में दिन बिता रही हैं। उन्हें भ्रम है कि प्रभु-भक्ति से वे मोक्ष को प्राप्त होगी। मोक्ष के लोभ में पीडा सहती ये औरतें अपनी योनि से भी निचले पायदान पर खड़ी हैं। अपने शरीर को यातनाएँ दे-देकर ये औरतें लगातार ईश-प्राप्ति में जुट जाती हैं। इन्हे भ्रम है कि इसी के माध्यम से मोक्ष प्राप्त होगा। इनकी बाकी जीवन या शायद अगला जीवन कल्याणकारी बन जाए, जबकि समाज इन्हें औरत नहीं केवल विधवा मानता है।

हिंदू विधवा तिरस्कृत है। त्याज्य है। अछूत है। घृणा की पात्र है। अमंगलकारी है। उसका विवाह निषिद्ध है। जबकि इस्लाम में स्थितियाँ एकदम विपरीत हैं और कुछ हद तक स्वागतेय भी। इस्लाम विधवाओं को सम्मान देता है। उन्हें पुनर्विवाह का अवसर देता है। वहाँ मंगलकार्यों तथा उत्सवों में विधवा की उपस्थिति सम्मानजनक मानी जाती है। इस्लाम विधवाओं से विवाह करने वाले पुरुष का भी सम्मान करने की नसीहत देता है। इस्लाम में विधवा अछूत नहीं बनती। वह परिवार के अन्य बुजुर्गों की तरह ही पूज्य होती है। आदरणीय होती है बल्कि पारिवारिक कार्यों में उसे अतिरिक्त सम्मान दिया जाता है, ताकि अपने दुःख-पीडा भुलाकर वह उत्सवमय हो सके। आम मुसलमान को समझाने के लिए कुरान में साफ वर्णित है—‘तुममें जो एकाकी (अर्थात् बे-जोड़े के अविवाहित अवस्था में) हो और तुम्हारे गुलामों और तुम्हारी लौंडियों में जो नेक हों, उनका विवाह कर दो। यदि वे गरीब होंगे तो अल्लाह उन्हें अपने अनुग्रह से संपन्न कर देगा।’ (पारा-18, सूरा-अलनूर, आयत-32) यही कारण है कि मुसलमान विधवाएँ किसी शहर, कस्बे या गाँव में घर निकाला झेलती नहीं देखी जाती।

अपने देश में तकरीबन ढाई करोड़ विधवाएँ हैं। ऐसा अंदाजा है। हो सकता है, इसकी दो गुनी हों। मगर विधवाओं के लिए कोई नीति, नियम या कानून कड़ाई से नहीं लागू होते। काशी, वृंदावन, मथुरा और हरिद्वार में हजारों की संख्या में विधवाएँ वर्षों से रह रही हैं। वे सुबह तीन घंटे भजन गाने के एवज में 250 ग्राम चावल व 50 ग्राम दाल पाती हैं। कुछ जगहों में केवल चावल मिलता है। दोपहर में वे अपने दडबेनुमा कमरों में इसे पकाती हैं। इस एक छोटी-सी, बिना खिड़की या झरोखे वाली कोठरी में 10 महिलाएँ तक रहती हैं। शाम को तीन घंटे भजन गाकर कुछ जगहों पर दो रुपये हर औरत को पारिश्रमिक के तौर पर मिलता है। ये डरी, घबराई, सकुचाई विधवाएँ महंतों, ठकेदारों और स्वामीजियों के खिलाफ एक लफ्ज भी नहीं बोल सकती। विद्रोही औरत के लिए यहाँ कोई कोना नहीं

है। उसे खदेड दिया जाएगा! घर-परिवार से पहले ही खदेडी जा चुकी, अकेली औरत एक और झटका सहने को तैयार नहीं होती, इसीलिए वह मूक रहती है मगर उसकी आंखें सब कुछ बोलती हैं।

महंतजी, स्वामीजी या गुरुजी इनके साथ देवियो जैसा बरताव तो करते नहीं होंगे, यह तय है। सैकड़ों बार खबरें आ चुकी हैं कि इन औरतों का यौन शोषण होता है। इन्हें केसरियाधारी कामांधो को यौन सुख ही नहीं देना होता है, बल्कि अपना मुंह भी सिये रखना होता है। इनकी एक भी सिसकी मौत का पैगाम ले आती है। स्वामियों के मर्दपने को ढौंती ये अकेली, बेबस औरतें सफेद लिबास के नाम पर मैले-कुचैले चिथड़े लपेटे शून्य आंखों में जो खौफ समेटे फिरती है, उस पर केवल डाक्यूमेट्री फिल्में बनाने से कुछ नहीं होगा।

इनमें से प्रायः वही सब औरतें हैं, जिनके परिवारवाले उन्हें यहा छुटकारा पाने के लिए छोड़ गए, या इसलिए छोड़ गए कि इनकी संपत्ति को हथिया सकें। भारत के संविधान के अनुच्छेद-15 में स्पष्ट लिखा है कि केवल धर्म, जाति, मूलवंश, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के साथ विभेद न किया जाए। मगर कोई माई का लाल संपत्ति के लालच में डरता है इससे? डके की चोट पर विधवाओं को धकेलकर ये ज्ञानी ऐश से अपना जीवन बिताते हैं। औरतो को पति या पिता की संपत्ति में कानूनन अधिकार देने वालों/दिलाने वालों ने कभी सपने में भी नहीं सोचा होगा कि चतुर, भावशून्य, संवेदनहीन परिवारी इन विधवाओं को लालच में ऐसे घर से निकाल फेंकेंगे।

युवा विधवाओं को यहां धकेल जाने वाले शायद नहीं जानते कि उनका शरीर नोचने को तैयार बैठे हजारों दरिंदे उनका जीवन कितना कष्टप्रद और भयावह बना देते हैं। ये अनपढ़, तिरस्कृत महिलाएं अपने अधिकारों से किस कदर अनजान हैं, यह इनसे मिलकर समझा जा सकता है। इन अशिक्षित, रूढ़िग्रस्त, डरी हुई महिलाओं को पता भी नहीं है कि संविधान के अनु 23-24 में मानव के दुर्व्यवहार का निषेध है तथा अनु. 14 में विधि के समक्ष समता और 'विधियों के समान संरक्षण' से वंचित नहीं किया जाएगा। इनके लिए इन अधिकारों के तहत आवाज क्यों नहीं उठती? क्यों नहीं हम आप चाहते कि विधवाओं का जीवन सुधरे?

हमारे महान हिंदू धर्म में विधुर के लिए कोई कानून नहीं बने। विधुर को घरनिकाला देने की कोई प्रथा क्यों नहीं जन्मी? विधुरों के लिए कोई स्थान क्यों नहीं तय किया गया, जहां वे भजन गाएं और मोक्ष का इंतजार करें? क्या विधुरों

को मोक्ष नहीं चाहिए? क्या विधुर अछूत नहीं? विधुर क्यों साज स्वतंत्र हैं? विधुर क्यों नहीं सिर घुटाकर रहें? विधुर सूखा खाएं?... क्योंकि ये सारे नियम-पाबंदियां औरतो पर लादने वाले सुख, अपनी सुविधा के लिए सब कुछ रचा था। ऐसे कूढमग्न करनी है हमें, इन पर दया कर औरतों के लिए जग लड़नी है।

खुशनसीब मर्दों से पटा समाज

अपना समाज कितने खुशनसीब मर्दों से पटा पड़ा है, इसका अंदाजा अंतरराष्ट्रीय जनसंख्या संस्थान के एक अध्ययन से लगाया जा सकता है। इस संस्थान ने अपने इस अध्ययन में महिलावादियों और उदार विचारधारा वालों को हिला देने वाले आंकड़े दिए हैं। इस अध्ययन में पाया गया है कि 56 फीसदी भारतीय औरतें पति द्वारा की जाने वाली कुटाई को जायज मानती हैं। इस अविश्वसनीय-से लगने वाले सच को परखने के लिए तकरीबन एक लाख औरतों से बातचीत की गई थी। संस्थान से संबद्ध राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण ने पाया कि हर दस में से 6 औरतें मानती हैं कि पति का मार-पीट करना कोई अनहोनी बात नहीं है।

इन औरतों के अनुसार, उनसे जब कोई गलती होती है तभी उनका पति पिटाई करता है। इन औरतों ने स्वीकारा कि वफादारी पर संदेह होने, मायके से मनचाहा दहेज, धन-दौलत या जेवर न मिलने, बिना बताए कहीं आने-जाने, घर व बच्चों की देखभाल में कोताही करने या ढंग से खाना न बनाने पर ही वे पति से पिटाई खाती हैं। यह भी बड़ा सच है कि पढ़ी-लिखी, कमाऊ, शहरी औरतें भी आम ग्रामीण, अनपढ़ औरत की तरह मुंह सिये चुपचाप पिटती रहती हैं। उनमें से जो इसे जायज नहीं भी मानतीं, वे भी चुपचाप मजबूरन पिटाई बरदाश्त करती रहती हैं।

निश्चित रूप से ऐसे सर्वेक्षण को पढ़कर निहायत मर्दवादी प्रवृत्ति के लोगो के सीने चौड़े हो जाएंगे, जबकि उन्हें शर्म से डूब मरना चाहिए। औरत को कितना कमजोर बना लिया गया है कि वह अपनी अनुभूतियां भी पेट की खोहों में घुसा लेती है। वह सब कुछ बरदाश्त करती है।

इस क्रूर मर्दवादी समाज से और कितने निचले दर्जे के सोच की गुंजाइश की जा सकती है? यह औरत को मानसिक रूप से लगातार पीछे धकेलने का नतीजा है कि आधुनिक युग में भी वह मानती है कि उसका 'ईश्वर' (महान पति) यदि उसे पीटे भी तो उसे न सिर्फ चुपचाप बरदाश्त करते रहना चाहिए, बल्कि उसके विरोध के बारे में सोचना भी नहीं चाहिए। देश की हर 10 औरतों में से

6 का पिटना साबित करता है कि बची हुई 4 औरतें या तो बेहद जुझारू हैं या अकेली हैं या फिर आर्थिक रूप से इतनी सक्षम हैं कि ये मर्द चाहकर भी उन पर हाथ नहीं उठा सकते। औरत को मानसिक रूप से इतना पीटा गया है कि अब शायद उसे यह शारीरिक पिटाई बहुत बड़ी चीज नहीं लगती। एक पिटी हुई, बेसहारा अकेली औरत से पिटाई के विरोध की उम्मीद करना बेमानी है। थप्पड़ों, धूसों, लातों यहां तक कि धारदार चीजों से मार खाने वाली औरत जानती है कि विरोध का एक स्वर उसे सड़क पर ला सकता है, बस इसी डर से वह अपनी जुबान को बनीसी के बीच जकड़े, घुटन-भरा जीवन काटती रहती है।

समाज मर्द को अजेय बताता है और औरत को जन्म से ही कमजोर होने की घुट्टी पिलाई जाती है। सारी सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक जिम्मेदारियां चूंकि औरत के हिस्से आती हैं, इसलिए वह समझ ही नहीं पाती कि उसे किस भूल के लिए कब-क्यों पीटा गया। अध्ययन में शामिल 40 प्रतिशत औरतें यदि मानती हैं कि घर व बच्चों की देखभाल में कोताही करने की वजह से वे पिटती हैं तो क्या उन पर हाथ उठाने वाले मर्दों से घर व बच्चों की देखभाल की उम्मीद नहीं की जा सकती? जो मर्द कायदे से घर खर्च नहीं देता, घर-परिवार की समस्याओं, बीमारी, छोटी-मोटी जरूरतों, राशन-पानी के इंतजाम को तबज्जो नहीं देता, उसे कौन पीटे? घर औरत-मर्द को मिलाकर बनता है, उनकी जिम्मेदारियां भी समान ही होती हैं। सारी जिम्मेदारी औरत के कंधों पर उडेलकर उसे फेलियर साबित करना कहा की समझदारी है? औरत को नाजुक बताकर जिम्मेदारियों से दबा देना, क्या साजिश नहीं है? चरित्र पर संदेह करके उसे पीटने वाले मर्दों को पहले अपने गिरेबान तलाशने चाहिए। अपने दुर्विचारों, गंदी मानसिकता और छुछुआपन से बिंधी आंखों से वे औरत के अंदर चारित्रिक दोष ही खोज सकते हैं। क्या लालबत्ती जाने वाले 50 प्रतिशत मर्द भी अपनी इस बेहूदा आदत के लिए अपनी पत्नी के हाथों पिटने को तैयार हो सकते हैं? गाय-बैल जैसा बरताव औरत के साथ करने में माहिर इन मर्दों की हथेलियां औरत को पीटने के लिए इसीलिए खुजलाती हैं कि इसे एक तरह की सामाजिक मान्यता प्राप्त है। आज भी औरतें पति के इस ऐब को अपनी गलती का कारण बताती हैं। वे न इस मुद्दे पर पडोसन से बतियाती हैं, न रिश्तेदारों के सामने पति की नाक नीची करती हैं।

अपनी मां-दादी-नानी को पिटते देखने या सुनने वाली औरत बचपन में ही समझ लेती है कि मर्द की कुंठाओं, उसकी अक्षमता के फलस्वरूप उसे ताउम्र पिटना ही है। शारीरिक रूप से पुष्ट औरत भी अपने मरियल-से पति के हाथों

इसलिए पिटती रहती है कि वह कभी स्वयं मुकाबला नहीं करना चाहती। जिस दिन वह बदले या हमले का मन बना लेगी, उस दिन हाथ उठाने से पहले ही मर्द खौफ खा जाएगा। उसे तो एहसानमंद होना चाहिए कि औरत अब तक सिर्फ बरदाश्त करती रही है।

इस घरेलू प्रताड़ना के थमने का कोई रास्ता नहीं है। साल-भर में कुल 7,250 इस तरह के मामले रिकार्ड किए गए जबकि पति की कुटाई की शिकार औरतों की भारी भीड़ है। कोई मुंह नहीं खोलना चाहता तो इसका एकमात्र कारण नैतिक-सामाजिक दबाव है। सबसे बड़ी है परिवार बचाए रहने की इच्छा। पति की इस मरम्मत से आजिज आई वही औरतें मुंह खोलती हैं, जो घर छोड़ने का फैसला ले चुकी होती हैं। ऐसा भी नहीं है कि इन सारी औरतों को कानून की समझ न हो मगर समझदार, पढ़ी-लिखी औरतें भी इन पचड़ों में पड़ने से बेहतर चारदीवारी के भीतर पिट लेना ही मानती हैं। अपनी पत्नी पर हाथ उठाकर मर्दानगी दिखाने वाले इन महानुभावों से ही यदि इस तरह के सवाल किए जाएं और उन पर इतना नैतिक दबाव डाला जाए कि वे अपनी इस करतूत को तुच्छता समझे, हैवानियत-भरा बरताव समझें तभी औरतें इस गिच-गिच से निकल सकती हैं। दुनिया की कोई औरत जानवरों-सा जीवन तो कभी नहीं चाहती। अगर मर्दों की यह संवेदना नहीं जागती तो औरत के आक्रोश से भी वह ज्यादा दिन नहीं बच पाएगा। एक न एक दिन तो विस्फोट होगा ही।

औरतों की इस नासमझी, मजबूरी या विवशता को इसलिए भी नकारा नहीं जा सकता कि इस तरह की हैवानियत के खिलाफ हमारे यहां ठोस कानून अब तक नगण्य है। भारतीय दंड संहिता की धारा-498 (ए) इस घरेलू हिंसा के खिलाफ सजा दिलवाने में सक्षम है, मगर इसका इस्तेमाल उतना आसान नहीं है। कानून विशेषज्ञों और समाजशास्त्रियों का मानना है कि कड़े कानून तो बने ही, पर इसे औरत को मानसिक रूप से दृढ़ बनाकर ही रोका जा सकता है। औरत फ्रिज या ए.सी. नहीं हो सकती यह मर्दों को समझना होगा कि जब चाहा ऑन कर लिया, जब चाहा ऑफ कर दिया।

उनकी मौत की खबर

किसी भी दिन का अखबार उठाइए, संक्षिप्त खबरों में औरतों के मरने की खबरें जरूर मिल जाएंगी, जिन्हें प्रायः पत्रकार बड़ी टालू और पुलिसिया भाषा में निबटाकर समाज का भला कर देते हैं। थानों और कंट्रोल रूम से इकट्ठा की गई इस मोटी जानकारी को केवल खबर बनाकर परोसने की यह प्रक्रिया निहायत रूखी और असंवेदनशील होती है। 'विवाहिता जल मरी' या 'महिला ने आत्महत्या की' या 'महिला फांसी पर लटकी' जैसी वाहियात हेडिंग्स लगाकर अपनी ड्यूटी पूरी करने वाले अखबारी नुमाइंदों के लिए इससे ज्यादा महत्व की खबरें लूट-बलात्कार या दुर्घटनाओं की होती हैं। ढर्रे पर लिखी जाने के बावजूद बलात्कार की (शर्मनाक) घटना 'डीसी' (दो कॉलम) छपी जाती है, जबकि औरत द्वारा तंग होकर की गई आत्महत्या केवल चार पंक्तियों में दी जाती है।

कहने का मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि बलात्कार की घटना संक्षिप्त छपी जाए, बल्कि होना तो यह चाहिए कि बलात्कारी की धज्जियां उड़ाती भाषा में असलियत लिखने का प्रयास किया जाए, न कि औरत ने क्या कपड़े पहने थे, यह छपा जाए। खैर, मुद्दे पर आते हैं, कुछ समय पहले एक ही दिन दो औरतों के मरने की खबरें छपीं। एक अशोक नगर की विवाहिता द्वारा फांसी लगाए जाने की। दूसरी संगम विहार में जहर खाकर मरी चार बच्चों की मां थी। चार-चार पंक्तियों में छपी इन खबरों में पत्रकारों ने यह तक जोड़ा कि फांसी लगाने वाली युवती जिद्दी थी। निश्चित रूप से ऐसा कहने वाला व्यक्ति निराशावादी होगा और उसमें मरने वाली औरत के प्रति तनिक भी संवेदना नहीं रही होगी।

गोल मार्केट की अनीता ने फांसी लगा ली, न्यू रोशनपुरा की निर्मला ने आग लगा ली और दिवाऊंकला की सुचिता ने जहर खा लिया। अति साधारण बल्कि कहें तो टालू रवैये से लिखी इन खबरों में केवल सतही जानकारी होती है। कोई औरत क्यों मरी— इससे किसी को मतलब नहीं होता। अखबारी पन्ने काले करने और सूचना देने की रस्म निभाने के नाम पर छपने वाली इन खबरों का न कोई

सामाजिक विश्लेषण हांता है, न खाजबीन या पूछताछ करने का जोखिम उठाने की जरूरत। टेलीविजन द्वारा समाचार परोसने का स्वांग करने वालों के लिए तो यह समाचार भी नहीं होता। उन्हें तो केवल राजनीतिक पार्टियों और उज्ज्वल वस्त्रों में ढके-भुंदे मोटी चमड़ी वालों के पीछे फिरने से फुरसत नहीं मिलती।

कोई कुंवारी लडकी, नवविवाहिता या चार बच्चों की मायूं ही तो नहीं मर जाती। रोज दो-चार खबरें, वह भी स्थानीय, छापने को क्या माना जाए?

यदि रोजाना देश-भर से इस तरह मरने वाली औरतों की सूची छपी जाए तो और भी खौफनाक समाचार तैयार होगा। हालांकि ये सारी सूचना पुलिस रिकार्ड द्वारा तैयार होंगी। यह किसी से छुपा नहीं है कि झमेलों से बचने के लिए प्रायः लोग खुदकुशी के मामलात को छिपाने का प्रयास करते हैं, इसलिए बमुश्किल 50 प्रतिशत मामले ही थानों-चौकियों तक जा पाते हैं। मरने वाली ये औरतें निश्चय रूप से शौकिया नहीं मरती। सैकड़ों कारण-दुःख उन्हें बरसो कोसते हैं, कोई हल न ढूँढ पाने की झल्लाहट में अंततः वे अपना जीवन समाप्त कर डालती हैं। विषम होती जा रही सामाजिक परिस्थितियों की सबसे ज्यादा मार औरतों पर पड़ी, खासकर महानगरीय मध्यवर्गीय औरतें इसके निशाने पर हैं। आधुनिकता-बदलाव और नएपन के झमेले औरतों के गले इस कदर पड़े हैं कि उनसे पारपरिक रहकर पाश्चात्य ढांचे में समाने की उम्मीद की जानी ही अव्यवहारिक है। अंग्रेजी बोलने वाली, खूबसूरत, गोरी, छरहरी, प्रोफेशनल बीवी तो सबको चाहिए, मगर साथ ही वह घरेलू हो और गृह कार्य में दक्ष भी। यानी टू-इन-वन मॉडल चाहिए, जब जैसा मरजी उपयोग किया। यदि औरत आपके बनाए ढांचे में फिट नहीं हो पायी तो मर जाना ही उसकी नियति हो जाती है।

लडकियां दहेज या रूप के कारण कुंवारी रह जाएं, कम दहेज लाएं या बेटा न जन पाएं तो उन्हें रोज-ब-रोज ताने-उलाहने दिए जाते हैं। किसी कारण पति छोड़ दे या वह विधवा हो जाए तो पूरा परिवार उसे ही दोषी ठहराता है। पुरुष अपनी शिकायतें, दुख-गम, गाली-गलौच करके, झगडकर, मारकूटकर, नशे से, दारू चढाकर कैसे भी कुछ समय के लिए भुला लेता है पर औरतों को यह सुविधा भी नहीं है। वे घर की कलह से ऊबकर अकेली पार्क या सुनसान में घटो नहीं बैठ सकतीं। वे हर शाम दारू चढाकर रंभाने को स्वतंत्र नहीं हैं, वे चिडचिडाहट में आकर पति को चाटें नहीं लगा सकतीं, अपनी मरजी परिवार पर जबरन नहीं थोप सकतीं, संकीर्णताओं और रेडीमेड साचों में यदि वे जरा कसमसाईं तो असंतोष और कुठाओं का शिकार हो जाती हैं।

दुःखद तो यह भी है हमारे यहां इस तरह के न तो सामाजिक विश्लेषण होते हैं, न ही सर्वेक्षण। जिनके आधार पर इसका कारण ढूंढा जा सके। 'औरत/युवती या लड़की मरी' खबर यह नहीं होती, दरअसल तो असली खबर होती है कि वह क्यों मरी? उन स्थितियों की पड़ताल जरूरी है कि कोई औरत मरने को क्यों मजबूर हुई? समाज कल्याण मंत्रालय, महिला व बाल विकास प्रभारी व महिला आयोगों की यह नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि समाज द्वारा मौत की तरफ धकियाई गई इन औरतों की मानसिक टूटन को समझें। उनके सहयोग के लिए विशेष अनुभाग आदि बनाएं। औरतों के सबलीकरण को केवल कागजी न बना रहने दे। केवल मीडिया द्वारा उछाले गए बड़े-बड़े मामलात पर मुंह खोलने वाले संगठनों का यह नैतिक दायित्व होना चाहिए कि वे औरतों को मजबूरन मरने देने की बजाय उनमें नई हिम्मत जोश और उत्साह भरे। लेकिन औरतों के मरने के इन सामाजिक कारणों पर केवल खेद जताने या सिर झुकाने की बजाए नई ऊर्जा के साथ जूझना होगा, वरना ये मरेंगी और बस, चार बेहूदा पंक्तियां ही छपेंगी, फिर सब खत्म।

महामारी बनती घरेलू हिंसा

अति संपन्न, विकसित, समृद्ध और लगभग 98 प्रतिशत साक्षरता वाले राष्ट्र अमेरिका की औरतों को भी आम भारतीय औरतों की तरह घरेलू हिंसा का जबरदस्त शिकार बनाया जाता है। दुनिया की 30 प्रतिशत औरतें इस घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं। अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा हाल ही में करवाये गये एक अध्ययन के नतीजे इतने चौंकाने वाले हैं कि सारी दुनिया की औरतें इनसे घबरा जाएं। इस रपट ने माना कि वहां होने वाले अपराधों में सबसे अधिक यौन हमले हैं। जिनकी हर 45 सेकंड में एक औरत शिकार हो रही है। दुःखद तो यह है कि वहां भी इस तरह के अपराधों का कोई रिकार्ड मौजूद नहीं है, न ही इसकी शिकार औरतें पुलिस के पास जाती हैं।

इन यौन हमलों को वहां बहुत गंभीरता से लिया जा रहा है और इसे मूक आक्रामक महामारी का नाम दिया गया है। अमेरिका के राष्ट्रीय पीड़िता केंद्र के अनुसार प्रतिवर्ष सात लाख से ज्यादा औरतों के साथ बलात्कार किया जा रहा है या उन पर विभिन्न तरह के यौन हमले हो रहे हैं। इससे भी भयानक तथ्य यह है कि शिकार की गई औरतों में 61 प्रतिशत 18 वर्ष से भी कम उम्र की बच्चियां हैं। 1991 की एक रपट के अनुसार, यौन हमलों की शिकार बच्चियों में से 32 प्रतिशत केवल 11 से 17 वर्ष की उम्र की थीं। हालांकि इन यौन हमलों के मनोविज्ञान को परखते हुए विशेषज्ञों ने यह भी माना कि अन्य पुरुषों की बजाय पतियों से यह खतरा तीनगुना ज्यादा है। अमेरिकी समाज में भी औरतें तमाम समृद्धि, उच्च शिक्षा व आर्थिक रूप से संपन्न होने के बावजूद घरेलू हिंसा का जबरदस्त शिकार हो रही हैं। राष्ट्रीय रोग नियंत्रण व निदान केंद्र द्वारा कराए गए एक राष्ट्रीय सर्वेक्षण में पाया गया कि 25 प्रतिशत औरतें अपने पति, होने वाले पति या सहजीवी द्वारा शारीरिक रूप से लगातार प्रताड़ित की जाती हैं।

अपने देश में औरतों के साथ इस तरह की हिंसा आम होने के बावजूद कोई पुख्ता आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी माना जाता है कि 70 प्रतिशत औरतें कभी न कभी पति द्वारा मारी-पीटी जाती हैं। हालांकि अपने देश में औरतों के प्रति

उनक पति क्रूरतम व्यवहार करने के इतने आदी हो गए हैं कि व इसे अपना मौलिक अधिकार समझते हैं। पतियों द्वारा की जाने वाली मार पिटाई, माली-गलौज, हाथापाई और नोचने-खसोटने की आदत के खिलाफ न तो हमारी औरते मुह खोलना जानती हैं और न इसके विरोध के लिए उनके पास कोई पुख्ता जमीन ही है। और हमारी सरकार को कभी औरतो की दुर्दशा या उनकी समस्याओं से कुछ लेना-देना होता नहीं है, वह तो इसे घरेलू विवाद कहकर हाथ झाड़ लेती है। है तो दहेज हत्या भी घरेलू विवाद ही, लेकिन जब तक बात हत्या तक न पहुच जाए, सरकार कान में रुई ठूसे बैठी रहती है। प्रायः प्रगतिशील विचारको द्वारा यही माना जाता है कि औरते यदि पर्याप्त शिक्षित और आर्थिक रूप से संपन्न हो जाएं तो घरेलू हिंसा से मुकाबला किया जा सकता है। स्वयंसेवी मंस्थाएं भी यही दावा करती हैं कि औरतों को अधिकार दिलाए जाने की जरूरत ज्यादा है। इन लोगो को अमेरिकी औरतो के प्रति जारी इस मूक आक्रामक महामारी से सीख लेनी चाहिए। अमेरिकी औरतें प्रायः पढ़ी-लिखी, उच्च शिक्षाप्राप्त, कैरियरिस्ट, खासा पैसा कमाने वाली ही हैं। मगर इन्हे घर-बाहर उसी माहौल से जूझना पड़ रहा है जिससे हमारी अनपढ़ या अल्पशिक्षित, पति पर निर्भर औरते जूझ रही हैं। उनसे जबरन यौन संबंध बनाए जाते हैं और उन्हें प्रताड़ित करने के लिए मारपीट के अलावा तिरस्कार, अपमान और धमकियों का भी सामना करना पड़ता है।

अमेरिका में हुए अध्ययन में पाया गया कि 6.9 प्रतिशत औरतों को पति/प्रेमी या सहजीवी जबरन यौन संबंध बनाने के लिए बाध्य करते हैं। उन्हें बेइज्जत किया जाता है और शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। इसके अनुसार औरतों को अतरंग जोड़ीदार द्वारा जातीय व क्षेत्रीय आधार पर भी हिंसा का शिकार बनना होता है। यह अध्ययन दावा करता है कि एशियाइयों में निचले वर्ग की औरते पति की हिंसा का शिकार अधिक होती है, जबकि अफ्रीकी, अमेरिकी व अमेरिकन इंडियन औरतों के प्रति हिंसा बढ़ती जा रही है। हालांकि अपने देश में घरेलू हिंसा की शिकार औरतो को किसी विशेष क्षेत्र, जाति या वर्ग के आधार पर बांटना मुश्किल है, क्योंकि यहां हर वर्ग की औरत इस हिंसा की जबरदस्त शिकार है। पत्नी की पिटाई करना या उसे धमकाना-गालियां देना, उसके साथ बदसलूकी से पेश आना, उसे दुत्कारना, अपमान करना भर्दवादी, दंभी और खुद को श्रेष्ठ समझने वालो के लिए गुरुर की बात भले ही हो, पर यह निहायत घटिया और अमानवीय तरीका है।

उचित कानूनों के अभाव और नैतिकता के दबाव में औरतें चुपचाप मुंह

सिए यह हिंसा बरदाश्त करती रहती हैं। हालाँकि पति-पत्नी के संवध को ही लड़ाई की जड़ मानने वालों को आश्चर्य भले ही हो मगर लेस्बियन और गे जोड़िया भी इस घरेलू हिंसा की शिकार हैं। औरत के साथ रहने वाली 11 प्रतिशत औरतें भी बलात्कार, मार-पीट और बदतमीजी की शिकार होती हैं। ठीक वही स्थिति मर्दों की भी है। लगभग 23 प्रतिशत मर्द अपने मर्द साथी की पिटाई करते हैं, उससे जोर-जबरदस्ती और बदसलूकी तक करते हैं।

कुल मिलाकर पूरी दुनिया आज घरेलू हिंसा की चपेट में है। जब तक मर्द औरतों को अपनी निजी संपत्ति के तौर पर इस्तेमाल करता रहेगा और मानसिक रूप से उसे बराबरी का ओहदा देने से कतराएगा, तब तक यह हिंसा बढ़ती ही रहेगी। यौन आक्रमणों द्वारा अपने अंतरंग जोड़ीदार को काबू करना मर्दाना प्रयास तो हो सकता है, मगर यह कभी भी औरतों द्वारा स्वीकार्य न होगा। कानून में खामियां होने के बावजूद औरतें इसके प्रति विरोध जताना तो जान ही जाएंगी।

भेड़ें नहीं हैं औरतें

कुछ पुरुषों की नजर में औरत बस देह-भर ही क्यों रह जाती है? यह शोध का विषय हो सकता है। औरत को देह मानने वाले ही, कोमा में पड़ी पत्नी को गर्भवती कर डालते हैं, चलती बस में उसके साथ बलात्कार कर लेते हैं, उसे बेच डालते हैं या कर्ज लेने के लिए बंधक बनवा देते हैं। मध्यम वर्ग या निचले तबके में औरतों के साथ घटने वाली इन वीभत्स घटनाओं का जब तक समाजशास्त्रीय अध्ययन नहीं किया जाएगा, तब तक यह गुथी सुलझने वाली नहीं। रोज-ब-रोज औरतों पर तरह-तरह के वीभत्स अत्याचार किए जा रहे हैं, जिनमें से इनी-गिनी घटनाएं अखबारों तक पहुंच पाती हैं।

सबसे वीभत्स घटना पटना की है, जहां दो साल से कोमा में पड़ी कंचन के साथ शारीरिक संबंध बनाने वाला उसका पति (तारकेश्वर) ही अपराधी है। उसे अपराधी इसलिए कहा जाएगा कि उसने अपने सुख की खातिर एक बेबस-लाचार और मौत से जूझ रही औरत को अपनी मर्दानगी का शिकार बनाया। विवाह द्वारा पत्नी को सामाजिक रूप से शारीरिक संबंध बनाने की मान्यता प्राप्त होने का अर्थ यह तो नहीं कि उसे किसी भी विषम परिस्थिति में अपनी मरजी से इस्तेमाल किया जाता रहे।

यह वही कंचन है जो डॉक्टरों की लापरवाही के चलते दो साल पहले कोमा में चली गई थी। पैसों के अभाव में घरवालों ने उस वापस घर लाने का निर्णय लिया था। डॉक्टरों द्वारा कंचन के स्वस्थ न होने की आशंका के बाद तारकेश्वर ने पटना उच्च न्यायालय में मर्सी किलिंग (ऐच्छिक मृत्यु) के लिए अनुरोध किया था। वह चाहता था कि चूंकि उसकी पत्नी पुनः स्वस्थ नहीं हो सकती, इसलिए उसे मर जाने दिया जाए, क्योंकि उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। पर न्यायालय ने इसे असंवैधानिक करार देते हुए पटना मेडिकल कॉलेज को कंचन की जिम्मेदारी सौंप दी थी। अब अचानक तारकेश्वर ने यह कहकर सनसनी फैला दी है कि कंचन पेट से है। अपनी मरणासन्न पत्नी से शारीरिक संबंध बनाकर इस हैवान रूपी पति ने भले ही अपने वैवाहिक अधिकारों का

इस्तेमाल किया हो परंतु इसे अनैतिकता, जघन्य अपराध, असंवेदनशीलता और पाशविकता-भरा वरताव कहना अतिशयोक्ति तो नहीं ही होगा। ऐसे पति को क्या सजा नहीं दी जानी चाहिए? यदि यह कहा जाए कि तारकेश्वर अपनी पत्नी को इसलिए 'ऐच्छिक मृत्यु' दिलाना चाहता था कि वह उसके भार से मुक्त हो नया विवाह रचाए और मौज से रहे, तो कोई गंभीर आरोप नहीं होगा।

दूसरी घटना में एक औरत के पति और नन्दोई ने मिलकर उसे करोली (जिला दौसा) में एक लाख रुपये में बेच दिया। औरत को बेचकर धन उगाहने वाले इन मर्दों की ठोस बुद्धि की दाद देनी होगी। यदि इसका दांपत्य जीवन मधुर नहीं था, पत्नी से पट नहीं रही थी, वह उससे बंधन मुक्त होना चाहता था तो वैधानिक रूप से तलाक आदि के द्वारा उससे मुक्ति पा सकता था। मगर उन व्यावहारिक तरीकों को छोड़कर उसने पाशविक तरीका ईजाद किया और असामाजिक रवैया अपनाते हुए उसे बेच डाला।

उधर उड़ीसा से आ रही खबरों के मुताबिक गरीबी की चपेट में आए तमाम मजदूर ऋणों का भुगतान न कर पाने के कारण अपनी पत्नियों को बंधक रख दे रहे हैं। यही है इस समाज का असली चरित्र। जहां औरत की स्थिति पालतू जानवरों से भी गई-गुजरी मानी जाती है। अपने अर्थ-सुख के लिए औरत को बेच देना कितना आसान है, इसके लिए न अतिरिक्त प्रयास की जरूरत पड़ती है, न ही किसी मंडी की। औरतों को खरीदने या बंधक रखने वाली मानसिकता वाले पुरुषों से यह समाज पटा पड़ा है। यहां औरत की कोई हैसियत नहीं मानी जाती। गाय-बैल की तरह उसका इस्तेमाल किया जाता है और जरूरत पड़ने पर उसे बेच दिया जाता है। आपसी रंजिश-निकालने के लिए उसे नंगा करके गांव-भर में घुमाया जाता है, किसी पुरुष से बदला लेने के लिए उसकी पत्नी का बलात्कार कर डाला जाता है। अपने समाज में औरतों की तो कोई इज्जत है नहीं, हां पुरुष उन्हें अपनी मान-मर्यादा से जोड़कर जरूर देखते हैं। औरत की बेइज्जती उन्हें परेशान नहीं करती, जबकि अपने अपमान का बदला लेने के लिए वे कुछ भी कर गुजरने को फुफकारते दिख जाते हैं। लाचारी-बेबसी और निरीहता का चोला ओढ़े औरतें जबान दबाए ये अत्याचार सहती आ रही हैं। औरतें, मुर्गियों और बकरियों की तरह बिक रही हैं, उनका शारीरिक-मानसिक-भावनात्मक दोहन हो रहा है पर सरकार और सरकारी संगठन मौन हैं। कहीं कोई विरोध का स्वर नहीं गूंजता, संसद या विधानसभाओं में इस अत्याचार के खिलाफ एक लफ्ज नहीं बोला जाता।

दुगा, सरस्वती और सतीषी माता की जय करने वाला यह समाज भीतर से कितना क्रूर और वीभत्स है।

विकास और वैश्वीकरण के झंडे हम कितने ही फहरा ले, जब तक इस तरह की सामाजिक कुरीतियां व औरत-मर्द के दरम्यान मौजूद विषमता खत्म नहीं की जाती, तब तक औरत और भेड़ में कोई फर्क नहीं समझा जाएगा।

मर्दवादी विचारधारा पर कुठाराघात करने के लिए सख्त और भय पैदा करने वाले नियम जब तक नहीं बनाए जाते, तब तक मर्दों द्वारा ये वाहियात कारनामे दोहराए जाते रहेंगे। कंप्यूटर क्रांति के इस दौर में आदिम प्रवृत्तियों का दोहराया जाना किसी समाज की निकृष्ट सोच का परदाफाश करता है। एक बेजान औरत में गर्भ रोपने वाला पति किसी बलात्कारी से कमतर तो नहीं आका जा सकता। चलती बस में औरत के साथ किया जाने वाला बलात्कार हो या उसे मंडी में बेच दिए जाने की प्रवृत्ति, जब तक ऐसा करने वाले अपराधियों को कठोर दंड नहीं दिए जाते, तब तक औरतें भय और असुरक्षा तले ज़िंदा रहने को अभिशप्त रहेंगी।

मर्द बनने का स्वांग

केवल पढी-लिखी या आधुनिक औरतें ही आजादी व स्वच्छता की दीवानी नहीं होती। प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि आधुनिक औरतें चूंकि परंपराओं के विरोध में उतर आती हैं, इसलिए वे सामाजिक मान्यताओं को झुठलाना अपना शगल समझती हैं। ठीक इसके विपरीत, यदि भारतीय परंपराओं का बारीक परीक्षण करे तो यहां कई दफा हिम्मत को दाद देने वाली रूढ़ियां प्रचलित पाई जाती हैं। राजस्थान के जोधपुर जिले के कुछ गांवों में एक ऐसी ही प्रथा प्रचलित है।

एक हिंदी पत्रिका में रोहित परिहार की छपी रपट के अनुसार, होली के एक महीने बाद 'धींगा गवर' नाम से एक त्योहार मनाए जाने का चलन है। औरतो द्वारा मनाया जाने वाला यह त्योहार दरअसल 'औरतों की रात' नाम से भी जाना जाता है। इस दिन सैकड़ों की संख्या में औरतें बन-संवरकर सड़कों पर उतर आती हैं। इनमें से अधिकतर औरतें पुरुषों के वेश रखे होती हैं। कुछ औरतें तिरुपति बालाजी, शिवाजी या महाराज जोधपुर की तरह तैयार होती हैं, तो कुछ मोटी-मोटी मूछे लगवाकर पुरुषवेश में होती हैं। ये औरतें समूह में सड़कों पर घूमती हैं और मौका पाते ही छेड़छाड़ करने वाले या रोड़े अटकाने का प्रयास करने वाले लड़कों को पीट डालती हैं। इस दिन के अंत में वे भांग मिला प्रसाद खाती हैं और उम्मीद जताती हैं कि पूरा साल उन्हें इसी हैसियत से जीने को मिले।

किसी समाज में दबी-पिछड़ी और सताई गई औरतों को इससे अच्छे प्रदर्शन की छूट कहां मिलेगी। बिना किसी प्रतिरोध के, परंपरा के नाम पर वे अपने दवे हुए सपनों व कुठाओं को बखूबी प्रदर्शित कर लेती हैं। सामाजिक स्वीकृति-प्राप्त यह त्योहार मर्दों की लाख बुरा लगने के बावजूद, किसी आंदोलन का सिरा नहीं माना जाता। भाग खाकर, उसके नशे में झूमना या बौरावेपन का मजा चखना उनके लिए यूं तो अनैतिक है, पर इस बहाने से वे इसका मजा लेने से चूकना नहीं चाहतीं। समाज में औरतों को इतने नियम-कायदों में जकड़ दिया जाता है कि उनके भीतर धीरे-धीरे कुठाएं पनपने लगती हैं और वे एक अजीब तरह की संकीर्णता में जकड़ जाती हैं। उत्तर प्रदेश के कुछ ऐसे इलाकों से मेरा परिचय है

जहां ठीक इसी परंपरा को औरतें जीती हैं। बस फर्क इतना है कि वहां सालाना कोई त्योहार नहीं होता। लड़के की शादी वाले घर में औरतें इसे मनाती हैं। जब वर पक्ष बारात के रूप में वधू पक्ष के घर/शहर चला जाता है, उस रात लड़के के घर में बची हुई औरतें एक छद्म जीवन जीती हैं। 'नकटौरा' के नाम पर घर की तमाम वयस्क औरतें शादी के मंडप के नीचे जमा होती हैं। इनमें से एक औरत शादी वाले लड़के के पुराने कपड़े पहनकर, मूंछ आदि बनाकर पगड़ी बांधती है। कुछ अन्य औरतें बाकायदा उक्त (छद्म) वर के परिजन यानी बाबा, मामा, चाचा, पिता, भाई आदि की मर्दाना भूमिका में आ जाती हैं। इनमें से एक औरत वधू के रूप में तैयार की जाती है। रात-भर चलने वाली इस नौटंकी में बाकायदा विवाह संपन्न किया जाता है। उक्त वर-वधू एक कोने में जाकर सुहाग रात का भी स्वांग करते हैं, जिसमें वर रूपी औरत वधू को जी भरकर सताती है।

यह मजेदार तथ्य है कि दोनों ही परंपराओं में मर्दों की उपस्थिति पर कड़ाई से रोक लगाई जाती है। स्वतंत्रता और आजादी या स्त्रीविमर्श जैसे मोटे-मोटे लफ्जों को जाने या समझे बिना ही, वर्षों से पीढ़ी दर पीढ़ी वे इस तरह का स्वांग करती आ रही हैं। यही वह दिन होता है जब वे अपने औरतपने पर मर्द को हावी कर लेती हैं और वही सब जीने की कोशिश करती हैं, जो मर्द रोजाना करते हैं। मर्दों का चोला ओढ़कर ये उनकी अच्छाइयां जीने की कोशिश नहीं करतीं, बल्कि वही सब करती हैं, जिसके जरिये इन्हें सताया जाता है।

दरअसल औरतों के भीतर आज से नहीं, बल्कि सैकड़ों सालों से घर के मर्दों का जो हौव्वा बैठा होता है उसका वे जोरदार विरोध नहीं दर्ज करा सकतीं। उन्हें परिवार नामक इकाई में वह सब कुछ मुंह सिए जीना होता है जो मर्द कर रहा है। वह जोर-जबरदस्ती करे या मार-पिट्टाई, औरत उसे झेलने को अभिशप्त है। वह जानती है कि इसके विरोध का अर्थ है, सड़क पर आ जाना। दूसरे सामाजिक-पारिवारिक बंधनों में वह इतनी उलझी होती है कि प्रतिरोध का खयाल भी उसके लिए बेमानी होता है। मगर ये दबी हुई इच्छाएं उसे कुछ ऐसा करने के प्रति प्रेरित करती हैं, जिनके मार्फत वह सब कर सके जिसका मजा मर्द लूटता है। आज भी समाज में ऐसी गिनती की औरतें होंगी जो अपनी मरजी चला सकती हैं या अपने दिल की बात खुलकर कर सकती हैं। औरतों के लिए रची गई वर्जनाएं इतनी सख्त और बेसिरी हैं कि उनका विरोध उसके बस की बात नहीं रह जाती। सामाजिक रूप से औरत को एक ऐसे पूर्वनियोजित सांचे में कसना शुरू कर दिया जाता है, जिसके अभाव में वह खुद को अपूर्ण व असुरक्षित

महसूसने लगती है।

अभी ज्यादा दिन नहीं हुए हैं जबकि सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक निर्णय में कहा था कि मर्द मुखिया के अभाव में परिवार को संयुक्त नहीं माना जा सकता। यानी जिस घर में केवल औरतें होंगी उमे संयुक्त परिवार का दर्जा नहीं दिया जाएगा। मान लीजिए, किसी छत के नीचे बूढ़ी दादी, विधवा मां और परित्यक्ता युवती या बहू व उसकी बेटी रहती हैं तो उन्हें संयुक्त परिवार नहीं माना जाएगा। ऐसा इसलिए होगा कि इस इकाई के सिर पर एक मर्दाना हाथ नहीं है। दूसरा अहम सवाल है— मान लीजिए, किसी परिवार में औरत घर के मर्दों से ज्यादा पैसा कमाती है और घर का आर्थिक भार उसके कंधों पर है तो भी उसे घर का मुखिया नहीं माना जाएगा। मुखिया दरअसल एक मान्यताप्राप्त ओहदा है, जिसे यह समाज पुरुषों को ही देता है। यह हम औरतो का दुर्भाग्य है कि माननीय न्यायालय भी पुरुषों के इस ओहदे को सुरक्षित रखना चाहता है, वह भी तब जबकि औरतें अपनी अहमियत, अपनी मौजूदगी और अपने वजूद की लड़ाई जोरदार तरीके से लड़ रही हैं। इस सबसे ज्यादा मान लिया जाए कि औरत केवल स्वाग रचकर ही मर्द बनने/होने की संतुष्टि पा सकती है। क्या उन्हें कभी भी, कैसे भी वे अधिकार नहीं दिए जा सकते, जो मर्दों ने अपने लिए सुरक्षित रखे हैं?

मर्दों के पक्ष में जाता फैसला

परंपरावादियों और संस्कृति का रोना रोने वालों को माननीय इलाहाबाद हाई कोर्ट ने अपने एक फैसले से करारा झटका दिया है। कोर्ट ने एक मामले की सुनवाई के दौरान स्वीकारा कि कानून और नैतिकता में बहुत फर्क है। कोर्ट ने कहा है कि कोई भी मर्द और औरत आपसी सहमति से, बिना शादी किए एक साथ रह सकते हैं। दो सदस्यीय खंडपीठ ने स्पष्ट किया कि समाज द्वारा इसे भले ही अनैतिक माना जाए, पर यह गैरकानूनी नहीं है।

यह फैसला एक शादीशुदा मर्द और एक लड़की के साथ रहने पर दिया गया। लड़की के पिता ने आरोप लगाया था कि उस आदमी ने उसकी लड़की का अपहरण किया है। चूंकि लड़की 21 वर्ष की है, इसलिए कोर्ट उसे स्वनिर्णय की इजाजत देता है। उक्त फैसले के बाद ऐसा माना जा रहा है कि कानून की नजर में बिना शादी किए सहजीवन काटने वालों को हरी झंडी मिल गई। विवाह संस्था को ढोंग बताने वाले तथा इसे अपने तर्कों से कंडम करने वाले हजारों जोड़े अब अपने देश में भी पाए जाते हैं। हालांकि अभी तक इन्होंने न तो कोई गंभीर लड़ाई लड़ी है और न ही अपने संबंधों को सामाजिक स्वीकृति दिलाने के प्रति विशेष बल ही दिया। यह सच है कि स्वेच्छा से अपना जीवनसाथी चुनकर बिना (विवाह) आडंबर किए, आपसी सहमति के आधार पर अपना जीवन काटने को हर वयस्क स्वतंत्र होना चाहिए। सात फेरे लगाने या एक दफ्तरी रजिस्टर में दस्तखत करने का अर्थ ताउम्र संबंधों को ढोने के लिए मजबूर (त्रस्त) होना नहीं है, क्योंकि संबंध-विच्छेद या तलाक का अधिकार आपके पास हमेशा सुरक्षित रहता है। जीवन को अपने ढंग से जीने के लिए स्वतंत्र होना एक बात है और सामाजिक व्यवस्था को ठेंगा दिखाना दूसरी।

यहां विवाह संस्था का महिमा-मंडन नहीं किया जा रहा, क्योंकि यह एक तरह का मानसिक छलावा ही है। चूंकि कोर्ट द्वारा दिया गया यह फैसला एक विवाहित मर्द और अविवाहित औरत के साथ रहने पर है, इसलिए औरतों के हक के कुछ जायज सवाल उठ रहे हैं। हिंदू विवाह कानून की नजर में एक से अधिक

शादियां गैरकानूनी हैं, लेकिन इस फैसले के बाद तो उन पुरुषों की बल्ले-बल्ले हो जाएगी, जिन्हें कई औरतें रखने का सामती शौक है। अपनी (कानूनी) पत्नी के अलावा वे अलग-अलग कई औरतों के साथ सहजीवन बिताने को स्वतंत्र हो जाएंगे।

हालांकि माननीय अदालत ने अपने इस फैसले में यह नहीं स्पष्ट किया है कि कोई विवाहित औरत अगर अपने पति के अलावा दूसरे मर्द के साथ जीवन काटना चाहे तो वह इसके लिए स्वतंत्र होगी या नहीं। क्योंकि अब तक कानून विवाहेतर संबंध रखने वाली औरत के साथ संबंध-विच्छेद का अधिकार देता है। यदि इलाहाबाद हाईकोर्ट का निर्णय आधार बनाया जाए तो अनैतिक होने के बावजूद कोई भी शादीशुदा औरत दूसरे मर्द से संबंध रखने को स्वतंत्र मानी जाएगी यानी उस पर कोई कानूनी कार्रवाई नहीं होगी। यह फैसला एक औरत के पक्ष में होने के बावजूद मर्द के पक्ष में ज्यादा दिखता है। क्योंकि इसमें मर्द साफ बच गया जबकि औरत के ऊपर अनैतिकता का ठप्पा लग गया। चूंकि अब तक विवाहेतर संबंधों को अनैतिक ही नहीं माना जाता था, बल्कि यह गैरकानूनी भी थे, इसलिए दूसरी औरत के साथ रहने वाले मर्दों को कानून का खासा खौफ था, मगर इस निर्णय से यह जाता रहेगा। विवाहेतर संबंध को कानूनी नजर में वैध करार देने के बाद संपत्ति और अधिकारों की बात भी उठनी लाजमी है। अच्छा होता कि इस अभूतपूर्व फैसले पर निर्णय देते समय अदालत द्वारा यह भी साफ कर दिया जाता है कि एक शादीशुदा मर्द के साथ रहने वाली औरत को क्या पत्नी को प्रदत्त सारे अधिकार दिए जाएंगे?

विद्वान न्यायाधीश-द्वय द्वारा दिए गए इस फैसले से एक गुत्थी और भी उलझ गई है कि समाज की नजर में जो अनैतिक है क्या उसे ठेगा दिखाकर कोई भी पुरुष कानून का संरक्षण प्राप्त कर सकता है? कोई बाप जब अपनी बच्ची के साथ बलात्कार करता है तो क्या उसे केवल अवयस्क के साथ यौन संबंध बनाने का दोषी माना जाना चाहिए? क्योंकि अपनी जायी बच्ची से यौन संबंध बनाना गैर-कानूनी से ज्यादा अनैतिक ही है, जिसे घृणित और तिरस्कृत माना जाता है। नैतिकता और अनैतिकता में विभेद यदि मानव दिमाग की उपज है तो कानूनी और गैरकानूनी के बीच की रेखा भी विद्वानों द्वारा तर्कों के आधार पर ही खींची गई है।

कानून की नजर में औरत और मर्द में भेद करने की सख्त मनाही है, इसके बावजूद दोनों को मिले अधिकारों में जमीन-आसमान का फर्क है। यह सच है

कि समाज की नजर में औरत और मर्द के लिए नैतिकता की परिभाषाएँ बिल्कुल अलग-अलग हैं। जरूरी नहीं है कि जो औरत के लिए अनैतिक हो, वह पुरुष के लिए भी अनैतिक माना जाए। मसलन लालबत्ती इलाके में जाना अनैतिकता के दायरे में आने के बावजूद लगभग स्वीकार्य है, ढेरों मर्द बिना रोक-टोक यौन सुख के लिए पैसों के बूते वहाँ जाते हैं। लेकिन इन मर्दों का न तो सामाजिक रूप से बहिष्कार किया जाता है और न ही अनैतिकता का आरोप लगाकर किसी प्रकार मानसिक या शारीरिक रूप से दंड दिया जाता है। मगर यही समाज किसी औरत द्वारा पुरुष से संबंध रखने को हेय दृष्टि से देखता है। उसे कुलटा, कुलच्छनी, चरित्रहीन और बदचलन जैसे विशेषणों से संवार देता है। सामाजिक रूप से अनैतिक होने के बावजूद यदि कानून उसे यून ही आश्रय देता रहा तो अफरा-तफरी का जो माहौल पैदा होगा, उससे निपट पाना मुश्किल हो जाएगा। औरतों के प्रति होने वाले अपराधों की बढ़ती संख्या इस बात की गवाह है कि सामाजिक रूप से अनैतिक होने के बावजूद, आम आदमी के मन में भय जैसा कुछ नहीं होता। वह केवल कानून से ही आतंकित रहता है। यदि कानून भी उसे यून प्रश्रय देता रहेगा तो औरतों की स्थिति का फायदा उठाने वाले मर्दों को रोक पाने का साहस कौन कर पाएगा?

ऊबे हुए पतियों की मस्ती

जून का महीना औरतों के लिए इतनी तपन और झुलसती गर्मी के बावजूद बेहद सुकून देने वाला होता है। साल-भर घर गृहस्थी में खटने के बाद वे बच्चों की छुट्टियों का भरपूर आनंद अपनी मां के घर जाकर उठाती है। कमोबेश इधर कई ऐसे पतियों का दिमाग टटोलने का मौका मुझे मिला, जिनकी पत्नियां बोरिया-बिस्तर समेटकर मायके जा चुकी थीं। इन सभी पतियों की खुशी का ठिकाना नहीं था, सभी ने पूरे उल्लास के साथ स्वीकारा—आजकल तो बहुत मजा है.. हम स्वतंत्र हैं.. घर बहुत अच्छा लग रहा है...काफी शांति है...या मैं अपने बहुत सारे पेंडिंग काम निपटा रहा हूं..

इन अकेले छूटे पतियों की प्रतिक्रिया ने मुझे मानसिक रूप से झकझोर दिया और दिमाग में यह विचार मंथन शुरू हो गया कि ये मर्द क्या वाकई ऊबे हुए पतियों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं? क्या इसीलिए शादी को बंधन माना जाता है? औरत द्वारा सजा-संवारकर तैयार किया गया घरौंदा (घर) उसकी गैरहाजिरी में इस्तेमाल करते वक्त इन्हें उसकी मौजूदगी का अहसास तो कराता ही होगा परंतु यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि पत्नियों का अभाव उनमें एक नई चुस्ती-उत्साह और रोमांच पैदा कर देता है। मन मसोसकर मायके में रहने वाली औरतें बिना पति की सहमति के वहां जाना भी पसंद नहीं करतीं।

ऐसी कुछ आम और ठोस वजहों को झुठलाया नहीं जा सकता, जिनके दबाव पुरुषों को लगभग अस्वीकार होते हैं। स्वतंत्र जीवन जीने के आदी पुरुष कोई भी बंधन, सीमाएं व नियम स्वीकार करने की मानसिकता में कभी नहीं आ पाते, इसलिए एक समय के बाद वे शादी का ढोने की स्थिति में आ जाते हैं। यूं भी अपने समाज में शायद गिने-चुने दंपतियों के जीवन में रोमांस का खुलापन होता है। चूंकि वे पति-पत्नी हैं, इसलिए एक-दूसरे पर इच्छाएं कम अनिच्छा ज्यादा लादते रहते हैं। औरतों को भी कई दफा पति का घर (खासकर वह संयुक्त परिवार में है तो) पिंजड़ा या बंधनों का जंजाल लगता है। वे साल के कुछ दिन सिर्फ अपने लिए जीना चाहती हैं। हालांकि यह मायके में भी संभव नहीं

हो पाता। माना तो यह जाता है कि शादी दो (समझदार) लोगों का संयोग होना चाहिए, जिसमें दोनों का अपना-अपना अस्तित्व बचा रह सके। जबकि होता बिल्कुल उलटा है, शादी होते ही पत्नी के ऊपर पति हावी हो जाता है और जताता है कि यही उसका धर्म है।

औरतों के अभाव में जीना हालांकि पुरुष की प्रकृति नहीं है, वह हर सभ्य उत्पादन, लैंगिकता व प्रजनन के लिए औरत नामक जीव की तलाश में रहता है। चार्ल्स हेंबलेट व जेन डेबर्सन ने एक जगह कहा है—‘मेरी एक पत्नी और एक घर हो—यह मैं सोच ही नहीं सकता। मैं आजाद महसूस करना, जहां चाहूं रहना और चिंता न करना पसंद करता हूं।’ यह कितना दुःखद है कि अपने सुखों के लिए बीवी का इस्तेमाल कर अघाए ये तमाम पति कुछ देर (दिन) के लिए लंबी तान सोना, उन्मुक्त जीवन जीना चाहते हैं। रोजमर्रा के जीवन से ऊबे ये लोग अपनी मरजी से, बिना किसी की ना-नू सुने स्वतंत्रता का मजा लूटना चाहते हैं। जितनी देर से मरजी सोकर उठना, देर रात सड़कों पर आवाश-बेघरों की तरह फिरना, नशे में मदहोश हो लड़खड़ाते घूमना, यारबाजी करना, ज्यादा दिल किया तो लड़कियों/औरतों को (भाड़े पर) लाकर इस्तेमाल करना उनके चरम सुखों की लिस्ट में आता है। पत्नी के रहते वे इन सुखों, कहें तो, लिप्साओं से वंचित रह जाते हैं। पर क्या वे कभी औरत के चश्मे से अपनी दुनिया देखने का साहस जुटा सकते हैं? क्या वे कुछ क्षण औरत को अपनी जैसी स्वतंत्रता देने की कुव्वत अपने भीतर पैदा कर सकते हैं? क्या स्वतंत्रता का आनंद औरतों के लिए निषिद्ध है?

पीढ़ियों से औरतों को उंगलियों में नचाते चले आए मर्दों का अहम् उस वक्त चूर-चूर हो जाता है जब उन्हें पत्नी रूपी औरत के निर्देशों के आगे झुकना पड़ता है। झुकना-सुनना-पालन करना, खासकर जब वह औरत के पक्ष से हो, पुरुष के लिए नागवार हो जाता है। पुरुष अपनी छवि प्रायः छोटे-मोटे सामंत सरीखी पेश करता है। घर की छत को वह राज्य सरीखा मान लेता है और मासिक घरखर्च के रूप में वह रियाया रूपी पत्नी को एक निश्चित रकम थमाता है। इस वक्त उसका सीना चौड़ा होता है और नथुने फैले। वह दाता होता है, दानी होता है और औरत ‘मंगतिन’! सीमित बजट में घर बनाने से लेकर, खाने-पहनने, बच्चों की शिक्षा, दवाएं, रिश्तेदारी सबकी व्यवस्था वह एक कुशल वित्तमंत्री की तरह करती है, खींचतानकर इस सबके बीच वह कुछ बचत भी कर लेती है। मौका पड़ने पर पति द्वारा ही उसका उपयोग किया जाता है।

अकसर देखने में आता है कि पति का विछोह पत्नियों को रास नहीं आता है जबकि इसके उलट, पति अकेले में आनंद अनुभव करते हैं। कुछ ऐसे भी पुरुष हैं जो घर के इस खालीपन का खूबसूरत इस्तेमाल खुद तो करते ही हैं, उनके वे मित्र, जो विवाह के झंझट के चलते बाजारों औरतों का आनंद नहीं ले पा रहे होते, उनको अपना खाली घर मुहैया कराते हैं। पत्नी का जाना खलता तभी है जब बाहर के खाने से अपच, कै या मरोड़ उठने लगती है, कपड़े धोने-सुखाने पड़ते हैं, धूल-धक्कड़ से सना घर चिढ़ाने लगता है या अपने ही जूठे बरतनों से सड़ाध उठने लगती है। स्टेकलर ने कहा है—विवाह एक कॉमेडी है। यह दो साथियों के बीच की नाटकीयता है, जिसमें बहुधा वास्तविकता और कल्पना के बीच की दीवार ढह जाती है।

सहजीवन में भी दुःखी औरतें

सहजीवन यानी बंधनमुक्त साहचर्य। सरल शब्दों में कहें तो दो विपरीत लिंगियों का बिना विवाह एक साथ रहना। इसे आज कई नामों से जाना जाता है, जैसे लिविंग टुगेदर, शेकिंग अप, कोहैबिटेशन, सीरियल मोनोगेमी, लिविंग इन सिन आदि-आदि। यह उन जोड़ों को पसंद है जो विवाह के निजी व सामाजिक बंधन से खुद को मुक्त रखना चाहते हैं। विवाह नामक संस्था को चुनौती देने वाली यह प्रवृत्ति पश्चिमी समाज में अपनी जड़ें जमाने के बाद भारतीय समाज में भी दस्तक देने लगी है। हालांकि अभी यह प्रचलन एक वर्ग-विशेष तक ही सीमित है।

अमेरिका में ऐसे जोड़ों की संख्या (1998 में) बढ़कर 42,86,000 के करीब पहुंच गई थी, जो 60 के दौर में केवल 4,39,000 से शुरू हुई थी। हमारे समाज में हालांकि परंपराएं और आस्था, तमाम आधुनिकता का लबादा ओढ़ने के बावजूद अब तक धुंधले रूप में ही सही, पर मान्य हैं। लेकिन रूढ़ियों और मान्यताओं से बदला लेने पर उतारू एक ऐसा वर्ग भी पनप रहा है जो विवाह संस्था को टुकराकर उसके समानांतर एक नई धारा चलाने को उत्सुक है। यह जबरदस्त सांस्कृतिक बदलाव है, जहां रोमांस और अनुनय-विनय को दरकिनार किया जा रहा है। पिछले 40 सालों के दरम्यान तकरीबन 50 लाख जोड़ों ने विवाह संस्था को ठोकर मारकर लिविंग टुगेदर पद्धति अपनाई है।

अमेरिकी समाज में विवाह-बंधन के पहले सहजीवन द्वारा एक-दूसरे को परखने का प्रचलन खूब है। यह एक तरह का ट्रायल होता है। हालांकि ताजा सर्वेक्षणों से जाहिर हो चुका है कि बिना सहजीवन के विवाह करने वालों की तुलना में सहजीवन के बाद विवाह करने वालों में 50 प्रतिशत अधिक तलाक या संबंध-विच्छेद होते हैं। शुरू के दौर में वहां भी यह पारंपरिक शादी के खिलाफ उठाया गया एक क्रांतिकारी कदम था, जैसा कि अब अपने समाज में भी दिख रहा है। वे तमाम जोड़े जो विवाह को मात्र दिखावा, आडंबर और सामाजिक दकियानूस मानते हैं, परंपराओं को ठेंगा दिखाकर, आपसी सहमति के आधार पर

सहजीवन मजे से चला रहे हैं। इनके लिए विवाह सस्था अप्रसांगिक और दमनकारी हो चुकी है। ये खुद को विवाह-विरोधी कहने के बजाय तलाक-विरोधी कहना ज्यादा पसंद करते हैं। आज के युवाओं में रिश्तों के प्रति प्रतिबद्धता और अपनत्व की जगह मौज-मस्ती और धनलिप्सा लेती जा रही है। वे जिम्मेदारियों से खुद को अछूता रखना चाहते हैं। दांपत्य जीवन में बढ़ते बिखराव और तलाक के झंझटों से डरकर सहजीवन बिताना ज्यादा सुविधाजनक लगता है। जॉन होपकिंग यूनिवर्सिटी के समाजशास्त्री एंड्रयू चर्लिन का कहना है कि पश्चिमी इतिहास में बिना विवाह के एक साथ रहना भी स्वीकार नहीं था। बस, कुछ ही दशकों पहले इसे मान्यता दी जाने लगी है। पूर्वी यूरोपीय देशों में खुले यौन संबंधों और नैतिक उदारता की चाहत में सहजीवन के प्रति आकर्षण बढ़ा है। तीस से नीचे वाली आयु के युवाओं में विवाह के प्रति अरुचि तेजी से बढ़ी है। अमेरिकी समाज में तीस-साला जोड़ों में केवल 60 प्रतिशत ब्याहता हैं, शेष 20 प्रतिशत सहजीवन बिता रहे हैं। जबकि 20 प्रतिशत एकाकी जीवन पर विश्वास करते हैं।

यूरोप में 1990 के दौरान जन्मे बच्चों में से आधे इन्हीं अनब्याही मांओं की कोख से पैदा हुए। असमानता के खात्मे व समाज-सुधार के लिए माहौल तैयार करने के लिहाज से इन अकेली मांओं को खूब बढ़ावा मिला। यही नहीं, उत्तरी नार्वे में (35 वर्ष से कम उम्र वाले) 70 प्रतिशत जोड़े बिना विवाह के रह रहे हैं। नीदरलैंड में भी पिछले तीन दशकों से विवाहपूर्व तात्कालिक तौर पर सहजीवन बिताने की प्रथा चल पड़ी है। स्वीडन में घरेलू जीवन बिता रहे दंपतियों में 30 प्रतिशत अविवाहित हैं और उन्होंने शादी को बिलकुल नकार दिया है। इंग्लैंड में 70 प्रतिशत औरतें शादी के बंधन में पड़ने से पहले जीवनसाथी के साथ कुछ दिन रह लेना ज्यादा पसंद कर रही हैं। अमेरिका में इस समय हर दूसरी शादी टूट रही है। शादीशुदा की बजाय बच्चों वाले बिनब्याहे दंपती आसानी से अलग हो जाते हैं। पश्चिमी समाज में चूंकि इन्हीं बंधनों से बचने के लिए विवाह को ठांकर मारी जाती है, इसलिए प्रायः जोड़े बच्चे पैदा करने का जोखिम उठाने से कतराते हैं। आस्ट्रेलिया में करीब 60 प्रतिशत जोड़े शादी से पहले एक-दूसरे के साथ रह लेते हैं, वहां पैदा होने वाला हर चौथा बच्चा बिनब्याहे दंपतियों का होता है। ब्रिटेन में शादीशुदाओं से सहजीवन काटने वाले नौ गुना ज्यादा बताए जाते हैं, लेकिन वहां विवाह से पहले साथ न रहने वाले संबंध बिखरते भी खूब देखे जाते हैं। वहां आफिस फॉर नेशनल स्टैटिस्टिक्स द्वारा किए गए अध्ययन में पाया गया कि विवाह पूर्व साथ रहने के प्रति वे काफी गंभीर होते हैं। शायद यही कारण है कि

शादी के बाद उनमें मतभेद बहुत कम होते हैं। पाच में से एक ब्रितानी बच्चों की खातिर शादी करता है। पश्चिमी यूरोप में एकाकी जीवन काटने वालों की संख्या में भारी इजाफा हो रहा है।

‘सिविल लिबर्टीज यूनियन ऑफ हार्वर्ड यूनिवर्सिटी’ के एक अध्ययन में पाया गया कि अंडरग्रेजुएट 91 प्रतिशत विद्यार्थी यूनिवर्सिटी छात्रावास में सह-शिक्षा प्रणाली के आधार पर एक साथ रहने को तैयार थे। हाल ही में हार्वर्ड प्रबंधन ने विद्यार्थियों को कभी भी किसी के साथ सोने की इजाजत दे दी, बस इससे आपका रूममेट सहमत हो। खुले समाजों में दांपत्य जीवन के दरम्यान इतने विरोध पनप रहे हैं कि विवाह संस्था को बचाए रखने के लिए वे कोई भी प्रयोग करने को तैयार हैं। संयुक्त राष्ट्र ब्यूरो द्वारा की गई जनगणना के अनुसार 1990 के दौरान 9.8 शादियां हुईं जिनमें से 4.7 टूट गईं। तलाक और इसकी कानूनी प्रक्रिया के झंझट से जूझने से युवा वर्ग इतना घबराता है कि वह इस तरह का कोई रिस्क लेने को तैयार नहीं है। विवाह-बंधन में बंधने से पहले वह पूरी तरह सतुष्ट हो जाना चाहता है। तलाक के मामले बढ़ने से बच्चों का भविष्य असुरक्षित हो जाता है। 1960 की तुलना में 1990 में तलाकशुदा दंपतियों के साथ रहने वाले बच्चों में 352 प्रतिशत का इजाफा हुआ। तलाक या संबंध टूटने का सीधा असर विवाह पर पड़ा और लोग इससे घबराने लगे। 1995 के दरम्यान 44 लाख अमेरिकी मर्द-औरतो ने कभी न शादी करने का निर्णय अटल रखा। बिनब्याहे दंपतियों की सबसे ज्यादा संख्या अलास्का में है, इसके बाद बमोट, कैलीफोर्निया, वाशिंगटन आदि आते हैं।

पश्चिमी देशों की तरह अपने यहां भी बिनब्याहे जोड़ों में इजाफा हुआ है। विकसित देशों में ऐसा जीवन काटने के पुख्ता कारण भी हैं। किशोर व युवा वर्ग का मानना है कि खर्चों को आपस में सुविधानुसार बांटने, अपनी-अपनी निजी बचत करने, पारंपरिक उत्तरदायित्वों के प्रति गैरजिम्मेदाराना रवैया अपनाने, मतभेद होने पर फटाफट छुटकारा पाने यानी तलाक जैसी संवैधानिक अव्यवस्था में न उलझने, निजी वक्त बचाने, परिवार-रिश्तेदार, मां-बाप के झंझट से बचने, शारीरिक संबंधों की सीमा तोड़ने, दूसरों में दिलचस्पी लेने के लिए हमेशा स्वतंत्र रहने, जब मरजी प्रेम किया, जब मरजी छोड़ दिया, सुरक्षित और स्वतंत्र सेक्स जैसी तमाम सुविधाओं का आनंद उठाने के लिए बिनब्याहे साथ रहना ज्यादा फायदेमंद है। रिश्ते को ‘यूज एंड थ्रो’ की तरह इस्तेमाल करने वाली मानसिकता ने विवाह-बंधन को और गैरजरूरी करार दिया है।

हालांकि पश्चिमी समाज का तानाबाना हमारे यहां से बिल्कुल भिन्न है, मगर उनकी संस्कृति से प्रभावित एक बड़ा वर्ग अपने देश में भी मौजूद है। उन्मुक्त सेक्स और एक साथी के साथ पूरा जीवन बिताना दूसरी बात है। ब्याह को आडंबर मानकर दिखावों-रूढ़ियों और परंपरा को तोड़कर सहजीवन काटना एक बात है और केवल शारीरिक सुख के लिए समय-समय पर साथी बदलना दूसरी।

अध्ययन बताते हैं एक जीवनसाथी की बजाय कई पुरुषों या औरतों के साथ शारीरिक संबंध रखने वालों में डिप्रेशन व व्यावहारिक समस्याएं ज्यादा होती हैं। ऐसे लोगों में आत्महत्या की प्रवृत्ति भी ज्यादा पाई जाती है। ऐसा देखा गया है कि सहजीवन काटने वाले अपने प्रेम के बदले सेक्स की जबरदस्त मांग रखते हैं। इच्छा पूरी होने के बाद वे एक विशेष तरह के डिप्रेशन का शिकार हो जाते हैं। अधिकतर विश्लेषकों का मानना है कि विवाहितों की बजाय सहजीवियों में मारकूट की प्रवृत्ति बहुत तेज होती है। अध्ययन के अनुसार, सहजीवन काट रही 40 प्रतिशत औरतों के साथ असभ्य तरीके से सेक्स किया जाता है। यू.एस. जस्टिस डिपार्टमेंट ने पाया कि पति की बजाय पुरुष मित्र द्वारा औरतें 62 गुना ज्यादा बार बेइज्जत की जाती हैं। शादीशुदा औरतों से दुगुनी बार इनके साथ हिंसा व शारीरिक प्रताड़ना होती है। नार्दर्न स्टेट यूनिवर्सिटी ने एक अध्ययन में पाया कि सहजीवनचारी युवक बलात्कार को स्वीकृति देते हैं। इसमें यह भी पाया गया है कि ऐसे पुरुष 'संबंधों' से सहमत हो चुके होते हैं। जबकि ये औरतें वैवाहिक जीवन की उम्मीद में जीती हैं।

शादीशुदाओं की बजाय बिनब्याहे साथी दोगुने उन्मादी और अतृप्त पाए जाते हैं। चूंकि सामाजिक मान्यताओं को ये ठेंगा दिखा चुके होते हैं, इसलिए इनमें उन्मुक्त सेक्स के प्रति अधिक रुचि पाई जाती है। प्रतिवर्ष 100 में से 35 दंपती शारीरिक संबंधों के दरम्यान उन्मादी हो जाते हैं, जबकि विवाहितों में यह औसत केवल 15 है। एक दूसरे को मारना, प्रताड़ित करना, चीजें फेंककर मारना, गाली-गलौच करना बिनब्याहों में 14 प्रतिशत होता है, जबकि विवाहितों में केवल 5 प्रतिशत। पेन स्टेट यूनिवर्सिटी के अध्ययन के अनुसार सहजीवन जीने वाले विवाहितों से कहीं ज्यादा बहस करते हैं, चिल्लाते हैं और मारकूट पर आमादा हो जाते हैं।

न्यूहैम्पशर यूनिवर्सिटी के फैमिली वायलेंस रिसर्च प्रोग्राम ने माना है कि सहजीवी विवाहितों की अपेक्षा अधिक आक्रामक होते हैं। ये सताने के पांच गुना

ज्यादा भयानक तरीके इस्तमाल करत है। अमरिका के नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स सर्वे' के अनुसार औरतों के खिलाफ क्रूरतम अपराध करने वालों में 65 प्रतिशत महज जीवी पुरुष या पूर्वपति होते हैं। जबकि केवल 9 प्रतिशत पति ऐसा करते पाए गए। एक ब्रितानी अध्ययन ने बताया कि बिनब्याहे पुरुष के साथ रहने वाली औरतों के बच्चे 20 गुना ज्यादा प्रताड़ित किए जाते हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि बिनब्याही औरतें यदि यौन संबंध रखती हैं तो उन्हें मनोवैज्ञानिक के सलाह की चार गुना ज्यादा जरूरत पड़ती है। मानसिक स्वास्थ्य केंद्र के अनुसार उन्हें तीन गुना ज्यादा डिप्रेशन होता है और वे 25 प्रतिशत ज्यादा मानसिक गड़बड़ियों की शिकार हो जाती हैं।

बिनब्याही औरतों में चिड़चिड़ाहट, चिंता, दुःख और असंतुष्टि की भावना ज्यादा होती है। वे ज्यादा बीमार रहती हैं और दीर्घायु नहीं होतीं। विभिन्न अध्ययनों के मुताबिक, शादीशुदा लोगों में मानसिक व संवेदनात्मक संतुष्टि बहुत ज्यादा होती है। वे दीर्घायु भी होते हैं और बीमारियों से जूझने की उनमें ज्यादा क्षमता होती है।

बिनब्याहे, तलाकशुदा, एकाकी विधवा/विधुर लोग दिल की बीमारियों, हृदयाघात, कैंसर, लीवरफेल, सड़क दुर्घटना, हत्या व आत्महत्या का शिकार बहुतायत में होते हैं। 'जर्नल ऑफ मैरिज ऑफ' फीमेल का दावा है कि शादी वास्तव में जीवन को सुरक्षा देती है। विवाहितों की अपेक्षा बिनब्याही औरतों की मृत्युदर 50 प्रतिशत और पुरुषों की 25 प्रतिशत ज्यादा है। अध्ययनों से यह बात स्पष्ट हुई कि विवाहित जोड़े रहन-सहन का जीवन पर्यंत पुख्ताइतजाम करते हैं। जबकि इसके ठीक विपरीत, बिनब्याहों का सब कुछ कामचलाऊ ही चलता रहता है। असुरक्षा की भावना के चलते ही ये लोग धूम्रपान, शराब और अन्य प्रतिबधित नशों के आदी हो जाते हैं। ऐसे लोग शराब पीकर गाड़ी चलाने और बात-बात पर मारामारी पर जल्दी ही उतारू हो जाते हैं, जबकि दूसरी तरफ वैवाहिक जीवन जीने वालों को मिलने वाली सामाजिक सुरक्षा, संवेदनात्मक व भावनात्मक अपनत्व, आर्थिक मदद उन्हें बहुत-सी समस्याओं से बचाए रखती हैं।

बिनब्याहे जोड़ों के लिए सबसे बड़ी समस्या बच्चों और उनके भविष्य को लेकर होती है। अमेरिकी स्वास्थ्य केंद्र के अनुसार वहां बिनब्याही अवयस्क बच्चियों के गर्भवती होने के मामलों की बढ़ा आ चुकी है। केवल एक साल के दरम्यान वहां 10 लाख किशोरियों ने गर्भधारण किया, जिनमें से आधी को गर्भपात कराना पड़ा। बाकी जो बच्चे जन्मते हैं, उनको कभी भी मौलिक सुविधाएं नहीं

मिलता आर व अनाथालया म भीड़ बन जात हँ। यही नहा, 'सटर फॉर डिजीज कंट्रोल' ने माना कि पिछले 6 वर्षों के दरम्यान वहा सेक्स-संबंधी संक्रमण तीन गुना बढ़े हैं। केवल अमेरिका मे ही 15 लाख से ज्यादा ऐसे मरीज प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रहे हैं। इनमें भी हर चौथा मरीज 20 वर्ष से भी कम है और तकरीबन 5,000 औरते प्रतिवर्ष इससे मर रही हैं। इसी के चलते 10,000 किशोर प्रतिवर्ष एड्स के शिकार हो रहे हैं और तीन (या ज्यादा) व्यक्तियों से यौन संबंध रखने वालो को 15 प्रतिशत ज्यादा घातक कैंसर हो रहा है।

क्यों कुमारी देवी अछूत हो जाती है?

समय के हिसाब से लगभग अव्यावहारिक हो चुकी परंपराएं होने में केवल भारतीय समाज ही अक्ल नहीं है, बल्कि इसके पड़ोस में बसे नेपाल में कुछ बेहद बचकानी और औरतों का मजाक उड़ाने वाली परंपराएं कायम हैं। एक परंपरा के अनुसार, एक पांच वर्ष की बच्ची खोजकर उसे कुमारी देवी की पदवी दिए जाने का रिवाज है। जरा ठहरिए! यह पदवी बच्ची को उम्रभर के लिए नहीं दी जाती है, बल्कि ज्यों ही वह 11 वर्ष की होती है, उससे यह छीन ली जाती है और देवी को आम औरतों के साथ रहने को छोड़ दिया जाता है। काठमांडू में कुमारी देवी का भव्य मंदिर भी है, जहां सभी उसकी पूजा-अर्चना करते हैं। इस कुमारी देवी का चित्र तक खींचना मना है। बस, त्योहारों आदि के मौके पर इनकी झांकी निकाली जाती है, ताकि ये दूर से श्रद्धालुओं को आशीर्वाद दें।

नेपाल चूंकि हिंदू देश है, इसलिए उसकी-हमारी परंपराएं काफी मिलती हैं। अपने यहां भी धर्मग्रंथों में लड़की को रजस्वला होने से पहले देवी का रूप माना जाता है। पर यह भी उतना ही सच है कि इन्हीं देवियों पर बलात्कारों की सख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। प्रतिवर्ष होने वाले नवरात्रों में लोग कन्यापूजन भी इसी लिहाज से करते हैं। इसमें कुमारी कन्या के नाम पर वही 11-12 वर्ष तक की बच्चियां जिमाई जाती हैं, जिनकी घर के बुजुर्ग आदि पांच छूकर पूजा भी करते हैं।

लेकिन नेपाली परंपरा हो या भारतीय, क्या रजस्वला लड़की अपवित्र होती है? क्या देविया कभी रजस्वला नहीं होतीं? इसे धर्म का मजाक न समझकर गंभीरता से सोचा जाए। क्या औरत का रजस्वला होना इतना घृणित है कि उसके भीतर की देवी तुरंत छू-मतर हो जाती है। हिंदू धर्म में कुमारी कन्या का अर्थ ही है बच्ची के रजोदर्शन से पूर्व का समय। रजोदर्शन के उपरांत बच्ची को अपवित्र मान लिया जाता है। मगर कितना अतार्किक है कि रजोनिवृत्ति के बाद फिर औरत को देवी क्यों नहीं स्वीकार लिया जाता?

मेरी समझ में इसका कारण है कि 45-50 के बाद की इस उम्र में औरत

एक तरह से यूज्ड हो जाती है तो धर्म उसे कैसे स्वीकारे। दरअसल यहां बात बच्ची के केवल कुंआरेपन की न होकर उसके कोरेपन की है। बड़ी चालाकी और धूर्तता के साथ पंडों-पुराहितों ने कॉमन आदमी को फुसलाकर कुछ और समझा दिया है। नहीं तो क्या कारण है कि तांत्रिकों को अपनी सिद्धि के लिए इन्हीं कुमारी देवियों की आवश्यकता होती है। कौमार्य या यही कोरापन इन सिद्धियों के साथ ही पूजाओं-पाखंडों के नाम पर खूब चर्चित होता रहा है। धर्म के नाम पर भगवान के साथ विवाह करने वाली बच्चिया जो वेकटेश्वरी या देवदासी के नाम से जानी जाती है, भी इसी कुमारी उम्र की बालाए होती है। ठीक इसके विपरीत बच्ची का रजोदर्शन कुछ समाजों में स्वागतेय होता है। दक्षिण की कुछ जातियों में बच्ची के प्रथम रजोदर्शन पर परिवार में जश्न मनाया जाता है और बच्ची को तोहफे आदि दिए जाते हैं।

खासकर केरल के हिंदुओं में बच्ची के प्रथम रजोदर्शन को पारंपरिक रूप में मनाया जाता है। बच्ची को घर के किसी सुरक्षित स्थान में आठ-नौ दिन तक रखा जाता है और रोजाना सुबह-सुबह बाल आदि धोकर नहलाया जाता है। जमकर मालिश की जाती है। इन दिनों वहां के कुछ पारंपरिक पौष्टिक खाने भी, जो चावल, गुड व नारियल से बनते हैं, उसे खूब खिलाए जाते हैं। लोगों का मानना है कि इन दिनों बच्ची की अच्छी खिलाई करने से वह पुष्ट होती है। नौ दिन बाद घर की गोबर से लिपाई करने के बाद धोबी द्वारा धुले कपड़े उस बच्ची को दिए जाते हैं और उसके द्वारा इस्तेमाल कपड़े धोबी धोने के लिए ले जाता है। हालांकि स्कूली पढ़ाई और आधुनिकता के दबाव में अब यह परंपरा धूमिल हो चली है। खासकर शहरों में इसका रिवाज सांकेतिक रह गया है।

केरल के हिंदुओं की देखा-देखी अन्य धर्मावलंबी भी ऐसे ही मिलती-जुलते रिवाज मनाते हैं। परंतु उत्तरी इलाकों में इसका उलटा है, ज्यों ही बच्ची रजस्वला होती है, उसे लगभग अपवित्र मान लिया जाता है। घर के किसी बंदबूंदार कोने में उसे कम से कम तीन दिन के लिए कैद कर दिया जाता है। मैले-कुचैले कपड़ों में तीन दिन नहाने-शृंगार करने, कंघी आदि करने की सख्त मनाही होती है। कुछ परिवारों में इन दिनों सोने के लिए बिछावन आदि भी नहीं दिया जाता और पुरुषों पर अपनी छाया तक नहीं पड़ने देने के आदेश होते हैं। पंडितों का मानना है कि जनेऊधारी पुरुष पर रजस्वला स्त्री की छाया-भर पड़ने से वह अपवित्र हो जाता है और उसे तत्काल नहा-धोकर, पूजन-अर्चन के साथ अपना यज्ञोपवीत बदलने के आदेश होते हैं। जबकि विशेषज्ञों का मानना है कि

तालों में बंद डिग्रियां

दसवीं और बारहवीं के नतीजों में अब तो हर साल लड़कियां लड़कों से बाजी मारकर, एक दिन के लिए ही सही, मीडिया में छा जाती हैं। अव्वल आने के पीछे हालांकि उनकी हाड-तोड़ मेहनत, लगन और प्रतिबद्धता ही होती है पर उसे सप्रयास किनारे सरका दिया जाता है। यह नहीं कहा जा सकता कि अव्वल आने वाली ये बच्चियां संपन्न, समृद्ध और सुविधा-संपन्न परिवारों से ही आती हैं। इनमें कुछ मध्यवर्गी सामान्य परिवारों की दृढ़विश्वासी बच्चियां भी होती हैं, जो तमाम प्रतिकूल स्थितियों से जूझकर, ढेर सारे सपनों के साथ किताबी जग से जूझती हैं। पसदीदा स्कूल से लेकर ट्यूटर और विषयों तक के चुनाव में लड़कियों को प्रायः मन मसोसकर रह जाना पड़ता है। प्रगतिशीलता का लबादा ओढ़े घूमने वाले मां-बाप भी कई दफा लड़कियों का वैसा ही मानसिक दोहन करते हैं जैसा साधारण-कस्बाई मानसिकता वाले मा-बाप आदतन करते हैं।

‘बेटा-बेटी एक समान’ का ढोंग करने वाला यह समाज दरअसल लड़कियों को शिक्षा देने में कोताही तो बरतना चाहता है, मगर विवाह बाजार में पढ़ी-लिखी लड़कियों की बढ़ती मांग उन्हें ऐसा करने नहीं देती। अब केवल चिट्ठी लिखने या रामायण पढ़ने वाली पत्नी/बहू किसी को नहीं चाहिए, सभी हाइली एजुकेटेड या कैरियरिस्ट लड़की को प्राथमिकता देते हैं। थोड़ी भी जागरूकता जहां आ चुकी है, वहां अपढ़ लड़की को कोई नहीं रखता। दरअसल यह बाजारवाद का दौर है। यहां सब कुछ बाजार तय करता है। लिहाजा बाजार की मांग है कि लड़की डिग्रीधारी हो, प्रोफेशनल हो तो और अच्छा। कमाऊ लड़कियों का बाजार खूब गरम है। महानगरीय जीवन की इच्छा रखने वाले नवेले दूल्हों की प्रमुख मांग इस समय केवल कमाऊ लड़की है। सुविधाजनक और समृद्धि-भरा जीवन काटने को उत्सुक आम मध्यवर्गीय युवक एक कमाती हुई औरत की इच्छा में विज्ञापनबाजी करते खूब पाए जा रहे हैं।

एक बेटा-एक बेटी और न्यूक्लियर फैमिली का फायदा बच्चियों को ठीकठाक पढ़ाई के रूप में खासा मिला है। चूंकि छोटे परिवारों में निर्णायक

भूमिका निभाने में माँ की मजबूत स्थिति होती है, वह पति पर प्रभाव बनाकर बेटी को अच्छी शिक्षा देने के लिए दबाव डालती रहती है। खुद कम पढ़ी-लिखी होने या कैरियरिस्ट न हो पाने की जो कमी उसे सालती है, उससे वह अपनी बच्ची को वचित नहीं रखना चाहती। दूसरे, कामकाजी औरतों की समाज में स्थिति, धीरे-धीरे ही सही, अपेक्षाकृत मजबूत होती जा रही है। बिखरते दापत्य-संबंधों से भयभीत मा-बाप भी बेटी को इतनी शिक्षा दिलवाने के पक्ष में दिखने लगे हैं कि लड़की आवश्यकता पड़ने पर खा-कमा सके। कुल मिलाकर सामाजिक ताने-बाने में अब पढ़ी-लिखी लड़कियाँ ही फिट बैठ पाती हैं, हालाँकि अब तक इतना बदलाव नहीं ही आया है कि ये पढ़ी-लिखी लड़कियाँ अपनी जबरदस्त उपस्थिति दर्ज करा सकें।

बचपन में जी-तोड़ मेहनत कर अव्वल आने वाली तमाम औरतें जब घर-गृहस्थी में उलझकर रह जाती हैं तो उन्हें अपनी डिग्रियों और किताबी पढ़ाई के बारे में सोच-सोचकर बेहद कोफ्त होती है। साधारण पढ़ाई कर घरेलू औरत के रूप में संतुष्ट जीवन काटना एक बात है, पर किसी प्रोफेशन के प्रति रुझान हो, इसलिए कड़ी मेहनत कर पढ़ाई करने के प्रति अति गंभीर रहने वाली औरत के ऊपर यदि बच्चों और घर संभालने का बोझ पड़ जाए तो वह एक अलग तरह की घुटन महसूस करती है। अपने समय में पढ़ाई में अव्वल रही तमाम घरेलू औरतें कई दफा अपने पति की सहयोगी औरतो या परिचित कामकाजी औरतों से अपनी तुलना कर कुंठा-सी पाल लेती हैं। वे अपनी और उनकी बात-बात में तुलना करती रहती हैं और यह महसूस करने लगती हैं कि अपनी लापरवाही या पारिवारिक दबावों के चलते वे वह सब नहीं कर पाईं, जिसकी उनमें क्षमता थी।

चूँकि हमने अपने परिवेश में हमेशा से ही औरतें चूल्हा-चौके और बच्चों के लालन-पालन में जुटी रही देखी हैं, इसलिए पुरुषों ने इस तरफ कभी अपना कोई दायित्व नहीं समझा। पीढ़ियों से यही व्यवस्था चली आ रही है, अब हम इसके अभ्यस्त हो चुके हैं कि पुरुष का बच्चा खिलाना, उसकी नैपी बदलना, पाँटी धोना या रसोई में काम करना प्रायः खटकता है। इन स्थितियों में औरतों का खासा पढ़े-लिखे होने के बावजूद कैरियर को प्रमुखता दे पाना एक हद तक मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन हो जाता है। यदि वे कैरियरिस्टिक हैं तो परिवार हाशिये में चला जाता है और यदि परिवार के प्रति जिम्मेदाराना भाव अपनाती हैं तो कैरियर चौपट हो जाता है। दोनों के बीच तालमेल बिठा पाना, वह भी बिना मर्द की मदद के गैरमुमकिन है। जहाँ मर्द खुद को इन नई परिस्थितियों में ढालने

के प्रति मानसिक रूप से तैयार हो जाते हैं, वहीं औरतों की प्रतिभा निखरती है। हालांकि ऐसे शायद चुनिंदा परिवार ही होंगे। वरना तो हमेशा ही औरतों को परिवार और पति, बच्चों के अनुरूप ढलना पड़ता है, कोई न उसके अनुकूल ढलने को तैयार होता है और न ही परंपराएं तोड़ने को।

अपने इर्द-गिर्द ऐसी तमाम औरतें आपको दिख जाएंगी जिन्होंने डॉक्टरी या इंजीनियरिंग जैसे गंभीर और कठिन पेशे को चुना और सफलता के लिए, जितनी कोई मर्द साथी करता है उससे कहीं ज्यादा कड़ी मेहनत भी की है, पर शादी और बच्चों के पालने-पोसने के झंझट में उन्हें इतना उलझना पड़ा कि उकताकर वे घर बैठना ही ठीक समझती हैं। हिंदी सिनेमा में ऐसी अधिकतर हीरोइनें हैं, जिन्होंने अपने उम्दा अभिनय को बिसराकर घर-बच्चों में साधारण-सा जीवन काट दिया। लेकिन इस घर बैठने से पहले उन्हें कितनी पीड़ा, कितनी आत्मग्लानि और कितनी कुंठा का शिकार होना पड़ता है, इसका अंदाजा लगा पाना बहुत मुश्किल है। एक सफल प्रोफेशनल औरत जब आटा और झाड़ू के झंझट से नहीं निकल पाती तो वह चिड़चिड़ी, झगड़ालू, झक्की या उदासीन—कुछ भी हो सकती है। उसका मानसिक इलाज कराने की बजाय इस बीमार, जाहिल और रूढ़िवादी समाज को बदलने और समय के अनुसार परंपराओं को ढालने के प्रयास होने चाहिए।

यात्रा के खतरों से जूझती औरतें

अकेले यात्रा करने से घबराने वाली औरतों को डरपोक, गंवारू या ऐसे ही दोयम दर्जे के अल्फाजों में पुकारा जाना आम है। खासतौर से घरेलू औरतों पर यह छींटकशी खूब होती है। उनके लिए घर की देहरी अकेले लांघना बहुत भारी होता है। सब्जी, तेल-मसाले लाने या छोटी-मोटी खरीददारी करने, ज्यादा से ज्यादा बच्चे के स्कूल आदि चले जाने के अलावा वे प्रायः किसी भी काम के लिए बाहर निकलने से कतराती हैं। दूसरी तरफ है कामकाजी दफ्तरी, औरतें, जो शहर के एक कोने से दूसरे कोने तक रोजगार के लिए भागती फिरती हैं।

इस यात्रा के दौरान उन्हें लगभग रोज ही अनेक तरह की विपरीत स्थितियों से जूझना पड़ता है। प्रौढ़ औरतें हों या फैक्टिरियों में पुरजे जोड़ने वाली दसवी पास/फेल लड़कियां, स्कूल टीचरें हो या घरेलू कामवालियां, रोजमर्रा की यात्रा के लिए इन्हें बस, रेल, रिक्शा या ऑटो जैसे वाहनों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस यात्रा के कई दफा बहुत दुःखद, दिल दहला देने वाले ऐसे वाक्य भी होते हैं, जिन्हें औरतें अपमान के घूंट की तरह पीने के अलावा कुछ नहीं कर सकती। सड़क किनारे, पान की दुकान या खोमचे वालों के इर्द-गिर्द सिरफिरे शोहदों-लोफरो की छेड़छाड़ और बदजुबानी के अलावा इन्हें और भी बहुत कुछ सुनना-बगदाश्त करना पड़ता है।

बसो या लोकल ट्रेन में यात्रा करने वाली हजारों औरतें धीरे-धीरे डिप्रेशन, निराशा व एक तरह की फोबिया का शिकार हो जाती हैं और वर्षों बिना यह सब जाने चुपचाप अपनी दिनचर्या में जुटी रहती हैं। कभी ऑटोवाला कोई फिकरा कस देता है तो कभी रिक्शावाला कामुक नजर से घूरता है। बस या ट्रेन में दफ्तर के समय ठूस-ठूसकर लोग भरे जाते हैं। धिनौनी हरकतें करने वाले मर्दों की तो ऐसे में किस्मत ही चमक उठती है। औरतों से रगड़कर निकलना, चुटकी काट लेना, छू लेना, उन पर ढह पड़ने का नाटक करना, कामुक नजरों से उनके अंगों को घूरना—ऐसी तमाम ओछी हरकतें करने से तमाम पुरुष बाज नहीं आते। थकी-मांदी घर लौटती औरत यात्रा के दौरान लगभग रोजाना इन्हीं स्थितियों से जूझती

है। जाहिर है ऐसे में उसका मानसिक दोहन किस कदर होता है—यह कोई भी संवेदनशील व्यक्ति समझ सकता है, यदि वह चाहे तो। औरत यह पीड़ा घर जाकर न पिता या भाई को बता सकती है, न पति के साथ बांट सकती है। और तो और, उपहास का केंद्र बनने से बचने के लिए वह अपनी सहयोगी मित्रों से भी इसका जिक्र करने से बचती है। दिल्ली में एक बीमार औरत को बस ड्राइवर और कंडक्टर ने बलात्कार करने के बाद चलती बस से फेंक दिया था। यह घटना आधी रात को नहीं हुई थी कि पुलिस और प्रशासन यह कहकर बच निकलता कि आधी रात को औरतों के साथ बलात्कार नहीं तो क्या होगा? उस वक्त रात का नौ बजा था, वह भी गरमियों का।

महानगरों में ऑटो-टैक्सी को हाथ देती औरत हो या छोटे शहरों-कस्बों में रिक्शा बुलाती औरतें/लड़कियां, यात्राजन्य तनाव से गुजरने की वे इतनी आदी हो चुकती हैं कि उन्हें स्वयं इस विषय पर गंभीरता से सोचने का वक्त ही नहीं मिलता। यह बात तो रोजमर्रा की यात्रा को लेकर है, जो औरतें लंबी दूरी की यात्राएं अकेली करती हैं, उन्हें जुझारू-हिम्मती या साहसी कहने की जरूरत कतई नहीं है। क्योंकि यह बेहद साधारण बात होते हुए भी असाधारण इसलिए है, क्योंकि हम एक संकीर्ण, बंद दिमाग वाले और बीमार समाज के अंग हैं। ऐसा इसलिए कहना पड़ता है कि अकेले रेल में यात्रा करने वाली औरतों में से (जनवरी 99 से जून 2000 तक) 53 का बलात्कार हुआ। इनमें से 7 औरतों को बाकायदा चलती ट्रेन में शिकार बनाया गया, बाकी 46 प्लेटफॉर्म वेटिंग रूम या आस-पास शिकार की गईं। इस दरम्यान 2,872 औरतों के साथ बदतमीजी की गई या उनका यौन शोषण किया गया। यह गिनती केवल उन औरतों की है, जिन्होंने मामला रेलवे पुलिस तक ले जाने की हिम्मत जुटाई। अपमान का घूट पीने या जीवन-भर कभी भी अकेले सफर न करने का प्रण लेने वाली हजारों औरतों की पीड़ा कभी किसी तक नहीं पहुंच पाएगी।

युं भी भारतीय रेलवे की लेट-लतीफी दुनिया-भर में चर्चित है। रेलगाड़ियों का बारह-बारह घंटे लेट होना किसी भी गर्भवती या छोटे बच्चे वाली औरत के लिए त्रासद हो सकता है। पीने के पानी के लिए लगी लंबी लाइनें, खाद्य-पदार्थों की ठेलियों पर मची लूट और केवल चार-पांच मिनट का हॉल्ट औरत को सूखे गले यात्रा करने को बाध्य करता है। न तो वह मर्दों की तरह बोगी में सिगरेट फूंकती हैं और न ही तंबाकू-जर्दा चबाती हैं।

प्रख्यात रचनाकार कृष्णा सोबती ने एक बातचीत के दौरान स्वीकारा था कि

अकेले किसी अनजान शहर में जाना वाकई खतरनाक होता है। चूंकि वह प्रायः अकेले ही आती-जाती हैं इसलिए उन्होंने एक सुरक्षित रास्ता खोज निकाला है—प्री-पेड टैक्सी के इस्तेमाल का। चूंकि यह महंगा साधन है, इसलिए तमाम औरतें चाहकर भी इसका इस्तेमाल नहीं कर सकती।

महिला आयोगों या तमाम सरकारी-गैर सरकारी संस्थानों के नाम पर पैसा कूटने वाली ए.सी. दफ्तरों में बैठी, लंबी कारों या शताब्दी जैसी ट्रेनों, हवाई जहाजों में यात्रा करने वाली इन तमाम औरतों के दिमाग में इन अव्यवस्थाओं पर क्यों कुछ नहीं कौंधता, जिनसे आम औरत को रोज खीजना होता है। घर से बाहर निकलने वाली औरतों से पूछिए, जब उन्हें घंटों बाद भी निवृत्त होने का कोई ठौर नहीं सूझता तो वे किस स्थिति से जूझती हैं, क्योंकि वे तो कुमंगलों की तरह सड़क किनारे खड़ी होने से रहीं, चाहे कोई रोग ही क्यों न चपेट ले उन्हें। हिम्मती होना एक बात है और खतरों से खेलना दूसरी, मगर अकेली यात्रा पर निकलने वाली औरतें हर रोज खतरों से ही खेलती हैं।

औरतों को बधिया बनाने के लिए

औरत को औरत बनाने का जिम्मा समाज और परंपराएं परस्पर निभाती हैं। अपने देश में ही नहीं, बल्कि दुनिया-भर की संस्कृतियों में परंपराएं औरत को काबू में रखने के लिए ही बनाई गई थीं। उन्हें वह सदियों से थोड़े परिवर्तन के साथ ढोती चली आ रही हैं। समय, समाज और जीने का अंदाज भले ही आधुनिक माहौल में बदल गया, मगर परंपराएं लगभग वही हैं जो हमारी दादी-नानी और बड़ी-बूढ़ियों के समय थीं। आधुनिकता ने भले ही उन्हें नया जामा पहना दिया हो, मगर उनके अंदर की असलियत किसी से छिपी नहीं है। समयानुसार उनमें परिवर्तन होते जाते हैं। विकास और क्रांति के बीच घिसटती औरत निःसंदेह परंपराओं को नहीं ढो सकती।

दरअसल, किसी भी समाज में परंपराएं इतनी जटिल और गूढ़ होती हैं कि इनके बंधन से विमुक्त होने के लिए औरत को ढेर सारे दुस्साहस और आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है। चूंकि परंपराओं को तकों से तौला नहीं जा सकता, इसलिए आधुनिक औरत के लिए इन्हें अपने 'स्व' की बलि के बावजूद अपनी सुविधानुसार तोड़-मरोड़ कर प्रयोग किया जाता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी महिलाएं परंपराओं को अपनी धरोहर, अपने विश्वासों (यानी अंधविश्वासों), अपने भ्रमों और अपने ही बुने एक जाल में समेटे रही हैं। एक से दूसरे में फैलती गई ये परंपराएं इतनी जटिल और अविवेकपूर्ण हैं कि उत्तर-आधुनिक महिला के समक्ष भी इनके खिलाफ कुछ उगलना उसे दुश्मन बनाना है।

जैसे बड़ी मछलियां छोटियों को अपना शिकार बनाकर जीवन चलाती हैं, ठीक वैसे ही बड़ी-बूढ़ियां समाज में अनहोनी और खौफ का वातावरण बनाकर बच्चियों के दिमाग में परंपराओं का बीज बो देती हैं। यही बच्चियां जब प्रौढ़ या युवा होती हैं तो इनको परंपराओं के खिलाफ एक भी शब्द समझाना निहायत बचकानापन साबित होता है। डॉक्टर, वकील, वैज्ञानिक से लेकर प्रोफेसर महिलाएं तक कहीं न कहीं परंपराओं को ढोती नजर आती हैं। तमाम वर्जनाओं को तिलांजलि दे चुकी है उच्चवर्गीय उत्तर-आधुनिकाएं भी परंपराओं को ओढ़े दिखती

है। फर्क केवल इतना है कि उन्होंने उन्हे अपने अनुरूप ढाल लिया होता है।

आज के दौर की महिला, जो महिला और पुरुष दोनों का दायित्व बखूबी निभाती है, आधुनिकता और परंपराओं के बीच पिस रही है। वह अपने सुहाग को, अपने पुत्र के लंबे सुखमय जीवन को सींचने के लिए व्रत करती है, माथा टेकने जाती है, देवी का प्रसाद चढ़ाती है, दान-दक्षिणा करती है। कहने का तात्पर्य यह कि 24 मे से 18 घंटे की दौड़-भाग, जिम्मेदारियों के साथ वह परंपराओं के बीच फंसी सब कुछ स्वाभाविक ढंग से जी लेती है। परंपराओं में शामिल रूढ़ियां और जटिलताएं उसे तंग करती हैं, दुविधा में डालती हैं, मगर एक प्रकार के भय के कारण वह स्वयं को इनसे मुक्त करने में असफल रहती है। दूसरी ओर, आधुनिक युग के संघर्षमय जीवन में परंपराओं को दर-किनारा करने वाली गिनी-चुनी महिलाएं एक प्रकार के अपराधबोध से ग्रस्त दिखती हैं। क्योंकि कोई भी परंपरा तोड़ने का साफ मतलब है, अपने घर, पड़ोस, समाज में दुश्मन तैयार कर लेना। असुविधाओं और जिम्मेदारियों से मुक्त आरामपसंद महिलाओं की एक पूरी जमात आप पर उंगली उठाने को तैयार रहती है। वे परंपरा से परे हटने वाली औरत पर ताने कसेंगी, अपशब्द कहेंगी, उसे तरह-तरह के अपशकुनों से भयाक्रांत करेगी। अपने ही परिवार के रूढ़िग्रस्त लोग परंपरातोड़क को मानसिक रूप से ब्लैकमेल करने से भी नहीं चूकते। बस, यही तमाम कारण बन जाते हैं कि महिलाएं आधुनिकता के दौर में कई बार चाहकर भी इनका विरोध नहीं कर पाती।

कई पढ़ी-लिखी, प्रतिष्ठित महिलाओं को परंपराओं की खिलाफत करते अकसर देखा जा सकता है, जबकि वास्तविक जीवन में ये महिलाएं भी कहीं न कहीं उनकी दास होती हैं। ऐसा प्रायः विचारों और व्यवहार में अनुरूपता के अभाव में होता है। हिंदू धर्म में विवाहित महिला के लिए सिंदूर लगाना अनिवार्य है, सूनी मांग अपशकुन मानी जाती है। अमूमन आधुनिकाएं विवाहोपरांत यदा-कदा ही सही, सिंदूर लगाने के मोह से बच नहीं पातीं। यही है उनके अंदर बैठा खौफ जो तमाम तर्कों-कुतर्कों के बावजूद अपना अस्तित्व जता ही देता है। ठीक यही स्थिति है कुल-नाम की। पति का कुल-नाम लगाना, औरत का जन्म-नाम बदला जाना हमारी प्राचीन परंपरा है। ऐसा वेद-पुराणों में भी संकेत है, यह कहा जाता है। पत्नी को पति में पूर्ण समर्पित होने का यह प्रतीक है। आधुनिक दौर में कुछ महिलावादी, जुझारू, अपने व्यक्तित्व पर गर्व कर सकने वाली महिलाएं इन वर्जनाओं को तोड़ने का दुस्साहस करने लगी हैं। लेकिन उनके इस निर्णय से पति रूपी जीव के म्वाभिमान को ठेस लगती है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि अब

तक जो कवल भाग्या थी, घर रखे कलर टी वी और फ्रिज की तरह इस्तेमाल की एक वस्तु थी, उसका 'मैं' जागना पति और उसके परिवारवालों के लिए विरोध में किया गया प्रहार साबित होता है। सरकारी नियमानुसार, अब यदि मा चाहे तो बच्चे के नाम के साथ अपना नाम दर्ज करवा सकती है। यानी पिता की गारंटी देना अब अनिवार्य नहीं है। पिता के नाम के बिना अब बच्चा अवैध या (सामाजिक भाषा में कहे) 'हरामी' नहीं होगा, उसका अस्तित्व उसकी मा से स्वीकार्य होगा। लेकिन कितनी माओं ने बच्चे को अपना नाम दिया होगा? नाम बदलने या हटाने से बाप की हैसियत या अधिकारों में फर्क तो नहीं आ जाएगा। मगर यह परंपरा है—पिता का ही नाम लिखा जाएगा, मां के अस्तित्व की जरूरत ही कहां है? ऐसा करने वाली मां बदचलन, आवारा या कामोन्मादी जैसे विशेषणों से भी नवाजी जा सकती है, क्योंकि समाज के ठेकेदार सरकारी मान्यता से संतुष्ट नहीं होते, उन्हें तो परंपराओं का निर्वाह करवाना है न।

हिंदू समाज में एक बलशाली परंपरा है—दाह-संस्कार की। इसे पुत्र ही संपन्न करवाता है। पुत्र को जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह अंतिम संस्कार के वक्त पंडों की मदद से मां-बाप को मुखाग्नि दे और उनकी कपाल-क्रिया करे। बेटी और दामाद इस प्रक्रिया में कितने अछूत माने जाते हैं, इसे सिर्फ इतने से समझा जा सकता है कि दामाद के मृतक की अर्थी को हाथ लगाने-भर से वह नरक का भागी हो जाता है। जिन परिवारों में पुत्राभाव है, वहां रिश्ते-नातेदार से क्रिया करवाई जाती है। अब यह परंपरा इतनी गूढ़ और दबावों से भरी है कि अब्बल तो बेटी-दामाद इसे संपन्न करने की कल्पना ही नहीं कर सकते। मान लीजिए, कुछ अति विकासवादी दंपती तैयार भी हो जाएं, तो पड़े, परिवार और रिश्तेदार इसे कैसे स्वीकार कर सकते हैं?

निःसंदेह, यह कहना लाजिमी है कि महिलाएं ही परंपराओं का निर्वाह करती हैं। सदियों से, पीढ़ियों से वह लीक पीटती चली आ रही है। इसका एकमात्र कारण है कि दरअसल समाज ने औरत को इतना अकेला, बेबस, गैरजिम्मेदार और अछूत बना दिया कि वह अपने चारों तरफ आत्मरक्षा और आकर्षण का केंद्र बनाने के लिए एक चक्र बनाने लगी। परंपराएं वही चक्र हैं, जिन्होंने अन्ततः औरत को अपने में जकड़ लिया है। पुरुष को खुश करने के लिए औरत ने सिंदूर लगाया, चूड़ियां पहनीं और उसकी दीर्घायु के लिए व्रत-पूजन किया। इसका सीधा साफ कारण था—उसे सम्मोहित करना, यह जताना कि मैं सिर्फ तेरे लिए कामना करती हूं, मैं तुझमें हूं, तेरी समृद्धि के पीछे मैं हूं, तेरी दीर्घायु, स्वास्थ्य और परिवार

के लिए मैं ही उपाय कर सकती हूँ। पुरुष उसके छलावे में आ गया, उसके मोहपाश में बंध गया। परंपरा बनकर यही छल औरत के अतर्पण में उतरता गया और पीढ़ियों में उसने इसे बांटना शुरू कर दिया। आज की औरत जानती है कि चांद को पूजने से कुछ नहीं होगा, मगर पुरुष के अहं को सतुष्ट करने के लिए आसमान की तरफ अक्षत फेकती है। यह डरती है कि वैज्ञानिक बातों या तर्कों से यदि पुरुष को हरा दिया, तो कहीं वह स्वयं सब कुछ न हार जाए। यथास्थिति बनाए रखने की चाहत, डर और असुरक्षा की भावना उसे यह सब करने के लिए मजबूर करते हैं।

व्यावहारिक तौर पर यह कहना उचित ही होगा कि आधुनिक महिला में जहां अपनी देह के प्रति मोह बढ़ा है, वहीं उसकी जिम्मेदारियों में भी इजाफा होता जा रहा है। सामाजिक, नैतिक, पारिवारिक और अब भौतिक दायित्वों के दबावों में उसे आत्मसुरक्षा को खोजना है। इस भीड़ में उसे अपने खुद के लिए तो वक्त निकालने में तमाम दिक्कतों को झेलना पड़ता है, ऐसे में कैसी परंपराएं—कैसी रूढ़ियां? ये सब तभी तक हावी हैं, जब तक औरत मानसिक रूप से स्वतंत्र नहीं हो जाती। ज्यों ही उसे 'स्व' का एहसास हुआ, वैसे ही परंपराओं की जंजीरें छिन्न-भिन्न हो जाएंगी। यही अंत हो जाएगा उसके दिमागी बंध्याकरण का वह अध्याय, जिसे वह भय और असुरक्षा के कारण सहती चली आ रही है। समय उसे उसकी ऊर्जा से जैसे-जैसे परिचित कराता जाएगा, वैसे ही वैसे वह अपनी शक्ति को पहचानने लगेगी। अंततः एक वक्त ऐसा आएगा, जब औरत पूर्णतः स्वतंत्र होगी—परंपराओं से, पुरुषवादी वर्चस्व से, सामाजिक बंधनों से और मानसिक दबावों से। स्पष्ट है कि यहां उच्छृंखलता और पश्चिमीकरण की तूती नहीं बजाई जा रही—गुलामी और दिमागी बंध्याकरण से छुटकारे की लालसा जताई जा रही है, जो दुनिया की हर औरत के लिए अनिवार्य है और जिसका उसे पूरा अधिकार है!





मनीषा

जन्म : सन् 1968 में उत्तर प्रदेश

विशेष : स्त्री विमर्श में उल्लेख अकादमिक शिक्षा के आ का अखवारी अनुभव तो मादा भी मौजूद है जो स्त्रि प्रसार कर सके। महिला नियमित स्तंभ तो आपक विविध वैचारिक पत्रिकाओं पुस्तकों में प्रकाशित ले रहे हैं।

संप्रति : 11 बरसों से 'राष्ट्रीय सह विभाग से संबध।

कुछ कहानियां भी लिखे

संपर्क : संपादकीय विभाग, दैनिक